सूफ़ी-काव्य-संग्रह

सम्पादक

परशुराम चतुर्वेदी

एम० ए०, एल् एल् बी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण
१९५१
मूल्य ३)

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

वक्तव्य

हिन्दी साहित्य के निर्माण में सूफ़ी कवियों की जो देन है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रेमगाथा-काव्य की परंपरा में सुन्दर सहयोग प्रदानकर तथा फुटकल काव्यों की भी रचना द्वारा उन्होंने इस ओर बहुत बड़ा काम किया है। फिर भी उनकी कृतियों के प्रकाशन एवं अध्ययन की ओर अभी तक समुचित ध्यान नहीं दिया जा सका है। अभीतक उनकी केवल दो-चार पुस्तकें ही प्रकाशित हो पायी हैं और वे भी सभी सुसंपादित नहीं हैं। हिन्दी साहित्य के इस महत्वपूर्ण अंग का एक बहुत बड़ा अंश अभी तक हस्तलिखित रूप में ही पड़ा हुआ है। कुछ दिन हुए प्रयाग की 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' ने हिन्दी-प्रेम-काव्य के कतिपय खंडों का एक संग्रह निकाला था जो अब नहीं मिलता और इस विषय के प्रेमियों की इच्छा पूरी नहीं हो पाती।

प्रस्तुत 'सूफ़ी-काव्य-संग्रह' एक उसी प्रकार का बहुत छोटा-सा प्रयास है। इसका संपादन विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए किया जा रहा है और उन्हीं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इसे प्रकाशित किया जा रहा है। इसके मूल पाठ के अन्तर्गत सूफ़ी-प्रेमगाथा के अतिरिक्त फुटकल सूफ़ी काव्य के भी अंशों का संकलन किया गया है। प्रत्येक कवि का संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है और उसकी प्रमुख विशेषताओं की ओर भी संकेत कर दिया गया है। टिप्पणीवाले अंश में इसीप्रकार प्रेम-कथाओं का सारांश देकर कठिन शब्दों के अर्थ बतला दिये गये हैं। विद्यार्थियों के लाभ की दृष्टि से इस संग्रह के आरंभ में एक भूमिका दे दी गई है और अंत में कुछ सहायक ग्रन्थों की एक सूची भी लगा दी गई है।

स्व० आचार्य शुक्लजी की धारणा थी कि शेखनवी के 'ज्ञानदीप' (सं० १६७६) की रचना के अनन्तर प्रेमगाथा-परंपरा समाप्त हो गई होगी और सूफ़ी कवि भी प्रचुर मात्रा में इधर नहीं हुए होंगे। परन्तु इधर की खोजों द्वारा जान पड़ता है कि उक्त परंपरा कम से कम सं० १९७४ तक बराबर चली आई है और सूफ़ी कवियों की भी वैसी कमी नहीं रही है। 'ज्ञानदीप' की कोई प्रति तो मुझे नहीं मिल सकी है, किन्तु उसके पीछे की लिखी हुई आधे दर्जन से अधिक ऐसी रचनाएं मुझे प्राप्त हुई हैं जो उनके उपर्युक्त कथन के समय तक उपलब्ध नहीं थीं और जिनकी चर्चा वे, इसी-कारण, अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में नहीं कर पाये थे। फिर भी इनका अथवा इनसे भी पहले की प्राप्त प्रेमगाथाओं का पाठ अभी तक शुद्ध और प्रामाणिक रूप में प्रकाशित नहीं हुआ है। कुछ केवल फ़ारसी लिपि में मिलती हैं और कुछ कैथी लिपि में लिखी पायी जाती हैं जिसकारण उनके पाठों के विषय में संदेह बना ही रह जाता है और उनकी अनेक पंक्तियों वा शब्दों तक का आशय पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाता। इसके सिवाय कई महत्वपूर्ण रचनाओं जैसे क़ुतबन की 'मृगावती' मंझन की 'मधुमालती' तथा ख्वाजा अहमद की 'नूरजहाँ' की मुझे केवल अधूरी ही प्रतियाँ मिल सकी हैं जिसकारण इस संग्रह के अनेक स्थल यों भी संदिग्ध रह गए हैं। इसप्रकार की कठिनाइयों ने ही मुझे इसमें संगृहीत अंशों का कलेवर न बढ़ा सकने के लिए भी विवश किया है।

प्रस्तुत संग्रह के संपादन में जिन सज्जनों ने मुझे सामग्री एवं सत्परा-मर्श द्वारा सहायता दी है उनका मैं परम अनुगृहीत हूँ। मैं श्री गोपालचन्द्र जी सिंह (जुडिशल सर्विस) का बहुत कृतज्ञ हूँ जिन्होंने, उद्वेगजनक पारि-वारिक कष्टों के रहते हुए भी, मुझे अपना बहुमूल्य समय दिया और कई अलभ्य पुस्तकों को भी देने की कृपा की। मेरे प्रिय मित्र श्री रामचन्द्र जी टंडन ने इस संबंध में मुझे जो उपयुक्त सुझाव दिये और अनेक पुस्तकें प्रदान

कीं उसके लिए मैं उनका भी अत्यंत आभारी हूँ। इसके सिवाय मैं अपने को श्री रायकृष्णदास जी का भी उपकृत मानता हूँ जिन्होंने काशी विश्व-विद्यालय में सुरक्षित 'मृगावती' की हस्तलिखित प्रति को मुझे बड़े महत्व-पूर्ण अवसर पर प्रदान करने की कृपा की। इसीप्रकार श्री कंवर संग्राम सिंह जी (नवलगढ़) का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे अपनी हस्तलिखित प्रति 'कथारतनावति' देखने का अवसर दिया। परन्तु इस अवसरपर मैं अपने अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी को भी नहीं भूल सकता जिनकी सुव्यवस्था से मुझे हरप्रकार का सुभीता मिला है।

वलिया
फाल्गुनी पूर्णिमा
सं० २००७

परशुराम चतुर्वेदी

प्रकाशकीय

हिन्दी-साहित्य के गौरव-विस्तार में जितना श्रेय भक्ति-संप्रदाय के मननशील कवियों को प्राप्त है उतना ही सूफ़ी कवियों को भी प्राप्त है। जन-साधारण में सूफ़ी कवियों को अधिक प्रसिद्धि न होने का मुख्य कारण यही रहा कि उनकी कृतियों को प्रकाश में लाकर जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न अभीतक नहीं किया गया था।

कुछ भी हो, इधर कई वर्षों से हिन्दी के विद्वानों का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट होने लगा है। परिणामस्वरूप सूफ़ी कवियों को लेकर अनेक ग्रन्थ रचे गये। किन्तु उनमें उपयुक्त ज्ञातव्य बातों की कमी होने के कारण वे अधिक लोकप्रिय न हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक के संकलनकर्ता व संपादक श्री परशुरामजी चतुर्वेदी एम० ए०, एल-एल० बी० ने जिस पद्धति और शृंखला से इसे जनता तथा साहित्य के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है उसे पूर्णरूप से सफल होने का गौरव प्राप्त है।

उद्दिष्ट विषय का ऐसा कोई भी अंग नहीं है जिसे अपनाया गया न हो। कहना तो यों चाहिए कि सिद्ध-हस्त लेखक महोदय ने विषय को इतना सरल और सुबोध बना दिया है कि पाठकों की रुचि में उत्तरोत्तर वृद्धि होने की ही अधिक आशा है। हमें विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक से हिन्दी के प्रेमियों को अवश्य लाभ होगा।

दयाशंकर दुबे
साहित्य-मन्त्री

विषय-सूची

भूमिका

१—सूफी कौन थे ?

'सूफ़ी' शब्द : साधारण विवेचन

'सूफ़ी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में निर्णय करते समय सभी विद्वान एक ही मत प्रकट करते हुए नहीं जान पड़ते। कुछ लोगों की धारणा है कि यह शब्द 'सफ़ा' से बना है जिसका अर्थ 'पवित्रता' होता है और इसी कारण सूफ़ी वस्तुतः उन्हें ही कहना चाहिए जो मनसा, वाचा एवं कर्मणा पवित्र कहे जा सकते हैं। एक दूसरे मत के अनुसार 'सफ़ा' शब्द यहाँ निष्कपट भाव के लिए व्यवहृत हुआ है, इसलिए 'सूफ़ी' ऐसे व्यक्ति को कहना चाहिए जो न केवल परमात्मा के प्रति निश्छल भाव रखता है और तदनुसार सारे प्राणियों के साथ भी शुद्ध वर्ताव करता है, अपितु जिसके लिए परमात्मा स्वयं भी स्नेह प्रदर्शित करता है। एक तीसरा मत, इसी प्रकार 'सूफ़ी' शब्द को 'सोफ़िया' से निकला हुआ ठहराना चाहता है जिसका अर्थ 'ज्ञान' हुआ करता है और यदि इसके आधार पर विचार किया जाय तो, सूफ़ियों को हम 'ज्ञानी' या परमज्ञानी तक समझ सकते हैं। परन्तु इन तीनों मतों में से किसी का भी प्रतिपादन करते समय यह नहीं बतलाया जाता कि केवल 'पवित्र', 'निच्छल' अथवा 'ज्ञानी' के अर्थ में ही व्यवहृत किये जाने योग्य 'सूफ़ी' शब्द को एक वर्ग विशेष के व्यक्तियों के लिए ही क्यों चुना जाता है इसका प्रयोग ऐसे अन्य लोगों के लिए भी क्यों न किया जाना चाहिए जिनमें उपर्युक्त गुणों का समावेश हो।

भूमिका

१—सूफ़ी कौन थे ?

'सूफ़ी' शब्द : साधारण विवेचन

'सूफ़ी' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में निर्णय करते समय सभी विद्वान एक ही मत प्रकट करते हुए नहीं जान पड़ते। कुछ लोगों की धारणा है कि यह शब्द 'सफ़ा' से बना है जिसका अर्थ 'पवित्रता' होता है और इसी कारण सूफ़ी वस्तुतः उन्हें ही कहना चाहिए जो मनसा, वाचा एवं कर्मणा पवित्र कहे जा सकते हैं। एक दूसरे मत के अनुसार 'सफ़ा' शब्द यहाँ निष्कपट भाव के लिए व्यवहृत हुआ है, इसलिए 'सूफ़ी' ऐसे व्यक्ति को कहना चाहिए जो न केवल परमात्मा के प्रति निश्छल भाव रखता है और तदनुसार सारे प्राणियों के साथ भी शुद्ध बर्ताव करता है, अपितु जिसके लिए परमात्मा स्वयं भी स्नेह प्रदर्शित करता है। एक तीसरा मत, इसी प्रकार 'सूफ़ी' शब्द को 'सोफ़िया' से निकला हुआ ठहराना चाहता है जिसका अर्थ 'ज्ञान' हुआ करता है और यदि इसके आधार पर विचार किया जाय तो, सूफ़ियों को हम 'ज्ञानी' या परमज्ञानी तक समझ सकते हैं। परन्तु इन तीनों मतों में से किसी का भी प्रतिपादन करते समय यह नहीं बतलाया जाता कि केवल 'पवित्र', 'निच्छल' अथवा 'ज्ञानी' के अर्थ में ही व्यवहृत किये जाने योग्य 'सूफ़ी' शब्द को एक वर्ग विशेष के व्यक्तियों के लिए ही क्यों चुना जाता है इसका प्रयोग ऐसे अन्य लोगों के लिए भी क्यों न किया जाना चाहिए जिनमें उपर्युक्त गुणों का समावेश हो।

विशेष विवेचन

'सूफ़ी' शब्द को कुछ अन्य लोग, इसीलिए, किसी न किसी प्रसंग में लाकर भी समझने की चेष्टा करते हैं। ऐसे कुछ विद्वानों का कहना है कि यह शब्द 'सफ़' से निकला है जिसका अर्थ 'सबसे आगे की पंक्ति' अथवा 'प्रथम श्रेणी' किया जाता है और इसके अनुसार सूफ़ी केवल उन्हीं व्यक्तियों को कहा जा सकता है जो 'क़यामत' के दिन ईश्वर के प्रियपात्र होने के कारण सबसे आगे खड़े किये जायेंगे और जिनमें इस बात की ओर संकेत करने के लिए कुछ विशेषता भी होनी चाहिए। कुछ दूसरे लोग इस शब्द को, इसी प्रकार 'सुफ़्फ़ा' से बना हुआ मानते हैं जिसका अर्थ 'चबूतरा' हुआ करता है और जो विशेषत: अरब देश की किसी मसजिद के प्रांगण में बने हुए उस ऊंचे स्थल को सूचित करता है जहां पर हज़रत मुहम्मद के कतिपय प्रियपात्र सहचर प्राय: बैठा करते थे। उन लोगों का अधिक समय परमात्मचिंतन में ही व्यतीत होता था और सूफ़ियों का यह नाम उन्हीं के स्वभाव-सादृश्य के कारण दिया गया था। एक तीसरे मत के अनुसार 'सूफ़ी' शब्द वास्तव में 'सूफ़' से बना है जिसका अर्थ 'ऊन' हुआ करता है और यह पहले पहल केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए प्रयोग में आता था जो अपने पहनावे के लिए मोटे ऊनी वस्त्रों का व्यवहार किया करते थे। ये लोग ऐश्वर्य या भोगविलास से सदा दूर रहा करते थे और अत्यंत सीधा सादा जीवन व्यतीत करते हुए केवल आध्यात्मिक साधनाओं में लगे रहते थे।

सूफ़ियों का स्वभाव

आधुनिक विद्वान् और विशेषकर पाश्चात्य देशों के कुछ लेखक तथा बहुत से मुस्लिम आलिम भी, आजकल उक्त अंतिम मत को ही अधिक समीचीन ठहराते हुए जान पड़ते हैं और इसके लिए कई कारण भी हो सकते हैं। 'सूफ़' एवं 'सूफ़ी' शब्दों के बीच सीधा शब्द-साम्य दीखता है। फिर

सूफ़ अर्थात ऊन को अधिकतर व्यवहार में लाने वालों के लिए सूफ़ी शब्द का प्रयोग उस दशा में कुछ अनुचित भी नहीं कहा जा सकता जब कि उनके ऐसे पहनावे अत्यंत साधारण होने के साथ साथ एक विशेष ढंग से बने भी रहा करते हों और इसी कारण सबका अधिक ध्यान भी आकृष्ट करते रहे हों। इसके सिवाय यह भी प्रसिद्ध है कि ऐसे लोग अपने इन वस्त्रों के व्यवहार द्वारा अपना सादा जीवन तथा स्वेच्छा-दारिद्र्य भी प्रदर्शित करते थे। ये लोग परमेश्वर की उपलब्धि को ही अपना एक मात्र ध्येय मानते थे और इस प्रकार, धन वैभव अथवा अपने गृह परिवारादि के प्रति उदासीनता का भाव रखते हुए, केवल उसी के ध्यान और चिंतन में सदा लगे रहना अपना कर्तव्य समझा करते थे। परमेश्वर के साथ निर्बाध मिलन तथा उसके प्रति सच्चे अनुराग में ही कालयापन करना उनके जीवन का सर्वोच्च आदर्श था। और उसके अतिरिक्त सभी बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा करना उनके लिए स्वाभाविक सा हो गया था।

सूफ़ियों की धारणा

अतएव, सादगी की उक्त विशेषता उनकी केवल बाहरी वेशभूषा तक ही सीमित नहीं थी। उनका संन्यासव्रत उनकी भीतरी मनोवृत्तियों को भी प्रभावित किया करता था और अबुल हसन नूरी के अनुसार ऐसे लोग 'निर्धन' दीख पड़ने के साथ साथ 'निष्काम' भी हुआ करते थे। सूफ़ियों को इस बात में भी पूर्ण विश्वास था कि जिन वाणियों को हजरत मुहम्मद ने परमेश्वर के यहां से प्राप्त किया था वे उनके साथ दो भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट हुई थीं। एक तो वे थीं जिनका संग्रह 'क़ुरान शरीफ़' में किया गया और वे इसी कारण, 'इल्म-ए-सफ़ीना' अर्थात् 'ग्रन्थनिहित' ज्ञान कहलाती हैं और दूसरी वे हैं जो रसूल के हृदयपट पर अंकित हो गई थीं और जिन्हें इसी कारण, 'इल्म-ए-सीना' वा 'हृदय निहित ज्ञान' कहा जाता

है। सूफ़ियों की धारणा के अनुसार पहिली विद्या सर्वसाधारण मुस्लिमों के लिए दी गई थी और दूसरी केवल चुने हुए परमेश्वर के प्रियपात्रों के लिए ही अभिप्रेत रही तथा, इसी कारण वह एक प्रकार से गुप्त भी रही। सूफ़ी लोग इन बातों को हज़रत मुहम्मद की कतिपय उक्तियों में से ढूंढ़ निकालने का प्रयास करते हैं और इन्हें ही वास्तविक सत्य का नाम देकर प्रायः कहा करते हैं कि रसूल ने इन्हें अपने हृदय में रहस्य के रूप में सुरक्षित रख छोड़ा था।

सूफ़ियों का सम्प्रदाय

सूफ़ के वस्त्र धारण करने वाले लोग इन सूफ़ियों के पहले भी पाये जाते थे और बपतिस्मा देने वाले सेंट जान की भी गणना ऐसे ही सूफ़धारियों में की जाती है, किन्तु उनके लिए कभी 'सूफ़ी' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया था। इसके द्वारा पहले पहल केवल वे ही लोग अभिहित किये गये जो हज़रत मुहम्मद के अनुयायी और मुसलमान थे तथा जो उनके सहचर अथवा उत्तराधिकारी खलीफाओं की सदाचार-वृत्ति को अपने जीवन का आदर्श भी स्वीकार करते थे। उनका झुकाव 'क़ुरान शरीफ़' के शब्दों में अंधविश्वास रखने की ओर नहीं था और वे अपने संयत एवं वैराग्यपूर्ण जीवन तथा गंभीर ईश्वर-प्रेम के आधार पर 'अह्ल-अल्-हक' अर्थात् पूर्णतः ईश्वरानुगामी भी कहे जाते थे। इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी उन्हें अपने से कुछ भिन्न समझा करते थे। जिस कारण समय पाकर उनका एक विशिष्ट संप्रदाय सा बस गया और उसके भिन्न भिन्न अनुयायियों पर देशकालानुसार अन्य अनेक विचार-धाराओं का क्रमशः प्रभाव भी पड़ने लगा। सूफ़ी मत की कई बातें इस्लाम धर्म का उदय होने से पहले से ही चली आ रही थीं। उनका मूल स्रोत प्राचीन शामी परंपराओं में भी ढूंढ़ा जा सकता है। परन्तु वस्तुतः सूफ़ी कहे जाने वाले लोगों का परिचय हज़रत मुहम्मद साहब

के पीछे आने पर ही मिलता है और तभी से सूफ़ी मत के इतिहास का प्रारंभ भी होता है ।

२—सूफ़ी मत का इतिहास

प्रारंभिक परिस्थिति

हज़रत मुहम्मद (सं० ६२८–६८८) का देहावसान हो जाने पर उनके उत्तराधिकारी खलीफ़ाओं का युग आरंभ हुआ और वे इस्लाम धर्म का उत्तरोत्तर प्रचार करते गए तथा उनके प्रयत्नों द्वारा वह अरब देश से लेकर क्रमशः शाम, फिलस्तीन, मिस्र, ईरान, स्पेन, एवं तुर्किस्तान आदि देशों तक बहुत शीघ्र फैल गया । इस विस्तार के कारण इस्लामी राज्य की राजधानी अरब देश से उठकर पहले शाम देश के दमिश्क नगर में गई और फिर वहां से फिलस्तीन के बगदाद नगर पहुंची और, क्रमशः, उमैय्या वंश एवं अब्बास वंश के शासन-काल में ऐश्वर्य तथा वैभव भी बढ़ चला । पहले के चार खलीफ़ा अर्थात् अबूबकर (मृ० सं० ६९१), उमर (मृ० सं० ७००), उसमान (मृ० सं० ७१२) एवं अली (मृ० सं० ७१७), अधिकतर धर्मपरायण व्यक्ति रहे और, अपने इस्लामी राज्य के सीमा-विस्तार तथा उसके शासन-संबंधी झंझटों के होते हुए भी, वे क्रमशः अपनी शुद्ध हृदयता, कर्तव्यशीलता, त्याग एवं धैर्य के लिए विख्यात रहते आए । परंतु अली के अनंतर आने वालों में इस प्रकार की व्यक्तिगत विशेषताओं का प्रायः अभाव सा दीखने लगा और वे धार्मिक प्रचार से कहीं अधिक राज्य-विस्तार एवं शासनाधिकार आदि बातों की ही ओर प्रवृत्त होते जान पड़े । फलतः रसूल तथा उक्त प्रथम चार खलीफ़ाओं के जीवन का आदर्श क्रमशः लुप्त होता गया और धर्म की भावना में बाहरी बातों का भी समावेश होने लगा । इसके सिवाय भिन्न भिन्न प्रकार के लोगों के साथ

संपर्क वढ़ते जाने से उनके सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभावों का वढ़ते जाना भी अनिवार्य हो गया जिस कारण सर्वत्र सामंजस्य लाने के विचार से अपने धर्म ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन आरंभ हुआ। 'कुरान शरीफ़' एवं 'हदीस' के आधार पर अनेक भाष्यों और विवृत्तियों की रचना होने लगी तथा क़ाजियों के द्वारा उनके अनुसार निर्णय भी कराया जाने लगा। इस्लामी धर्म शास्त्र में इस प्रकार कलेवर-वृद्धि हो जाने से साम्प्रदायिक भावनाओं को भी प्रेरणा मिली और अंधविश्वास की मात्रा वढ़ गई। शेखों और उलेमा का महत्त्व और भी अधिक जान पड़ने लगा और वे अपने आश्रयदाता समकालीन शासकों की मनचाही वातों के अनुसार फतवे देने लगे। सूफ़ी-मत के उदय एवं विकास का आरंभ सर्व प्रथम, ऐसे ही वातावरण की प्रतिक्रिया में हुआ और पहले सूफ़ियों ने इससे अपने को वचाने के प्रयत्न किये।

(क) प्रथम युग

प्रथम सूफ़ी

एक प्राचीन परंपरा के अनुसार कहाजाता है कि 'सूफ़ी' नाम, सर्व-प्रथम, शेख अवू हाशिम को दिया गया था। उनका जन्म मोसल नगर में हुआ था, किंतु वे शाम देश के कूफ़ा नगर में रहा करते थे और मेसोपोटामिया के रमला नामक स्थान में उन्होंने एक मठ स्थापित किया था जहां पर वे विक्रम की नवीं शताब्दी के आरंभ काल तक वर्त्तमान रहे। परन्तु उनके विषय में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं होता, अपितु इतना ही पता चलता है कि तव से लगभग ५० वर्षों के भीतर इस नाम का पूरा प्रचार हो गया और वहुत से व्यक्ति इसके द्वारा अभिहित किये जाने लगे उस समय तक उमय्या वंश का शासन-काल समाप्त हो चला था और अब्बास वंश के शासन काल का आरंभ हो चुका था। सूफ़ी मत के इतिहास

का यह प्रथम युग था जो हिजरी सन् की दूसरी शताब्दी के अंतिम चरण तक चलता रहा और जिसमें वर्त्तमान सूफ़ियों में से कम से कम आधे दर्जन के नाम और संक्षिप्त परिचय अभी तक सुरक्षित हैं। इनमें से भी, सर्व प्रथम, अबू हसन बसरावी का नाम लिया जाता है जिनका देहांत सं० ७८५ में हुआ था। सूफ़ियों में ये बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते हैं और इनके प्रशंसक इन्हें ख़लीफ़ा अली के समान चरित्रवान् बतलाते हैं। ये परमेश्वर से सदा भयभीत रहा करते थे और सर्वत्र इन्हें उसकी चेतावनी भी मिला करती थी।

अधम साक़िक़ व अयाज़

प्रथम युग के सूफ़ियों में इब्राहीम बिन अधम (मृ० सं० ८४०) का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। ये बल्ख के एक राजपुरुष थे जिन्हें आखेट करते समय एक आकाश वाणी सुन पड़ी और उन्हें अपने लिए ऐसा प्रतीत होगया कि जिन कार्यों को पूरा करने में मैं लगा हुआ हूँ वे मेरे वास्तविक उद्देश्य से नितांत भिन्न और विपरीत हैं। इन्हीं अधम के मुरीद एक शेख़ साक़िक़ नाम के भी व्यक्ति थे जो बल्ख के ही निवासी थे। उन्हें किसी घोर अकाल के समय एक क्रीतदास के मुख से सुन पड़ा "मेरे स्वामी के पास अपार अन्नराशि है और वह मुझे भूखों नहीं मरने देगा।" इस कथन का प्रभाव उनके ऊपर इतना गहरा पड़ गया कि उन्होंने अपने परमेश्वर के प्रति आत्म-समर्पण की भावना स्वीकार कर ली। इसी प्रकार फ़ुजामल बिन अयाज़ (मृ० सं० ८५८) के लिए कहा जाता है कि प्रारंभिक जीवन काल में वे डाकुओं के सरदार थे। एक बार उन्हें किसी व्यक्ति के मुख से 'क़ुरान शरीफ़' की पंक्ति "क्या उन सच्चे हृदय वालों के लिए अभी अवसर नहीं आया है कि वे अपना अंतस्तल खोलकर पश्चात्ताप करलें?" सुन पड़ी और उनके जीवन में काया पलट आ गया। उन्होंने अपने साथियों

को विदाकर दिया, डाके का काम सदा के लिए छोड़ दिया और वसरा जाकर अबू हसन के किसी शिष्य के मुरीद हो गये।

राविया वसराविनी

परंतु इस युग की सबसे प्रसिद्ध स्त्री-सूफ़ी वसराकी राविया थी जिसका देहांत सं० ८५९ में हुआ था। वह एक अत्यंत दरिद्र परिवार में उत्पन्न हुई थी और उसके माता पिता भी उसे वाल्यकाल में ही छोड़कर मर चुके थे। उसे किसी धनी व्यक्ति ने केवल छः दीनारों पर वेच दिया और उसे अपने नये स्वामी के यहां क्रीतदासी वनकर कठोर परिश्रम करना पड़ा। फिर भी वह दिन भर उपवास किया करती थी और एक क्षण के लिए वह परमेश्वर को नहीं भूलती थी। वह अपने सांसारिक सुख के लिए स्वयं भगवान् से भी कुछ मांगने में लज्जा का अनुभव करती थी। परमेश्वर के उपर पूर्ण निर्भरता अथवा 'तवक्कुल' के भाव को सदा वनाये रखना वह अपना एक मात्र कर्तव्य समझती थी। उसका कहना था "हे प्रभो, यदि मैं तेरी प्रार्थना केवल नरकयंत्रणा से वचने के लिए करती होऊं तो मुझे नरक में डाल रख और यदि स्वर्ग सुख के लिए ऐसा करती होऊं तौ भी तू मुझे उससे वंचित रखा कर। किंतु यदि मैं तेरी उपासना केवल तेरे लिए ही करती होऊं तो तू मेरे लिए अपने शाश्वत सौंदर्य एवं माधुर्य प्रकट करने में कभी विलंव न कर।"

विशेषता

इस युग अर्थात् सं० ८७० के आसपास तक समाप्त होने वाले समय के सूफ़ियों की विशेषता उनकी एकांत-प्रियता, ईश्वर-चिंतन और ध्यान जनित आनंद में सदा मग्न रहने में ही निहित थी। डा० निकोल्सन ने उन्हें, इसी कारण, शांतिवादी (Quietists) वा निष्क्रियतावादी की संज्ञा दी है। वे लोग प्रचारक नहीं थे और सभी प्रकार के राजकीय प्रदर्शनों से

भी सदा दूर रहा करते थे। उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी रहती थी और उनमें से अधिकांश का हृदयपरिवर्तन पश्चात्ताप के अनन्तर हुआ था। पीछे आने वाले सूफ़ियों ने अपने आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न 'मुकामात' निर्धारित किये, किंतु इन लोगों के लिए केवल 'तौवा' (पश्चात्ताप) एवं 'तवक्कुल' (आत्मसमर्पण) ही सब कुछ रहा और इन्हीं दो के द्वारा अपने जीवन में पूर्ण कायापलट ला देना ये लोग सदा संभव समझते रहे। ये लोग इस्लाम धर्म की मौलिक भावनाओं द्वारा पूर्णतः प्रभावित थे और इन पर अभी तक किन्हीं वाहरी विचारधाराओं का प्रभाव लक्षित नहीं होता था। किन्तु इस युग के अनन्तर आने वाले समय में इस ओर घोर परिवर्तन दीख पड़ने लगा। इधर के सूफ़ियों में उपर्युक्त कोरे संन्यासव्रत की अपेक्षा दार्शनिक विचार की प्रवृत्ति अधिक लक्षित हुई और उधर का निष्क्रियता-वाद गहरे ग्रंथानुशीलन एवं मत-प्रतिपादन में परिणत हो गया। ये नवसूफ़ी 'ज़ाहिद' (संन्यासव्रतावलम्वी) न रह कर 'आरिफ़' (अध्यात्मवादी) वन गए और इनके ऊपर ईश्वरीय प्रेम का भी रंग चढ़ गया जिसके कारण इन्हें कभी कभी अपने उन्माद तक का शिकार वनना पड़ा।

(ख) द्वितीय युग

वर्तमान परिस्थिति

द्वितीय युग का आरंभ होने के समय तक अव्वास वंश का शासन-काल चलने लगा था। उसके प्रसिद्ध मन्त्री वरमक के प्रोत्साहन द्वारा भारतीय विचारधारा का प्रचार वढ़ने लगा। मामु ने अपने दरबार में भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को अध्यात्म-विषयक प्रश्नों पर विचार-विनिमय करने के लिए उत्साहित किया जिसका प्रभाव नवविकसित सूफ़ी-मत के ऊपर भी विना पड़े नहीं रह सका और अनेक वातों पर तर्क-वितर्क करने की प्रणाली चल पड़ी। इसके सिवाय हारूं रशीद के राजत्त्व-काल से

कई यूनानी दार्शनिकों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुवाद-कार्य आरंभ हुआ और उसके लगभग साथ ही साथ, भारतीय दर्शन और विशेपकर बौद्ध-दर्शन एवं वेदान्त-दर्शन का भी अध्ययन और अनुशीलन होते जाने से इस्लाम-धर्म के क्षेत्रों में नितान्त नवीन विचार-स्रोतों का प्रवेश हो चला। ईरानी संस्कृति, ईसाइयों का भाव योग तथा प्लोटिनस का नव अफलातूनी सत-वाद भी इस अवसर पर अपना अपना प्रभाव डालते प्रतीत होते थे और सबके सम्मिश्रण व समन्वय द्वारा एक ऐसी विचार-धारा की सृष्टि होती जा रही थी जो सनातन इसलामी धर्म के भीतर एक प्रकार की क्रांति ला देने की सूचिका थी। फलतः उस समय के वृद्धिशील बुद्धिवाद को दवाने के लिए शासकों को सजग और सचेष्ट होना पड़ा और समय समय पर प्राण दण्ड तक की व्यवस्था होने लगी।

कर्ख़ी दारानी व मिस्री

इस समय के प्रसिद्ध सूफ़ियों में, सर्व प्रथम, मारूफ़ुल कर्ख़ी का नाम आता है जिनकी मृत्यु सं० ८७२ में हुई थी। कर्ख़ वगदाद का ही एक भाग था जहां पर ये रहा करते थे और जहां से इन्होंने नवसूफ़ीमत का पहले पहल प्रचार किया था। इन्होंने सूफ़ीमत की शब्दावली के लिए जो जो परिभाषाएं वनायीं वे सर्वमान्य हो चलीं और ये सूफ़ियों में बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाने लगे। इन्होंने एक सच्चे फ़क़ीर का लक्षण भगवच्चिंतन, भगवदाश्रय एवं भगवदुद्दिष्ट कार्यकलाप के आधार पर निर्धारित किया था और तसव्वुफ़ अर्थात् सूफ़ी मत की प्रमुख विशेषता परमतत्व की अनुभूति एवं सांसारिक विपयों के परित्याग में निहित मानी थी। इनके समकालीन अबू सुलेमान दारानी (मृ० सं० ८८७) का कहना था कि एक सच्चे आध्यात्मिक पुरुष की साधारण आँखें उसके ज्ञानचक्षु के खुलते ही, मुंदी-सी हो जाती हैं और उसे परमेश्वर के

अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं दीख पड़ती । दारानी दमिश्क के निकट-वर्ती दारानगर में रहते थे । इनसे कुछ ही दिन पीछे, शाम से पूर्व की ओर मिस्र देश के अन्तर्गत जूलनून् मिस्री (मृ० सं० ९१६) का जन्म हुआ था जिन्हें सनातनपंथी मुसलमानों ने काफिर अर्थात् इस्लाम-विरोधी समझ-कर कारादंड दे दिया और कुछ काल तक यातना भुगतने पर ही उन्हें मुक्ति मिली। आध्यात्मविद्या के वे प्रगाढ़ पंडित माने जाते थे और प्रसिद्ध जामी जैसे सूफ़ी लोगों ने भी उन्हें आगे चलकर अपने 'आदिगुरु' के रूप में स्वीकार किया था । सूफ़ी मत में वस्तुतः इन्हीं के द्वारा नवअफलातूनी विचारधारा का समावेश हुआ और इन्होंने ही उसमें भावावेश को भी सर्वप्रथम प्रश्रय दिया ।

वायाज़ीद जुनैद व शिबली

जूलनून् मिस्री के अनन्तर, इस युग के प्रसिद्ध सूफ़ियों में, अबू-याज़ीद अथवा वायाज़ीद अल् बस्तामी का नाम आता है। ये भी एक प्रख्यात सूफ़ी थे, और इन्होंने ही कदाचित् सर्वप्रथम, 'फ़ना' अर्थात् सूफ़ियों के 'निर्वाण' का प्रतिपादन किया था। इनकी विचार-धारा पर सर्वात्मवाद का भी पूरा प्रभाव था और ईश्वर एवं विश्व को इन्होंने समव्यापी तथा अभिन्न तक ठहराया था । इनका वंशपरंपरागत संबंध किसी ईरानी परि-वार के साथ रह चुका था और इनकी मृत्यु सं० ९३१ वा ९३२ में हुई थी। वग़दाद निवासी अलजुनैद (मृ० सं० ९४६) ने उक्त मिस्री की उपदेशावली को क्रमबद्ध रूप में प्रकाशित किया और उनके शिष्य खोरासानी शिबली ने उसका सर्वत्र प्रचार किया। जुनैद अपने समय के सूफ़ियों में अग्रगण्य माने जाते थे, किन्तु वे सनातनपन्थी इस्लाम एवं सूफ़ी मत में सामंजस्य लाने के भी पक्षपाती थे ।

मंसूर वा हल्लाज

फिर भी इस युग के सूफ़ियों में सबसे प्रसिद्ध नाम हुसैन बिन मंसूर अथवा हल्लाज का है। ये व्यवसाय की दृष्टि से ऊन का काम किया करते थे, उपर्युक्त जुनैद के मुरीद थे और इनके पिता ईरानी थे। इनका जन्म सं० ९१५ में हुआ था और ये कई भिन्न भिन्न सूफ़ियों के संपर्क में रहकर अध्यात्म विद्या उपलब्ध करने का प्रयत्न कर चुके थे। ये ईरान के अतिरिक्त भारत, ख़ोरासान एवं तुर्किस्तान आदि देशों में भी भ्रमण कर तीन बार मक्का की तीर्थयात्रा में गये थे और अन्त में बग़दाद आकर बस गये। ये एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे और स्वाधीनचेता होने के साथ साथ स्पष्टवादी भी थे। इन्होंने अपने विचारस्वातन्त्र्य के आवेश में आकर 'अन अल् हक्' अर्थात् 'मैं सत्य वा परमतत्व स्वरूप हूँ' जैसी अद्वैतवादी स्पष्टोक्ति द्वारा सनातनपंथी मुसलमानों को अपना विरोधी बना लिया जिस कारण इन्हें आठ वर्षों तक बंदी जीवन व्यतीत करना पड़ा और अन्त में ये सं० ९७९ में सूली तक पर चढ़ा दिये गये। इनके कथन अधिकतर गूढ़ एवं रहस्यमय हुआ करते थे और इनकी उपलब्ध रचना 'किताबुत्तवासीन' भी उनकी ऐसी ही बातों से भरी पड़ी है। इनके कई परमगूढ़ सिद्धांतों पर आगे चलकर इब्न अरबी एवं जिली ने बहुत कुछ प्रकाश डाला है और लुई मसिग्नन ने अपने संपादन में उन्हें स्पष्टतर किया है। हल्लाज को अपनी यन्त्रणा के लिए कोई कष्ट न था और उनका कहना था "परमेश्वर ने इस विषय में मुझे अपने निजी मित्र के रूप में माना है क्योंकि इन कष्टों के द्वारा उसने मुझे वही प्याला पीने को दिया है जिसे स्वयं उसने अपने अधरों में लगाया था।"

प्रतिक्रिया

मिस्री, बायाज़ीद और विशेषकर हल्लाज की विचारधाराओं ने

इस युग के अन्तर्गत सूफ़ियों में नई बातें ला दीं जिस कारण प्राचीन पद्धति के प्रेमी मुसलमानों ने उनकी ओर संदेह के साथ देखना आरंभ कर दिया और वे प्रत्यक्ष विरोध तक करने लगे। अतएव सूफ़ी मत के कुछ प्रचारकों ने समय की गतिविधि को पहिचान कर उसके अनुसार दोनों में सामंजस्य लाने की चेष्टा की। इस प्रकार के सूफ़ियों में ही जुनैद भी थे जो इसी युग के अन्तर्गत उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने ढंग से इस ओर बहुत कुछ किया। उनके युग के सूफ़ी लोग साधारणतः प्रेमोन्माद के द्वारा अधीर होकर ईश्वर एवं मानव के अभेद पर अधिक जोर देते थे और क़ुरानोपदिष्ट आचार-विचारादि की अवहेलना कर धार्मिक नित्य कर्मों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे जिस कारण सर्वसाधारण उन्हें विधर्मी समझ लेता था। किंतु जुनैद को न तो उपर्युक्त अधीरता पसंद थी और न वे नमाज़ प्रभृति कृत्यों को उपेक्षित रखना ही उचित समझते थे। हल्लाज जैसे क्रांतिकारियों के युग में रहते हुए भी उन्होंने सदा सामंजस्य लाने की चेष्टा की और इस प्रकार की मनोवृत्ति को, आगे चलकर, अन्य सूफ़ियों ने इतना महत्त्व प्रदान किया कि हल्लाज के अनंतर आने वाले सूफ़ियों का एक नवीनयुग ही बन गया। इस तृतीय युगके सूफ़ियों ने न केवल एक समन्वय की प्रवृत्ति दिखलाई, अपितु उन्होंने सूफ़ीमत में एक प्रकार की सुव्यवस्था लाने के भी प्रयत्न किये।

(ग) तृतीय युग

इस युग की विशेषता

सूफ़ीमत का वास्तविक इतिहास उसके तृतीय युग से ही आरंभ होता है जबकि उसके आचरण प्रधान प्रथम युग तथा चिंतन-प्रधान द्वितीय युग की सारी बातें क्रमशः स्पष्ट हो गई रहती हैं और उनके क्षेत्र एवं सीमा के विषय में एक बार पुनर्विचार कर के उन्हें भली भांति निर्धा-

रित कर देने तथा उनके महत्वादि का मूल्यांकन करने का उचित अवसर आ उपस्थित होता है। प्रथम युग के प्रधान सूफ़ियों के जीवनवृत्तों एवं उपदेशों के संग्रह इस समय तक बनने लगे थे और द्वितीय युग के प्रमुख सूफ़ी पंडितों के समय समय पर किये गए विविध कथनों को क्रमबद्ध करने की प्रणाली भी चल पड़ी थी। अब से भिन्न भिन्न सिद्धान्तों का वर्गीकरण कर उनके आधार पर विविध शाखाओं वा उपसंप्रदायों का अस्तित्व निर्धारित करना तथा उनमें पायी जाने वाली विशेषताओं को लक्ष्य में रख कर उन्हें मूल इस्लामधर्म के सामने न्यूनाधिक अनुकूल वा प्रतिकूल ठहराना भी आवश्यक समझा जाने लगा। इस युग में सूफ़ीमत के कई ऐसे संप्रदायों का भी संगठन व प्रचार हुआ जिनके प्रवर्त्तकों का आविर्भाव पहले युगों में ही हो चुका था और इस काल के अंतर्गत अनेक ऐसे विद्वान हुए जिन्होंने उसके मूलभूत सिद्धान्तों को अपने अपने ढंग से प्रतिपादित करने की चेष्टा की। यह युग सूफ़ीमत के प्रचार की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है और इस कार्य में धर्माचार्यों के अतिरिक्त कवियों ने भी पूरा सहयोग किया।

कालाबाधी व हुज्विरी

सूफ़ी मत को सुव्यवस्थित रूप देकर उसके विभिन्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाले इस युग के ग्रंथकारों में कालाबाधी (मृ० सं० १०५२) हुज्विरी (मृ० सं० ११४९) एवं ग़ज़ाली (मृ० सं० ११६८) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अबूबकर अल् कालाबाधी ने 'सूफ़ीमतवाद का प्रकृत स्वरूप निर्णय' का समानार्थक ग्रंथ लिखा जिसके द्वारा उन्होंने यह प्रतिपादित कर दिखाया कि विचारपूर्वक देखने पर यह मत मूल इस्लामधर्म का किसी प्रकार भी विरोधी नहीं है, अपितु उसी के सिद्धान्तों का पोषक है। इसी प्रकार अबुल हसन अल् हुज्विरी ने भी अपनी

रचना 'कश्फ़ुल महजूब' (रहस्योद्घाटन) के द्वारा सूफ़ीमत एवं इस्लाम-धर्म के बीच पूर्ण सामंजस्य प्रमाणित करने की चेष्टा की और अपने समय के प्रचलित सूफ़ीसंप्रदायों का वर्गीकरण कर उनमें पायी जाने वाली विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन व विवेचन किया। हुज्विरी ने इसके अतिरिक्त ९ अन्य ग्रंथों की भी रचना की थी किन्तु उक्त ग्रंथ ही उनमें सर्वश्रेष्ठ सामझा जाता है और सूफ़ीमत पर लिखी गई फ़ारसी भाषा की पुस्तकों में प्राचीनतम भी माना जाता है हुज्विरी को, उनके लोकप्रिय होने के कारण, 'हजरत दाता गंज' भी कहा जाता था और, उनकी समाधि उनके मृत्युस्थान लाहौर में बनी हुई है। 'कश्फ़ुल महजूब' के अध्ययन से पता चलता है कि उसके रचना-काल तक कम से कम १२ सूफ़ी संप्रदाय बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे।

ग़ज़ाली

परन्तु इन दोनों से भी प्रसिद्ध एवं गंभीर ग्रंथ-रचयिता अबू हमीद मुहम्मद अल् ग़ज़ाली हुए जिनकी विद्वत्ता एवं योग्यता के कारण सूफ़ी मत एवं मूल इस्लाम धर्म का पृथकत्व प्रायः लुप्त होता सा दीख पड़ा और पहले को दूसरे के अंतर्गत सदा के लिए स्वीकृत कर लिया गया। ये 'इस्लामधर्म के प्रमाण स्वरूप' कहे जाते हैं और सूफ़ी लोग इन्हें अपने मत को सुव्यस्थित करने वालों में अत्यन्त उच्च स्थान प्रदान करते हैं। इन्होंने मूल इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का सब से स्पष्ट और सुन्दर विवेचन किया है और सूफ़ी मत के क्रान्तिकारी विचारों तक के साथ उनका सामंजस्य बिठाकर एक ऐसा रूप दे दिया है जिससे सनातनपंथी मुसलमानों को भी सूफ़ियों को अपनाने में कोई हिचक नहीं जान पड़ती। ग़ज़ाली के यहां तौहीद (एकत्व) एवं तवक्कुल (आत्म समर्पण) का पूरा गठबंधन दीख पड़ता है और नमाज़ (प्रार्थना) एक सच्चे हृदय का स्वाभा-

विक कर्त्तव्य बन जाता है जिस कारण आध्यात्मिक जीवन में एक प्रकार की अपूर्व शक्ति आ जाती है। इस्लामधर्म एवं सूफ़ीमत का पार्थक्य दूर हो जाने से दोनों का प्रचार दोनों के लिए एक ही साथ आरम्भ हो गया और पारस्परिक विरोध का अवसर सदा के लिए जाता रहा।

१२ मुख्य शाखाएं

हुज्विरी ने अपने समय तक बने हुए जिन पर सूफ़ी संप्रदायों का वर्णन किया था उनमें उन्होंने स्थूलतः दो वर्ग पाये थे जिनमें से दो अर्थात् हुलूली (अवतारवादी) तथा हल्लाजी (हल्लाज के अनुयायी अद्वैत-वादी) को उन्होंने मर्दूद (निन्दनीय) ठहराया था और शेष दसा को मक़बूल (स्वीकार योग्य) माना था। इन दस प्रकार की शाखाओं के अंदर जो भेदभाव लक्षित होते थे वे यातो किसी नवीन जान पड़ने वाली धारणा के कारण थे अथवा क़िसी न किसी बात का अभिप्राय समझने में मतभेद उठ खड़े हो जाने के कारण उत्पन्न हो गए थे और उतने गंभीर एवं स्थायी नहीं थे। इसके सिवाय इन दस में से कुछ का विशेष ध्यान केवल दार्शनिक विचारों के विश्लेषण की ओर जाता था और कुछ के लिए सदाचार की बातें ही अधिक महत्व रखती थी। किसी किसी विद्वान् ने इनका परिचय इस प्रकार भी दिया है कि इनमें से नव तो ऐसे थे जिन्हें, मूल इस्लामधर्म के विचार से, उसके अत्यन्त निकट, कुछ निकट, कम निकट जैसे कथनों द्वारा किसी एक क्रम में रख सकते हैं और दशम अर्थात् शेखजुनैद का वर्ग इस प्रकार का था जिसे दो परस्पर विरोधी वर्गों के बीच का भी कह सकते हैं। सूफ़ी संप्रदायों के ऐसे वर्गीकरण वस्तुतः सूक्ष्म बातों पर केवल तर्क-वितर्क होते आने के कारण, कर दिये गए थे। उनका न तो कोई दृढ़ आधार था और न कोई वैसा महत्व ही था।

सुहर्वर्दी और अरबी

शेख़ जुनैद के उठाये हुए उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण कार्य को, आगे चल कर शेख शिहाबुद्दीन सुहर्वर्दी ने पूरा कर दिखाया। ये अपनी सारी ग्रंथ-सामग्री लेकर बग़दाद से मक्का गये और वहां पर इन्होने 'अवारिफ़ुल मारूफ़' (ईश्वरीय ज्ञान का प्रसाद) नामक एक ऐसी पुस्तक लिख डाली जो प्रायः सभी वर्ग के सूफ़ियों के लिए आज तक सर्वश्रेष्ठ प्रमाण-ग्रंथ मानी जाती है। मूल पुस्तक अरबी भाषा में लिखी गई थी जिसका उर्दू अनुवाद भारत में सर्वत्र उपलब्ध है। शेख शिहाबुद्दीन का देहान्त सं० १२९१ में हुआ था और लगभग एक ही दो दशकों के भीतर दिल्ली तक यह पहुँच गई। शेख़ सुहर्वर्दी के अतिरिक्त एक अन्य सूफ़ी विद्वान ने भी लगभग वैसा ही काम किया और उसका नाम शेख़ मुहीउद्दीन इब्न अरबी (सं० १२२१-१२९७) था जो स्पेन देश का निवासी था। उसने सूफ़ियों के उन वर्गों के सिद्धान्तों की ओर विशेष ध्यान दिया जो मूल इस्लाम-धर्म के घोर विरोधी समझे जाते थे। शेख अरबी ने उनकी विचारधारा का गंभीर अध्ययन किया और उनके मौलिक सिद्धान्तों को बड़ी योग्यता के साथ प्रतिपादित किया। कहा जाता है कि शेख सुहर्वर्दी एवं शेख़ अरबी की आपस में भेंट भी हुई थी। वे मक्के में एक दूसरे को देख कर चुपचाप रह गए थे।

सूफ़ी काव्य का प्रचार

सूफ़ी मत के प्रचार में इस युग के जिन कवियों का प्रमुख हाथ रहा उनमें उमर ख़य्याम (मृ० सं० ११८०), सनाई (मृ० सं० ११८८), निज़ामी (मृ० सं० १२६०) और अत्तार (मृ० सं० १२८७) के नाम लिये जा सकते हैं। इन फ़ारसी कवियों की परम्परा बहुत आगे तक चली और इनमें रूमी (मृ० सं० १३३०) सादी (मृ० सं० १३४९), शब्स-

तरी (मृ० सं० १३७७), हाफ़िज़ (मृ० सं० १४४७) एवं जामी (मृ० सं० १५४९) जैसे प्रतिभाशाली कवि उत्पन्न हुए जिन पर फ़ारसी-साहित्य आज भी उचित गर्व किया करता है। इनमें सनाई मसनवी-पद्धति के सर्वप्रथम प्रसिद्ध कवि थे और अत्तार एवं रूमी ने उसे क्रमशः उच्चतम कोटि तक पहुंचा दिया। सूफ़ीमत के द्वितीय युग में जो बातें निरी उपदेशमय जान पड़ती थीं और तृतीय युग के धर्माचार्यों तक ने जिन्हें कोरा धार्मिक जामा मात्र पहना पाया था उन्हें इन कवियों ने आकर्षक रूप देकर सुन्दर और सजीव बना दिया और वे सर्वसाधारण के हृदयों में पूर्णतः परिचित सी होकर प्रवेश करने लगीं। सूफ़ियों के व्यक्तिगत जीवन और सिद्धान्तों में इनकी काव्य-रचनाओं के द्वारा इतनी सरसता आ गई कि इस मत के प्रथम युग का शुष्क वैराग्य प्रायः विस्मृत सा हो चला और उसका स्थान प्रेम व विरह ने ले लिया। फ़ारसी-काव्य के आदर्श ने अन्य भाषाओं के साहित्यों पर भी अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया, भारत में उर्दू काव्य को पूर्णतः अधिकृत कर लिया और हिन्दी-काव्य में भी प्रेमगाथा-परंपरा चला दी।

पीछे का इतिहास

सूफ़ीमत के इतिहास के इस तृतीय युग तक इस्लाम धर्म का प्रचार संसार के प्रायः कोने-कोने तक होने लगा था। मुस्लिम विजेता जहां कहीं भी पहुँचे वहां पर उन्होंने अपने 'मज़हब' का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। उनका मूल इस्लामधर्म अधिकतर तलवार के बल फैला, किन्तु सूफ़ीमत उसके साथ मुस्लिम उपदेशकों और प्रचारकों के द्वारा प्रवेश करता गया। सूफ़ीमत का प्रचार करने वालों ने बलप्रयोग की अपेक्षा अपनी चमत्कारपूर्ण चेष्टाओं से अधिक काम लिया और जहां कहीं भी वे पहुँचे वहां पर उन्होंने अपने सांप्रदायिक संगठनों के आधार पर ही अपना

प्रभुत्व जमाना चाहा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों के अंतर्गत इसकी अपनी संस्थाएं स्थापित हो गई और अनुकूल वातावरण के अनुसार सहयोग प्राप्त करती हुई वे पृथक् रह कर भी आगे बढ़ने लगीं। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के लगभग पूर्वार्द्ध से ही इस प्रकार की प्रवृत्ति विशेष रूप में देखी जाने लगती है और सूफ़ीमत के इतिहास को तब से इसीलिए, भिन्न भिन्न देशों के अनुसार लिपि-बद्ध करना अधिक संगत प्रतीत होता है। उस समय के अनन्तर इसके स्थानीय प्रचारकों, मठों एवं स्थानीय साहित्य व परंपराओं में पूरी वृद्धि हो जाती है और प्राचीन केन्द्रों का प्रत्यक्ष संबंध नहीं रह जाता।

३—सूफ़ीमत का स्वरूप

विषय प्रवेश

सूफ़ीमत इस्लाम धर्म का ही एक अंग है इसलिए अपनी पृष्ठ-भूमि के लिए इसे अंततः मुस्लिमधर्मग्रंथों का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ता है और उन्हीं के वातावरण में उत्पन्न संस्कार इसे, स्वभावतः, अनुप्राणित भी किया करते हैं। फिर भी, भिन्न भिन्न देशों और उनके महापुरुषों का प्रभाव निरंतर पड़ते रहने के कारण, इसमें कई बाह्य बातों का भी समावेश हो गया है और इसके मौलिक सिद्धान्तों एवं साधनाओं तक में बहुत कुछ मतभेद आ गया है। उदाहरण के लिए ईश्वर, जगत् अथवा मानव संबंधी दार्शनिक प्रश्नों पर सभी सूफ़ी एक प्रकार का मत प्रकट करते हुए नहीं जान पड़ते और यही बात कभी कभी उनकी धार्मिक साधना-संबंधी विचार-धारा की विभिन्नतामें भी दीख पड़ती है। सूफ़ीमत के कुछ संप्रदाय सनातनपंथी इस्लामधर्म से अधिक दूर जाना नहीं चाहते और वे ऐसा प्रयत्न करते हैं कि हमारी बातें भरसक उसके धर्म-

ग्रंथों द्वारा भी पुष्ट कर दी जाय, किन्तु इसके कुछ अन्य ऐसे भी वर्ग हैं जो इसके लिए अधिक चिंतित नहीं रहा करते और स्वानुभूति एवं स्वतन्त्र विचारों का प्रमाण देने में वहुत कम संकोच करते हैं तथा कभी-कभी 'दीने इस्लाम' के मार्ग से अपने को वहकता हुआ पाकर भी खेद प्रकट नहीं करते। सूफ़ी मत की विचार-धारा पर इस्लामेतर धर्मों का भी वहुत कुछ प्रभाव पड़ गया है जो इसके तुलनात्मक अध्ययन से प्रकट होता है।

(क) सिद्धांत

(१) ईश्वर-तत्त्व

ईश्वर संवंधी मत

ईश्वर-तत्त्व के सम्वन्ध में मुस्लिम दार्शनिक विचार प्रधानतः तीन प्रकार के दीख पड़ते हैं और उनके अनुसार तीन वर्ग भी वन गए हैं। सव से पहला वर्ग 'इज़ादिया' लोगों का है जो ईश्वर का अस्तित्व जगत् से पृथक् मानते हैं और इस वात में विश्वास करते हैं कि उसने इस सृष्टि को 'कुछ नहीं' अथवा शून्य से उत्पन्न किया। इस मत को हम शुद्ध 'एके-श्वर वाद' कह सकते हैं। इसी प्रकार एक दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो 'शुदूदिया' कहलाते हैं और जिनका विश्वास है कि, ईश्वर इस जगत् से परे है, किन्तु उसकी सभी वातें इसमें किसी दर्पण के भीतर प्रतिविम्व की भांति, दीख पड़ती हैं। इस वर्ग के सिद्धान्त को हम एक प्रकार के 'सर्वात्मवाद' की संज्ञा दे सकते हैं। तीसरा वर्ग उन लोगों का है जो 'वुजू-दिया' कहलाते हैं और जिनका कहना है कि ईश्वर के अतिरिक्त, वास्तव में, अन्य कोई वस्तु नहीं है। वही एक मात्र सत्ता है और विश्व की अन्य जितनी भी वस्तुएं हैं उन्हें हम, 'हम अस्त' (वही सव कुछ है) के अनुसार उसी का रूप समझ सकते हैं, इस वर्ग के लिए हम एकात्मवादी

अथवा एकतत्त्ववादी का नाम प्रयोग में ला सकते हैं। इन तीनों में से प्रथम इस्लामधर्म की मूल विचार-धारा के अनुकूल है और उसमें सभी प्रकार के मुस्लिम विश्वास रखते हैं। केवल दूसरे और तीसरे वादों का ही ठेठ सूफ़ी मत के साथ संबंध है और इन्हीं में से किसी न किसी को प्रकट करते समय उसके भीतर मतभेद का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है।

ईश्वर और जगत्

ईश्वर जगल्लीन (Immanent) अर्थात जगत् के भीतर ओतप्रोत है अथवा वह जगद्बहिर्भूत (Transcendent) अर्थात् दृश्यमान जगत् से नितान्त परे है ? के विषय में सूफ़ियों के पांच प्रकार के मत दीख पड़ते हैं। (क) उनमें से अधिकांश इस बात में आस्था रखते हैं कि ईश्वर जगत् से परे रह कर भी उसमें लीन है। उदाहरण के लिए 'गुलशने राज़' का सूफ़ी कवि कहता है "हमारे प्रियतम का सौन्दर्य अणुपरमाणु तक के अवगुण्ठन में लक्षित होता है।" फिर भी उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो जगत है वही ईश्वर है और जो ईश्वर है वही जगत् है अर्थात् उसे दार्शनिकों के सर्वात्मवाद (Pantheism) में विश्वास नहीं है, अपितु वह ईश्वराधिकत्ववाद (Panentheism) को स्वीकार करता है। उसके अनुसार ईश्वर जगत् में उसके अंतरात्मा के रूप में परिव्याप्त है, किन्तु उसके कारण वह किसी प्रकार सदोष वा सीमाबद्ध नहीं कहा जा सकता। (ख) सूफ़ियों में से इब्न अरबी ने सर्वात्मवाद वा विश्वात्मवाद का प्रचार किया और उनके अनुसार ईश्वर एवं जगत् समपरिमाणरूप है। (ग) जिली का, इसी प्रकार, कहना है कि जगत् की कोई भिन्न सत्ता नहीं, स्वयं ईश्वर ही जगत् रूप है, दोनों दो भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं है। (घ) परन्तु हुज्विरी के मत से ईश्वर एवं जगत् पृथक पृथक वस्तुएँ हैं और ईश्वर जगत् से बाहर है। यह मत एक-

देववाद (Deism) का समर्थन करता है। (ङ) अंत में इन चारों से भिन्न उन रूमी प्रमुख सूफ़ियों का मत जान पड़ता है जो ईश्वर को न तो जगत् में लीन समझते हैं और न उसे इससे बाहर ही मानते हैं। वे यह भी स्वीकार नहीं करते कि वह एक ही साथ इसके भीतर एवं बाहर दोनों प्रकार से रहता है अथवा उसकी स्थिति इन दोनों अर्थात् बाहर और भीतर के अतिरिक्त किसी मध्यवर्त्ती ढंग की है। 'बाहर' और 'भीतर' शब्दों के प्रयोग केवल भौतिक पदार्थों के लिए होते हैं, इनके द्वारा उसके स्वरूप का वर्णन असंभव है।

ईश्वर निर्गुण वा सगुण

सूफ़ियों ने, ईश्वर का गुणादि के अनुसार भी वर्णन करते समय, आपस में मतभेद प्रकट किया है। इब्न अरबी, हल्लाज एवं जामी प्रभृति सूफ़ियों का कहना है कि ईश्वर केवल शुद्ध-स्वरूप अथवा सत्तामात्र, निर्गुण एवं निर्विशेष है। यह उसका अनभिव्यक्त रूप है जो अपूर्ण और अवर्णनीय है। तथा जिसे निरपेक्ष (Absolute) भी कह सकते हैं। उस परमात्मा का, इनके अनुसार, एक अन्य भी रूप है जो सगुण और सविशेष है तथा जिसे ही, वास्तव में, हम 'ईश्वर' (God) भी कह सकते हैं। वह परमात्मा वा परमतत्व रूप से इस दूसरे व्यक्त रूप में आकर ही ईश्वर नाम से अभिहित किया जाता है। परन्तु हुज्विरी कालावधि जैसे सूफ़ियों के अनुसार वह तत्व सर्वप्रथम दशा से ही सगुण रूप में विद्यमान है और उसके गुणों की संख्या अनंत है। इन दोनों में से प्रथम, वेदांत के शांकराद्वैतवाद की भांति जान पड़ता है और दूसरा विशिष्टाद्वैत सा प्रतीत होता है। फिर भी ऐसा कहना भ्रमात्मक है। शांकराद्वैत के अनुसार ब्रह्म को एक बार निर्गुण और फिर उसी को व्यक्त रूप में सगुण नहीं कहा जा सकता। उसका ब्रह्म सगुण रूप में परिणत न होकर वैसा केवल प्रतीयमान भर होता

है। परमार्थतः वह निर्गुण, निरुपाधि एवं निर्विशेष है। उसका व्यवहारतः लक्षित होने वाला 'सगुण ब्रह्म' रूप उसका परिणाम न होकर केवल विवर्त वा सामयिक प्रतीतिमात्र है। इसी प्रकार ईश्वर के गुण एवं कार्य के संवंध में सूफ़ियों तथा विशिष्टाद्वैतवादियों की विचार-धाराओं में वहुत अंतर दीख पड़ता है।

(२) सृष्टितत्त्व

सृष्टि का उद्देश्य

सूफ़ियों ने ज़गत् की सृष्टि के अंतिम उद्देश्य, उसकी प्रक्रिया, उसके स्वरूप आदि सभी आवश्यक वातों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। शामी परंपरानुसार कहा जाता है कि एक वार हज़रत दाऊद ने ईश्वर से प्रश्न किया था "हे प्रभो, आपने मानव जाति की सृष्टि क्यों की?" जिसका उन्हें उत्तर मिला था "मैंने अपने गूढ़ रहस्य को व्यक्त करने की इच्छा से ऐसा किया।" वास्तव में हल्लाज आदि सूफ़ियों के उपर्युक्त ईश्वर संवंधी मत से इस वात की संगति दीख पड़ती है, क्योंकि उनके अनुसार भी निर्गुण वा अव्यक्त ईश्वर ने अपने को व्यक्त वा सगुण रूप में परिणत किया था जिसका कार्य विश्व रूप में प्रकट हुआ। हल्लाज ने कहा है कि ईश्वर अपने स्वरूप का निरीक्षण कर अपने आप रीझ गया और उसके उस आत्म-प्रेम का ही सृष्टिरूप में आविर्भाव हुआ। मानवरूपी दर्पण में अपनी प्रतिच्छवि देखकर उसे आत्मज्ञान के साथ साथ तज्जनित आनन्दलाभ की इच्छा भी तृप्त हो गई। ईश्वर की यह आनन्दाभिलाषा, संभवतः उस लीलाजनित आनन्द के द्वारा पूर्ण हुई जिसकी कल्पना का आभास हमें वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद में मिलता है। विश्व की सृष्टि इस प्रकार, ईश्वर के स्वतः स्फूर्त एवं अपरिमेय आनन्द का एक मूर्त्त विकासमात्र है। उसका उद्देश्य

किसी साधारण अभाव की पूर्ति अथवा किसी वासना की तृप्ति के समान नहीं है अन्यथा ईश्वर में किसी कमी का भी आरोप हो जायगा।

सृष्टिकी प्रक्रिया

सूफ़ियों के अनुसार उक्त प्रकार के उद्देश्य को स्वीकार कर लेने पर इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि अव्यक्त ईश्वर ही स्वयं व्यक्त रूप में परिणत हो गया और इस आधार पर सृष्टि-प्रक्रिया को परिणामवाद कहना उचित ठहरता है। किन्तु ऐसी दशा में उनके 'शून्य से सृष्टि-रचना' वाले मत के साथ इसकी संगति नहीं बैठती। अव्यक्त के अनन्तर उसके व्यक्त गुणों की सृष्टि और तदुपरान्त जगत् की सृष्टि के नियमानुसार जहाँ पर जगत् के उपादान कारण ईश्वरीय गुण कहे जा सकते हैं वहाँ पर परमेश्वर द्वारा शून्य से जगत् की सृष्टिवाले मत के अनुसार जगत् का उपादान कारण कोरा 'शून्य' सिद्ध हो जाता है। इन दोनों में से पहला मत हल्लाज जैसे विज्ञान-वादियों का है और दूसरा हुज्विरी जैसे मूल इस्लाम धर्म के प्रेमी सूफ़ियों का है। फिर भी विश्वसृष्टि (Cosmology) के विषय में सभी सूफ़ी प्रायः एक मत के ही दीख पड़ते हैं। अधिकांश सूफ़ियों के अनुसार परमेश्वर ने सर्वप्रथम अपने नाम के आलोक से 'नूरुलमुहम्मदिया' अर्थात् 'मुहम्मदीय आलोक' की सृष्टि की और वही आदिभूत बन गया। फिर उसी 'नूर' संबंधी उपादान कारण से पृथ्वी, जल, वायु एवं अग्नि नाम के चार तत्वों की सृष्टि हुई, फिर आकाश और तारे हुए और उसके अनन्तर सप्तभुवन धातु, उद्भिज पदार्थ, जीवजन्तु एवं मानव की रचना हुई जिनके द्वारा ब्रह्मांड बना तथा अनेक ब्रह्मांडों का विश्व प्रादुर्भूत हुआ।

मानव शरीर

सूफ़ियों के अनुसार 'मानव' सृष्टि का चरमोत्कर्ष है और वही ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति है। अतएव, जो कुछ मानव के शरीर में

निर्मित है वह ईश्वर की आंशिक प्रतिच्छवि जगत् से भी अधिक है और वह उसका पूर्ण प्रतिरूप कहा जा सकता है। मानव शरीर में उपर्युक्त पृथ्वी जल, वायु एवं अग्नि के अतिरिक्त जड़, आत्मा, अर्थात् 'नफ़्स' का भी समाहार है और ये उसका जड़ अंश बनाते हैं। मानव शरीर का आध्यात्मिक अंश उसके हृदय (क़ल्ब) आत्मा (रूह) ज्ञानशक्ति (सिर्र) उपलब्धि शक्ति (ख़फ़ी) तथा अनुभूति शक्ति (आख़्फ़ा) का समाहार है और इनमें से क़ल्ब उसकी बाईं ओर आत्मा दाहिनी ओर सिर्र दोनों ओर के मध्य भाग में ख़फ़ी ललाट देश में और आख़्फ़ा मस्तिष्क अथवा वक्षस्थल में अवस्थित हैं और विशेषतः इन्हीं के कारण उसके मानवत्व की सिद्धि होती है। इन उक्त पांच जड़ एवं पांच आध्यात्मिक उपदानों द्वारा निर्मित मानव पृथ्वीतल पर वर्तमान रहकर भी उसके पार्थिव तत्त्वों पर अधिकार प्राप्त कर अपने आध्यात्मिक स्वरूप की उत्तरोत्तर उन्नति में प्रवृत्त होता है और उसी को अपना कर्तव्य समझता है। नफ़्स अथवा जड़ आत्मा उसे कार्यमें बाधा पहुँचाता है और उसे पाप की ओर ले जाने की चेष्टा करता है, किंतु रूह अथवा अजड़ आत्मा की ईश्वरीय शक्ति उसे क़ल्ब अथवा हृदय के स्वच्छ दर्पण में परमेश्वर को प्रतिबिंबित कर देती है और उसका अपने प्रियतम के साथ मिलन हो जाता है।

(३) मानवतत्त्व

पूर्ण मानव

अधिकांश सूफ़ियों के अनुसार मानव की पूर्णता उसके जीवन का परम लक्ष्य होना चाहिये। प्रसिद्ध सूफ़ी इब्न अरबी ने इस पूर्णमानव (आल् इंसानुल कामिल) के प्रश्न को सब से पहले महत्व दिया था। उन्होंने बतलाया था कि किस प्रकार पूर्णमानव ही ईश्वर

की एकमात्र पूर्ण अभिव्यक्ति है और जगत की अन्य वस्तुएं केवल उसके गुणों को ही व्यक्त करती हैं, सृष्टि का चरमोत्कर्ष जिस प्रकार मानव कहा जाता है उसी प्रकार पूर्ण मानव उसका भी चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है प्रत्येक मानव के भीतर परिपूर्णता बीज रूप में स्वभावतः निहित रहा करती है और इसी कारण उसमें सभी ईश्वरीय गुणों की सम्भावना है। पूर्ण मानव के रूप में वह अन्य मानवों तथा ईश्वर के बीच मिलनसेतु का काम करता है। जिली के अनुसार मुहम्मद सर्वश्रेष्ठ पूर्णमानव हैं और इसी कारण, मुहम्मदीय ज्ञान (अल् हक़ीक़तुल मुहम्मदिया) का विशेष महत्त्व है। अतएव, सूफ़ियों का पूर्ण मानव अथवा सिद्ध पुरुष अद्वैतवादियों के जीवन्मुक्त से नितांत भिन्न हो जाता है। सूफ़ियों का पूर्णमानव उक्त प्रकार से सृष्टि का आदि उपादान कारण है। जहां पर अद्वैतवादियों का जीवन्मुक्त ऐसा कुछ भी नहीं। वह ईश्वर की अभिव्यक्ति नहीं, स्वयं ब्रह्म-स्वरूप है। उसके एवं परमेश्वर के बीच कोई सेवक-सेव्य संबंध नहीं और न कोई उपासक एवं उपास्य का ही भाव काम करता है। पूर्ण मानवत्त्व की उपलब्धि प्रेममूलक है जहां पर जीवन्मुक्त की स्थिति ज्ञानमूलक है और वह जगत् का धर्मगुरु न होकर ज्ञानगुरु हुआ करता है।

नबी और औलिया

सूफ़ियों ने अपने साधुओं को भी पूर्ण मानव के रूप में माना है और उन्हें 'वली' वा 'पीर' की संज्ञा दी है। मूल इस्लामधर्म के प्रेमी सूफ़ी साधारणतः धर्मप्रवर्तकों (नबियों, पैग़बरों) एवं साधुओं (पीर, औलिया) में कुछ विभेद पाते हैं। उनका कहना है कि द्वादश प्रसिद्ध धर्मप्रवर्तकों (अर्थात-नूह, इब्राहिम, इस्माइल, आइज़ाक, जेकब, जोब, ईसा, मूसा, सुलेमान, दाऊद, अर्न तथा मुहम्मद) में मुहम्मद ही सबसे अंतिम और सर्वश्रेष्ठ हैं और उनके अनंतर इस कोटि का कोई नहीं समझा जा सकता। इसके

सिवाय धर्मप्रवर्तकों अर्थात् नवियों का ईश्वर के साथ नित्य संबंध है जो अन्य प्रकार के पूर्णमानव को उपलब्ध नहीं। किंतु विज्ञानवादी सूफ़ी इस बात में आस्था नहीं रखते और कहते हैं कि पूर्णमानव होने पर मुहम्मद के अनंतर भी वह स्थिति मिल सकती है। रूमी का स्पष्ट शब्दों में कहना है कि प्रत्येक मानव ईश्वर के संपर्क में आकर उसका साक्षात कर सकता है। नवी की सहायता अपेक्षित नहीं है और न किसी मध्यस्थ के बल पर आशा करके उसे आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। हां, पीर अथवा सद्गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए उससे संकेत लेना तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए उसका आदर्श ग्रहण करना आवश्यक माना जा सकता है। पूर्ण मानव को कतिपय सूफ़ियों ने अवतार रूप में भी स्वीकार करने की भावना प्रदर्शित की है, किंतु इसमें अधिकांश सहमत नहीं हैं।

फ़ना और वक़ा

सूफ़ियों ने मानव जीवन के उद्देश्य को दो प्रकार से समझा है जिनमें से एक अभावबोधक और दूसरा भावबोधक है। अभाव सत्ता का नाम उन्होंने 'फ़ना' अर्थात् विलय वा ध्वंस दिया है और भाव बोधक को 'वक़ा' के नाम से अभिहित किया है। किंतु इन दोनों शब्दों के अर्थ के संबंध में सभी सूफ़ी एकमत नहीं जान पड़ते। (१) कालावाधी एवं हुज्विरी जैसे सनातनपंथ-प्रेमी सूफ़ियों का कहना है कि 'फ़ना' शब्द का अर्थ जीव की अहंता का ध्वंस होना तथा 'वक़ा' शब्द का अर्थ उसका ईश्वरीय स्वरूप में संस्थिति उपलब्ध कर लेना नहीं है, अपितु पहले से तात्पर्य केवल इतना ही है कि जीव की जगत् के प्रति वनी हुई आसक्ति का लोप हो जाय और वह ईश्वर के प्रति पूर्ण अनुराग तथा उसकी आधीनता में अवस्थित हो जाय ईश्वर एवं जीव दोनों पूर्णतः पृथक् पृथक् और नितांत भिन्न है जिस कारण मानव की सत्ता का ईश्वरीय सत्ता में विलीन होना किसी प्रकार भी संभव

नहीं है। (२) परन्तु जो सूफ़ी सर्वात्मवाद में विश्वास रखते हैं वे इस प्रश्न को नितांत भिन्न रूप से देखते हैं। जिली के अनुसार ईश्वर एवं जगत् का संबंध क्रमशः जल एवं बर्फ की भांति केवल एक ही वस्तु के दो रूप होने के समान है। दोनों मूलतः अभिन्न हैं। इस कारण 'फ़ना' का अर्थ मानव का ईश्वर में वस्तुतः विलीन होना ही समझा जा सकता है और उसी प्रकार वक़ा' से भी अभिप्राय उसके उसमें अवस्थान का ही हो सकता है।

वही

'गुलशने-राज़' के रचयिता सबिस्तारी का मत भी इस विषय में प्रायः वही जान पड़ता है जो जिली का उपर्युक्त मत है। (३) किंतु इनके जगत् संबंधी दृष्टि कोण के कारण दोनों में कुछ अंतर भी आ जाता है। सबिस्तारी के अनुसार ईश्वर एवं जगत् दोनों वस्तुतः अभिन्न नहीं हैं, प्रत्युत ईश्वर ही एक मात्र सत्ता है और जगत् सम्पूर्ण मिथ्या वा मरीचिका मात्र है। अतएव, 'फ़ना' शब्द के अर्थ का मानवोचित गुणों का विलय होना और 'वक़ा' के अर्थ का ईश्वर के साथ स्वरूप वा गुणावली के अंतर्गत स्थिति पा लेना ठीक एक ही दृष्टि कोण के अनुसार नहीं कहा जा सकता। पहले के अनुसार जहां एक मृण्मय घट नष्ट हो जाने पर पुनः मृत्तिका का रूप ग्रहण कर लेता है, वहां दूसरे के अनुसार जल के ऊपर पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिंब जल के न रहने पर नष्ट हो कर सूर्य में मिल जाता है। (४) रूमी का मत इस विषय में, इन तीनों मतों से भिन्न है क्योंकि उनके अनुसार ईश्वर एवं जीव स्वरूपतः भिन्न किंतु गुणतः अभिन्न हैं इस कारण 'फ़ना' का अर्थ मानवीय गुणावली का नाश तथा 'वक़ा' का अर्थ ईश्वरीय गुणों का लाभ मानना चाहिये। इस प्रकार वेदांत के साथ इन मतों की तुलना करने पर जान पड़ेगा कि कालाबाधी का उपर्युक्त प्रथम मत मध्वाचार्य के तद्विषयक मत से मिलता जुलता है जिली का उपर्युक्त मत वल्लभाचार्य के

मत के समान जान पड़ता है, सविस्तरी का उपर्युक्त तीसरा मत शांकराद्वैतवाद से बहुत भिन्न प्रतीत नहीं होता और उसी प्रकार रूमी का उपर्युक्त चौथा मत भी रामानुज एवं निम्बार्क के मतों के साथ कुछ अंश में मेल खाता दीख पड़ता है।

(ख) साधना

साधना का मार्ग

इमाम ग़ज़ाली ने एक स्थलपर लिखा है "अल्लाह सत्तर हज़ार पर्दों के भीतर है जिनमें से कुछ प्रकाशमय और कुछ अंधकारमय हैं और यदि वह उन आवरणों को हटा लेवे तो जिस किसी की दृष्टि उस पर पड़ेगी वह उसके प्रखर प्रकाश द्वारा दग्ध हो जायगा।" इन पर्दों में से आधे प्रकाश के और आधे अंधकार के बतलाये गए हैं और कहा गया है कि साधक को परमेश्वर से मिलने के लिए जाते समय, मार्ग में सात स्थानों से होकर जाना पड़ता है जिनमें से प्रत्येक दस हजार पर्दों से आवृत्त है। परमेश्वर के समक्ष पहुँचते पहुचते साधक अपने सारे ऐन्द्रिय एवं भौतिक गुणों से रहित हो जाता है और वही उसके जीवन का वास्तविक एवं अन्तिम लक्ष्य है। जन्मग्रहण करने के अनंतर मानव प्रकाशमय पर्दों की ओर से क्रमशः अंधकारमय पर्दों की ओर जाता है और उसका एक एक ईश्वरीय गुण कम होता जाता है, किंतु वही जब एक सालिक (साधक) के रूप में उधर से प्रत्यावर्तन करता है तो उसके विपरीत आलोक की ओर बढ़ता है। उस दशा में उसे सप्त सोपानों से होकर अग्रसर होना पड़ता है जिनके क्रमादि के विषय में सूफ़ियों में मत भेद दीख पड़ता है। कुछ प्रसिद्ध सूफ़ियों के अनुसार ये सप्त सोपान केवल प्राथमिक दशा को ही सूचित करते हैं। इन्हें अतिक्रांत कर साधक को फिर चार प्रकार के अन्य सोपानों को भी लांघना पड़ता है जो इनसे अधिक उच्चस्तर पर विद्यमान हैं।

(१) साधना के सोपान

सप्तसोपान

प्रायः सभी प्रकार के सूफ़ियों ने सप्त सोपानों के अंतर्गत (क) 'अनुताप' को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। अनुताप की ज्वाला में दग्ध मानव ही वस्तुतः जगत् के प्रति विराग एवं ईश्वर के लिए अनुराग प्रदर्शित कर सकता है। यह अनुताप भी भरसक भयजन्य न होकर प्रेमज होना चाहिए और तभी उसका परिणाम अधिक सुंदर होता है। (ख) अनुताप का परिणाम प्रायः 'आत्म-संयम' हुआ करता है जिसमें नफ़्स (जड़आत्मा) पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेने की चेष्टा की जाती है। उपवास, तितिक्षा, मानसिक क्लेशवरणादि इसके अंग समझे जा सकते हैं क्योंकि उनके द्वारा ही अपने ऊपर अधिकार का अभ्यास बढ़ा करता है। (ग) आत्म-संयम के अनंतर 'वैराग्य' का आ जाना अवश्यंभावी है और इसमें वासना का परित्याग एवं पार्थिव सुख के प्रति विराग आते हैं। इस वैराग्य का फल अधिकतर (घ) 'दारिद्रय' में परिणत हो जाता है जिसके अंतर्गत सर्वहारा की लोकनिंदा तथा अपमान भी सम्मिलित है। (ङ) दारिद्रय की दशा को अकातर एवं शांत भाव के साथ सहन कर लेना 'धैर्य' के गुण का द्योतक है और यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सोपान को सूचित करता है। यह धैर्य ही फिर (च) ईश्वर-विश्वास में परिणत हो जाता है जिसका अंतिम फल (छ) 'संतोष' हुआ करता है। इस सप्तम सोपान तक आते-आते सालिक़ वा यात्री साधक बहुत शांत भाव को प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार उसमें ऐसी योग्यता आजाती है जिसके आधार पर वह अतींद्रिय आध्यात्मिक ज्ञान का भी अधिकारी हो जाता है।

चतुर्विध सोपान

सप्त सोपान अतिक्रांत कर लेने पर साधक आगे के चतुर्विध सोपानों

का भी अधिकारी बन जाता है जो, उपर्युक्त सप्तसोपानों की भाँति कोटि विशेष को सूचित करने के अतिरिक्त उच्च मानसिक स्तर की ओर भी संकेत करते हैं। इन चारों में से सर्वप्रथम नाम (क) 'मारिफ़त' का आता है जो इन्द्रियज अथवा विचार बुद्धिप्रसूत ज्ञान अर्थात् 'इल्म' न होकर हृदय-प्रसूत हुआ करता है और जिसमें गहरी अनुभूति का अंश बहुत अधिक रहा करता है । जिस प्रकार सूर्य के प्रतिबिंब को स्वच्छ दर्पण पूर्ण रूप से ग्रहण कर उसे अपने में धारण कर लेता है उसी प्रकार मानव-हृदय भी परमेश्वर की प्रत्यक्ष उपलब्धि कर लेता है । (ख) इस मारिफ़त के भावावेगमय रूप का नाम ही 'प्रेम' है जो सूफ़ीसाहित्य का सबसे प्रिय विषय है और जिसकी दशा तक पहुँच कर साधक अपने आप को विस्मृत करना आरंभ कर देता है । इस प्रेम वा 'इश्क' के अनन्तर स्वभावतः वह स्थिति भी आ जाती है जिसे (ग) 'वज्द' (उन्मादना) वा समाधि कहा करते हैं, और जो साधक के साधना मार्ग का उच्चतम सोपान समझी जा सकती है । इसके अनन्तर ही वह अवसर उपस्थित हो जाता है जिसे (घ) 'वस्ल' (ईश्वर-मिलन) कहते हैं और जो उसकी अपरोक्षानुभूति की दशा अथवा उसकी अभेदोपलब्धि की स्थिति को भी सूचित करता है ।

मुक़ामात और हाल

उपर्युक्त सोपानों का नाम सूफ़ियों ने 'मुक़ामात' रखा है और कहा है कि उन तक पहुँचना साधक के प्रयत्नों पर निर्भर है । किन्तु साधकों की कुछ अवस्थाएं भी हुआ करती हैं। जिन्हें 'हाल' की संज्ञा दी जाती है और जो भगवत्कृपा पर निर्भर रहा करती है और जो वस्तुतः उसके भावविशेष की ही द्योतक हैं। मुक़ामात के द्वारा यह सूचित होता है कि अमुक साधक अपने साधनामार्ग की अमुक कोटि तक पहुँचा हुआ है और वे उसकी तद्विष-

यक योग्यता को निर्दिष्ट करते हैं। किन्तु 'हाल' के द्वारा यह प्रकट हो जाता है कि वह अपनी ओर से मृतकवत् वनकर भगवत्प्रसाद का भाजन हो चुका है। पहले के लिए वह स्वयं प्रयत्न करता है, किन्तु दूसरे के लिए स्वयं ईश्वर ही प्रयत्नशील हो जाता है। साधक की ईश्वरोपदिष्ट यात्रा को सूफ़ियों ने 'सफ़रुल अब्द' अर्थात् प्राणियों की यात्रा कहा है जहाँ ईश्वर के जगत् की ओर आने को 'सफ़रुल हक' वतलाया है। साधक की यात्रा की इस प्रकार की प्रथम दशा 'नासूत' की रहा करती है जिसमें वह 'शरीअत' वा धर्मशास्त्रों का अनुसरण करता है। उसकी दूसरी दशा इसी प्रकार 'मलकूत' की आ जाती है जिसमें वह देवलोक निवासी सा वनकर तरीक़त वा उपासना में प्रवृत्त हो जाता है। उसकी तीसरी दशा 'जवरूत' की आती है जिसमें वह 'ज्ञानकांड' को स्वीकार करता है और वह सालिक से 'आरिफ़' वन जाता है तथा अंत में, वह उस 'लाहूत' की दशा तक पहुँच जाता है जहां पर वह ज्ञान-निष्ठ हो जाता है और उसे 'हक़ीक़त' वा सत्य की उपलब्धि हो जाती है। इन दशाओं को कुछ लोगों ने क्रमशः नरलोक, देवलोक, ऐश्वर्यलोक एवं माधुर्य लोक के रूपों में भी स्वीकार किया है इनके आगे भी एक 'हाहूत' नामक अवस्था की ओर संकेत किया है जिसे इसी के अनुसार हम 'सत्यलोक' की संज्ञा दे सकते हैं।

(२) क्रिया-पद्धति

नमाज़ व ज़िक्र आदि

सूफ़ियों की साधना में प्रधानतः छः प्रकार की क्रियापद्धति देखी जाती है जिनमें से तीन साधारण एवं शेष तीन विशेष रूप की हैं। प्रथम अर्थात साधारण तीन क्रियाओं में पहला नाम 'नमाज़' का आता है जिसे 'सलात' भी कहा करते हैं और जो वहुधा प्रत्येक मुसलमान द्वारा नियमित रूप से पांच वार की जाती हुई देखी जाती है। सूफ़ियों की ऐसी दूसरी क्रिया का

नाम 'तिलावत' अर्थात् 'क़ुरान शरीफ़' का नियमित रूप से पारायण करने का अभ्यास है। इनकी तीसरी साधारण क्रिया, इसी प्रकार 'अवराद' कहलाती है जो कतिपय चुने हुए भजनों का दैनिक पाठ समझी जा सकती है। सूफ़ियों की विशेष क्रियापद्धतियों में सबसे पहला नाम 'मुजाहद' अर्थात् आत्म निग्रह का आता है और वह नफ़्स अर्थात् जड़ आत्मा के साथ युद्ध करने में प्रकट होता है। इसकी दूसरी क्रिया 'ज़िक्र' अथवा स्मरण की होती है जो अपने प्राणों के विशेष रूप से नियमन द्वारा संचालित हुआ करती है। यह या तो 'ज़िक्र जली' अर्थात् विहित वाक्य के उच्च स्वर से उच्चारण करने की होती है अर्थात् 'ज़िक्र ख़फ़ी' अर्थात् उसके अत्यंत मन्द स्वर में ज़प करने के रूप में हुआ करती है और इन दोनों की विधियाँ पृथक् पृथक् निश्चित कर दी गई हैं। सूफ़ियों की तीसरी विशेष क्रिया का नाम 'मराक़ब:' अर्थात् चिंतन अथवा ध्यान है जो जपी जाती हुई पंक्तियों का किया जाता है।

(३) उपासना

गुरु एवं औलिया

अपनी साधना का रहस्य जानने एवं तदनुसार अभ्यास करने के लिए साधक को किसी पीर की शरण लेनी पड़ती है। वह अपने पीर (गुरु) की आज्ञा के पालन की शपथ ग्रहण करता है और अपने को उसका मुरीद स्वीकार करता है। मुरीद को अपना पीर वा मुर्शिद का अनुकरण अन्ध-विश्वास के साथ करना पड़ता है। वह अपने पीर के स्वरूप को निरन्तर अपने ध्यान में रखा करता है और उसके प्रभाव का अपने ऊपर इस प्रकार अनुभव करता है जैसे उसने अपने को उसमें लीन कर दिया हो। सूफ़ियों के अनुसार मुरीद पहले अपने शेख़ के प्रति आत्मसमर्पण करता है। फिर शेख़ उसे पीर के सिपुर्द कर देता है और पीर के द्वारा वह क्रमशः रसूल अर्थात्

हज़रत मुहम्मद के प्रभाव से आगे बढ़ता हुआ स्वयं परमेश्वर के समक्ष तक पहुँच जाता है। पीरों के अतिरिक्त साधक प्रसिद्ध औलिया (वली वा फ़क़ीर लोगों) की भी उपासना करता है और उनके मज़ारों (समाधियों) की ज़ियारत (तीर्थयात्रा) करता तथा उन पर पुष्पादि चढ़ा कर उनसे वरदान पाने की अभिलाषा प्रकट करता है। सूफ़ियों की यह एक विशेषता है कि वे ख्वाजा ख़िज़्र नामक एक प्राचीन पौराणिक फ़क़ीर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं और उससे पथ-प्रदर्शन की याचना करते हैं। प्रसिद्ध है कि इस ख़िज़्र ने एवं इलियास नामक एक अन्य फ़क़ीर ने भी अल्लाह से अपने लिए अमरत्व का वरदान प्राप्त कर लिया है।

(४) भारत में सूफ़ीमत

इस्लाम और भारत का प्रारम्भिक संबंध

इसमें संदेह नहीं कि अरब एवं भारत का संबंध बहुत प्राचीन काल से चला आता है और इस्लामधर्म के प्रवर्त्तन एवं प्रचार के कुछ पहले से भी दोनों देशों में व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध वर्त्तमान था। विक्रम की सातवीं शताब्दी में इस्लामधर्म का प्रादुर्भाव हुआ और उसके अंतिम चरण से इसका प्रचार बड़े वेग से होने लगा। तदनुसार व्यापारियों के साथ साथ अरब तथा उसके पड़ोस के लोग धर्मोपदेश के लिए भी भारत आने लगे और मालाबार के समुद्रतट एवं मैलापुर (मद्रास) तथा पेशावर की ओर उनके धर्मोपदेशों का कुछ न कुछ आरंभ होने लगा और सं० ७६९ के अन्तर्गत सिंधप्रदेश पर मुहम्मद कासिम का आक्रमण भी हो गया। उस आक्रमण के समय उम्मया वंश के खलीफा इस्लाम धर्म के प्रचार में लगे हुए थे और सूफ़ीमत का अभी प्रथम युग चल रहा था। उसके द्वितीय युग के समय तक बाबा रतन व बाबा ख़ाकी जैसे धर्मांतरित पीरों का समय व्यतीत हो गया

और उसके तीसरे युग में ग़ाज़ी मियाँ जैसे धर्म युद्ध करने वाले मुसलमानों की चर्चा इस देश के कई प्रांतों में आरंभ हो गई। ग़ाज़ी मियां हिन्दुओं के विरुद्ध धर्म के लिए लड़ते-लड़ते बहराइच के निकट सं० १०९० में मार डाले गये और उनकी मज़ार पर उस घटना के उपलक्ष्य में आज भी उर्स मनाया जाता है तथा उसके नाम पर गा-गा कर प्रचार करने वाले डफाली सर्वत्र घूमा करते हैं।

अल् हुज्विरी

फिर भी भारत में सूफ़ी मत के प्रचार का आरंभ वास्तव में, उस समय से होता है जब विक्रमकी १२ वीं शताब्दी के प्रथम चरण में यहाँ के प्रसिद्ध सूफ़ी अल् हुज्विरी का आगमन हुआ। अल् हुज्विरी अफ़ग़ानिस्तान देश के गज़ना नगर के निवासी थे और इस्लामधर्म के एक बहुत बड़े विद्वान् तथा धर्माचार्य थे। सूफ़ी मत के दृष्टिकोण से वे प्रसिद्ध जुनैद के सिद्धांतों को मानने वाले थे और लगभग ६० वर्षों तक वे भ्रमण एवं धर्म प्रचार में लगे रहे। उन्होंने अविवाहित जीवन व्यतीत किया था और उनके मर जाने पर भी उनका नाम एक उच्च कोटि के वली की भाँति सदा आदर व सम्मान के साथ लिया जाता रहा। उनकी मृत्यु सं० ११२८ के लगभग लाहोर नगर में हुई जहां पर उनकी समाधि आज भी वर्त्तमान है। वे अपनी लोकप्रियता के कारण 'हज़रत दातागंज' के नाम से भी प्रसिद्ध थे और उनकी रचना 'कुश्फ़ुल महजूब' एक प्रामाणिक सूफ़ी ग्रन्थ मानी गई। इस पुस्तक में उन्होंने सूफ़ी-मत की अनेक बातों का स्पष्टीकरण करने के अतिरिक्त अपने समय तक प्रचलित विविध सूफ़ी-संप्रदायों का भी उल्लेख किया है और उनमें से सर्वप्रथम १२ का वर्गीकरण कर उनकी विशेषताओं का न्यूनाधिक परिचय भी दिया है। परन्तु जिन मुख्य मुख्य चार ऐसे संप्रदायों का विशेष प्रचार भारत में हुआ उनका स्पष्ट विवरण उनके उक्त ग्रन्थ में नहीं पाया जाता।

सांप्रदायिक संगठन

प्रारंभिक समय के मुस्लिम धार्मिक व्यक्ति बहुधा अल्लाह की दंड-व्यवस्था से सदा भयभीत रहा करते थे। वे इस अनित्य एवं दोषपूर्ण संसार के प्रपंचों से बचे रहना कल्याणकर समझा करते थे और इसी कारण सदा भ्रमण करते रहते थे। ऐसे प्रसिद्ध धार्मिक 'व्यक्तियों' के साथ कभी कभी युवक मुरीद भी होते थे जिनसे प्रायः उनकी एक मंडली बन जाती थी। ऐसी मंडलियां कभी कभी कुछ दिनों के लिए किसी स्थान विशेष पर ठहर भी जाया करती थीं और उनका मठ अथवा आश्रम बन जाता था। इन भ्रमणशील मंडलियों को कालान्तर में 'अत् तरीकः' अर्थात पंथ कहा जाने लगा और वे ही पीछे संप्रदाय कहला कर भी प्रसिद्ध हुई। इन संप्रदायों का सर्वप्रधान व्यक्ति स्वभावतः उनका मुर्शीद अर्थात् धार्मिक पथ-प्रदर्शक ही हुआ करता था। सर्वप्रथम अगुआ का देहांत हो जाने पर उसका स्थान उसका एक योग्यतम शिष्य या मुरीद ले लेता था, किंतु नाम प्रायः उसीका चलता था। फिर भी सूफ़ियों के अनेक संप्रदायों ने अपने अपने पंथों का मूलस्रोत स्वयं हज़रत मुहम्मद अथवा उनके प्राचीन खलीफ़ाओं तक सिद्ध करने की चेष्टा की है और सूफ़ी मत को ही इस प्रकार मूल इस्लामधर्म का वास्तविक रूप ठहराया है। इन खलीफ़ाओं में भी हज़रत अली कदाचित् सबसे अधिक अपनाये गये हैं और सूफ़ियों की दृष्टिसे महत्त्व के अनुसार इनके अनंतर अबूबकर का नाम आता है। सूफ़ियों के कमसे कम तीन संप्रदायों (अर्थात् बिस्तामिया, वख़्तशिया और नक़्शबंदिया) ने इन्हें अपना आदिगुरु स्वीकार किया है।

(क) चिश्तिया

ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती

भारत में आकर प्रचार करने वाले सूफ़ीसंप्रदायों में सब से प्रसिद्ध

चिश्तिया कहलाता है। ख्वाजा अबू इसहाक़ शामी चिश्ती, हज़रत अली से नवीं पीढ़ी में, माने जाते हैं और वे ही इसके सर्वप्रथम प्रचारक समझे जाते हैं। वे एशिया माइनर से चलकर खुरासान के चिश्त नगर में निवास करते थे जिस कारण उन्हें चिश्ती कहा जाता था। इनके उत्तराधिकारी अबू अहमद अवदाल की मृत्यु सं० १०२३ में हुई थी और उन्हीं की सातवीं पीढ़ी में प्रसिद्ध ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (सं० ११९९-१२९३) हुए थे, जिन्होंने इस संप्रदाय द्वारा सूफ़ीमत का प्रचार, सर्वप्रथम, भारतवर्ष में किया था। इनका जन्म सीस्तान के संजर नामक नगर में हुआ था और तातारों के आक्रमण से प्रभावित होकर, इन्होंने, अंत में, एक भ्रमणशील फ़क़ीर का जीवन स्वीकार कर लिया था। इन्होंने कई प्रसिद्ध सूफ़ी पीरों के व्यक्तिगत संपर्क में रह कर अपने आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि की। ये कई देशों से होकर घूमते-घामते लाहौर में हज़रत दातागंज की समाधि के निकट ठहरे और फिर सं० १२२२ में अजमेर आकर रहने लगे। यही समय था जब मुहम्मद बिन ग़ोरी के आक्रमण हो रहे थे और अपनी अंतिम सफलता के उपलक्ष में उसने इनके लिए अजमेर के एक मंदिर को तोड़कर एक मसजिद बनवा दिया जो 'ढाई दिन का झोपड़ा' के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। इनकी मृत्यु अजमेर में रह कर हुई थी जहां पर इनका दरगाह बना हुआ है और जो 'चिश्तियों का मक्का' के नाम से प्रसिद्ध है।

'काकी' और 'शकरगंज'

ख्वाजा मुईनुद्दीन के शिष्यों में सब से प्रमुख ख्वाजा क़ुतुबुद्दीन 'काकी' 'काकी' (सं० १२४३-१२९४) हुए जिनका जन्म फरग़ाना में हुआ था और वे बग़दाद होते हुए मुल्तान में आकर बहाउद्दीन ज़कारिया के यहां ठहरे थे। ज़कारिया एवं तब्रीज़ी उन दिनों अपने सुह-

वर्दी संप्रदाय के प्रचार में उद्योगशील थे और उन्होंने दिल्ली के बादशाह अल्तमश पर भी प्रभाव डालना चाहा था। किन्तु क़ुतुबुद्दीन 'काकी' ने उसे चिश्तिया संप्रदाय की ओर आकृष्ट कर लिया और वह इसे ही सहायता देने लगा। 'काकी' ने अपने संप्रदाय के उत्सवों में 'समा' अर्थात् संगीत मंडलियों को भी बहुत महत्त्व दिया था। 'काकी' के प्रमुख शिष्य फ़रीदुद्दीन 'शकरगंज' (सं० १२३०-१३२२) हुए जिनके पूर्वपुरुष चंगेज खां के आक्रमण के समय भगकर काबुल से मुल्तान जिले में आये थे और जिसके कठवाल नामक एक नगर में इनका जन्म हुआ था। ये मुल्तान में ही ज़कारिया एवं क़ुतबुद्दीन द्वारा बहुत प्रभावित हुए थे और अंत में क़ुतुबुद्दीन के मुरीद हो गए थे। ये वहां से फिर दिल्ली होते हुए अयोध्या गये जहां से लौट कर फिर अपने जन्म स्थान पर ही चले आए और अंत में वहीं रहते रहे। इन्होंने पंजाब प्रांत के पाकपत्तन नामक स्थान में बड़ी तपस्या की थी जिसके उपलक्ष में वहां इनकी समाधि के निकट प्रति वर्ष उर्स मनाया जाता है। इनके गुरु 'काकी' गर्म रोटियों के कारण अपनी पदवी पाये थे और इन्हें 'शकरगंज' का नाम मिठाइयों की ढेर के कारण मिला था। ये बाबा फ़रीद भी कहे जाते थे और इनके नाम पर चिश्तिया लोगों का एक उप-संप्रदाय 'फ़रीदिया' कहलाकर प्रसिद्ध हुआ।

'औलिया' और 'साबिर'

'शकरगंज' के अनन्तर उनके दो शिष्यों अर्थात् निज़ामुद्दीन औलिया (सं० १२९५-१३८१) एवं अलाउद्दीन साबिर (मृ० सं० १३४८) के नामों पर चिश्तिया लोगों के दो अन्य उपसंप्रदाय क्रमशः 'निज़ामिया' व 'साबिरिया' चल निकले। निज़ामुद्दीन का जन्म बदायूं (उ० प्र०) में हुआ था और उन्होंने अयोध्या जाकर बाबा फ़रीद का शिष्यत्व ग्रहण किया था। इन्होंने दिल्ली दर्बार में कभी न जाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली

थी और, गियासुद्दीन तुग़लक़ के बंगाल-विजय (सं० १३८१) से लौटते समय, जब इन्हें दिल्ली छोड़ देने की आज्ञा मिली तो इन्होंने "हनोज़ देहली दूरअस्त" अर्थात् 'दिल्ली अभी दूर है' कहला भेजा और कहा जाता है कि इसी के फलस्वरूप सुल्तान गियासुद्दीन, दिल्ली में प्रवेश करने के पहले ही, अपने भतीजे मुहम्मद बिन तुग़लक के षड्यंत्र द्वारा मार डाला गया तथा फारसी का यह वाक्य तब से सदा के लिए एक लोकोक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो गया। 'निज़ामिया' उपसंप्रदाय में भी फिर आगे चलकर 'हिसामिया' एवं 'हमज़ाशाही' नाम की दो शाखाएं प्रचलित हुई जिनमें से द्वितीय के एक प्रचारक सैयद 'गेसूदराज़' (मृ० सं० १४७९) की समाधि दक्षिण भारत के गुलबर्गा नामक स्थान में बनी हुई है। अहमद साबिर का जन्म हेरात नगर में सं० १२५४ के अंतर्गत हुआ था और ये अपनी 'सब्र' (संतोष) की विशेषता से 'साबिर' कहलाये। निज़ामुद्दीन में जहां ईश्वर-प्रदत्त 'जमाली' अर्थात् ऐश्वर्य-सूचक गुण थे और वे हँसमुख तथा लोक-प्रिय थे वहां साबिर में उसके 'जलाली' अर्थात् भीषण व भयप्रद गुण वर्तमान थे और वे अधिकतर गंभीर तथा उदास रहा करते थे।

(ख) सुहर्वर्दिया

ज़कारिया सदरुद्दीन और माशूक़

सुहर्वर्दिया संप्रदाय का भारत में इतिहास शिहाबुद्दीन सुहर्वर्दी के बग़दाद से आये हुए शिष्यों से आरंभ होता है। वे क़ुतबुद्दीन 'काकी' के समसामयिक थे और उनसे बहुत कुछ प्रभावित भी हुए थे। किन्तु भारत में सुहर्वर्दी संप्रदाय के लिए सब से अधिक कार्य करने वालों में बहाउद्दीन 'ज़कारिया' थे जिनका जन्म मुल्तान में सं० १२३९ में हुआ था। वे तीर्थ-यात्रा के लिए मक्का गये थे जहां से लौटते समय बग़दाद में शिहाबुद्दीन

के मुरीद बन गए थे। इनके बहुत से चमत्कार सुने जाते हैं। इनके सं० १३२४ में मर जाने पर इनके ज्येष्ठ पुत्र सदरुद्दीन इनकी मुल्तान की गद्दी पर बैठे और वे दारिद्र्य का जीवन व्यतीत करते रहे। सदरुद्दीन के सं० १३४२ में मर चुकने पर उनके मुरीद शेख़ अहमद माशूक़ उनके उत्तराधिकारी बने। ये अपने युवाकाल में एक बड़े शराबी व्यापारी थे और अपने पूर्व निवासस्थान कंदहार से मुल्तान आये थे। ये कर्मकांड से बहुत दूर भागते थे। सुहर्वर्दी संप्रदाय के अंतर्गत भी कई उपसंप्रदाय हुए जिनकी शाखाएं भी चलती रहीं। इनकी विशेषता इस बात में थी कि उनमें से कुछ ने अपनी नियमावली ठेठ इस्लामधर्म की स्वीकृत बातों के प्रतिकूल चल कर ही बनाने की चेष्टा की। वे इसी कारण, मलामती (निंदनीय) कहलाये और उनका वर्गीकरण भी 'बाशरा' (वैध) एवं 'बेशरा' (अवैध) के संकेतों द्वारा किया गया।

बाशरा सुहर्वर्दी शाखाएं

बाशरा सुहर्वर्दियों के अंतर्गत, सर्वप्रथम, 'जलाली' शाखा आती है जिसे सैयद जलालुद्दीन 'शाह मीर' 'सुर्ख़पोष' (सं० १२४९-१३४८) बुखारा-निवासी ने चलाया जो बहाउद्दीन ज़कारिया के शिष्य थे। उनके उत्तराधिकारी उनके पौत्र अहमद कबीर (मृ० सं० १४४१) थे जो साधारणतः 'मख़दूमे जहानियां' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन्होंने ३६ बार मक्का की तीर्थ यात्रा की थी। 'जलाली' शाखा वाले अपने सिर पर काले धागे बांधते हैं, बाहों पर ताबीज बांधते हैं और एक शृंगी लिये फिरते हैं जिसे आवेश के समय बजाते हैं। मख़दूमे जहानियां ने अपनी एक 'मख़दूमी' शाखा भी प्रचलित की थी और ये 'जहांगश्त बुख़ारी' भी कहलाते थे। सुर्ख़पोश के एक अन्य वंशज मीरान मुहम्मद शाह ने इसी प्रकार मीरांशाही शाखा चलाई थी और वे अकबर द्वारा सम्मानित किये गए थे।

उनका देहान्त सं० १६६१ में हुआ था। ज़कारिया की चौदहवीं पीढ़ी के हाफ़िज मुहम्मद इस्माइल (मृ० सं० १७४०) ने इस्माइलशाही शाखा' चलाई जिसके अनुयायी विशेषकर लाहौर की ओर पाये जाते हैं। इसी प्रकार ज़कारिया की ही आठवीं पीढ़ी के दौलतशाह (मृ० सं० १७३३) ने एक 'दौलाशाही' शाखा चलाई जिसका मुख्य पवित्र स्थान गुजरात (पंजाब) का नगर समझा जाता है। वाशरा सुहर्वर्दियों की इन पांचों शाखाओं ने अपने अपने पंथों को न्यूनाधिक वैध रूप से ही चलाने की चेष्टा की थी।

वेशरा सुहर्वर्दी शाखाएं

बेशरा सुहर्वर्दी शाखाओं में केवल दो ही अधिक प्रसिद्ध हैं और उन्हें 'लालशाह वाज़िया' तथा 'रसूलशाही' कहा करते हैं। लालशाह वाज़यिा शाख़ा को वहाउद्दीन ज़कारिया के एक प्रमुख शिष्य सैयद लाल शाहनाज़ ने स्थापित की थी। ये विचारस्वातंत्र्य के प्रेमी थे और इस्लामधर्म की कई एक वहुत आवश्यक मान्यताओं का भी अनुसरण नहीं करते थे। प्रसिद्ध है कि ये अपने जीवन भर मदिरापान करते रहे और इनके श्रद्धालु-शिष्यों ने इनकी इस अवैधता को सदा क्षम्य ठहराने की चेष्टा की। 'रसूलशाही' शाखा की स्थापना अलवर के किसी रसूलशाह ने की थी जिसे ऐसा करने के लिए उसके पीर नियामतुल्ला से आज्ञा मिली थी। नियामतुल्ला मिस्र देश की यात्रा कर के आये थे जहां पर उन्होंने किसी दाऊद नामक फ़क़ीर के यहां किसी मादक द्रव्य का पान किया था। उसी के अनुसार उपदेश ग्रहण कर रसूलशाह ने भी अपने यहां भंग पीने की प्रथा चलाई। रसूलशाही अपने सिर में एक लाल वा श्वेत रूमाल बांधते हैं, सिर, मूछें और भवें मुड़वा देते हैं और अपने शरीर में भस्म लपेटा करते हैं। शराव का पीना वे कर्त्तव्य सा मानते हैं। इन दो शाखाओं

के अतिरिक्त एक 'सुहगिया' शाखा भी है जिसे सुर्खपोश के एक शिष्य ने अहमदाबाद में प्रचलित किया था। उसका नाम मूसा सुहाग था और वह एक हिजड़े की भांति स्त्रियों का वस्त्र पहना करता था। ईश्वर को वह अपने पति के रूप में माना करता था। उसकी मृत्यु सं० १५०६ में हुई थी और उसके शिष्य अपने को 'सदा सुहाग' कहा करते हैं।

(ग) क़ादिरिया

क़ादिरिया का भारत में प्रचार

भारत में क़ादिरिया संप्रदाय अपने मूलप्रवर्त्तक अब्दुल क़ादिर जिलानी (सं० ११३४-१२२३) की मृत्यु के लगभग ३०० वर्ष पीछे स्थापित हुआ। भारत में इसके सर्वप्रथम प्रचारक सैयद मुहम्मद ग़ौस 'वाला पीर' (मृ० सं० १५७४) में जो जिलानी से दसवीं पीढ़ी में थे। इनका जन्म एलिप्पो में हुआ था और ये भ्रमण करते हुए भारत की ओर आये थे। पहली यात्रा में ये लाहौर से लौट गए, किन्तु दूसरी वार ये उच्छ में आकर रह गए जहां पर जिलानी का नाम पहले से ही प्रसिद्ध था। मुहम्मद ग़ौस की ख्याति क्रमशः इतनी वढ़ गई कि दिल्ली के सुल्तान सिकंदर लोदी उनके मुरीद वन गए और अपनी लड़की का विवाह भी उनसे कर दिया। क़ादिरिया के अंतर्गत, आगे चल कर, कई शाखाएं भी चल निकली जिनमें से जिलानी की १७वीं पीढ़ी के शाह कुमेश की 'कुमेशिया' वंगाल प्रान्त में प्रचलित है। रावलपिंडी (पंजाब) में इसी प्रकार, शाहलतीफ़ वारी के शिष्य वहलूलशाह की 'वहलूलशाही' शाखा पायी जाती है, लाहौर के आसपास 'मुकीमशाही' शाखा प्रसिद्ध है और पश्चिमी भारत के ही कुछ प्रान्तों में हाजी मुहम्मद (मृ० सं० १७५७) की 'नौशाही' शाखा का प्रचार है जिसके अनुयायी, मूल क़ादिरिया

संप्रदाय की परंपरा के विरुद्ध, संगीत को अधिक अपनाने लगे हैं और गाते-गाते अपना सिर बड़े झोंके के साथ हिलाया करते हैं। इस संप्रदाय की एक अन्य शाखा शाहलाल हुसेन (मृ० सं० १६५७) की 'हुसेनशाही' कहलाती है और इसके अनुसार नृत्य तक विरुद्ध नहीं है। परन्तु इन सभी में प्रसिद्ध 'मियां खेल' नाम की शाखा है जिसे मियां मीर (सं० १६०७-१६९२) ने प्रचलित किया था। मियां मीर मूलतः सिवस्तान के निवासी थे और अध्ययन करने के उद्देश्य से लाहौर आये थे, जबकि अकबर का शासन-काल चल रहा था। शाहज़ादा दारा शिकोह इन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा करता था और वह इनके शिष्य मुल्ला शाह का मुरीद बन गया था। उसने मियां मीर की एक जीवनी 'सक़ीनतुल औलिया' नाम से लिखी है जिसमें उसने इन्हें एक महान् त्यागी और तपस्वी के रूप में प्रदर्शित किया है। मियां मीर के प्रमुख शिष्य मियां नत्था थे जिनकी भी समाधि लाहौर में ही बनी हुई है।

(घ) नक्शबंदिया

अहमद फ़ारूख़ी

नक्शबंदिया संप्रदाय को ख़्वाजा बहाउद्दीन 'नक्शबंद' ने चलाया था जिनका देहान्त सं० १४४६ के अंतर्गत ईरान में हुआ था। उनकी सातवीं पीढ़ी में ख़्वाजा बाकी बिल्ला 'बेरंग' (मृ० सं० १६६०) हुए जिन्होंने इसे, सर्वप्रथम भारत में प्रचलित किया। इस पंथ के प्रवर्त्तक की 'नक्श-बंद' पदवी के विषय में कहा जाता है कि वह उन्हें कपड़े पर चित्रों के छापने की जीविका के कारण मिली थी, किन्तु रोज़ साहब ने, किसी मुस्लिम लेखक के अनुसार, यह भी लिखा है कि इस पदवी का कारण बहाउद्दीन का अध्यात्म विद्या-संबंधी गूढ़ से गूढ़ बातों का स्पष्ट मानसिक

चित्रण करना ही था। जो हो, इस संप्रदाय का भारत में प्रचार करने का सब से अधिक श्रेय अहमद फारूखी (सं० १६२०-१६८२) को दिया जाता है जो सरहिंद के निवासी थे। कहा जाता है कि, हज़रत मुहम्मद की ही भाँति, ये ख़तना कराये हुए उत्पन्न हुए थे और उन्हीं की तरह एक प्रतिभाशाली महापुरुष हुए। इनका सभी संप्रदायों पर अधिकार माना जाता था। इन्होंने मूल इस्लामधर्म की सुन्नीशाखा के भी महत्त्व को बढ़ाने की बड़ी चेष्टा की और शियाशाखा वालों की मान्यताओं का खंडन किया। इनके शिया-विरोध के कारण जहांगीर बादशाह के प्रधान-मंत्री आसफ़जाह ने इनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की और ये तीन वर्ष बंदी भी रहे। परन्तु पीछे इन्हें मुक्त कर दिया गया और इनके सम्मान में और भी वृद्धि हो गई। औरंगज़ेब बादशाह इनके पुत्र मासूम का मुरीद था। अहमद फारूखी की सुधार-योजना के अनुसार सूफ़ी लोगों का संगीत-प्रेम, उनका अपने पीरों के प्रति साष्टांग दंडवत, नृत्य एवं अन्य प्रकार के वाह्य प्रदर्शनों का कुछ दिनों तक अंत हो गया और शिया संप्रदाय को भी इनके कारण बहुत बड़ा धक्का लगा। अहमद फारूखी ने सूफ़ियों की 'वुजूदिया' एवं 'शुहूदिया' नामक दो भिन्न भिन्न सर्वात्मवादी विचार-धाराओं में एकवाक्यता लाने का भी प्रयत्न किया, ऐसा करते समय उन्होंने बतलाया कि कोई सूफ़ी अपनी प्रारंभिक स्थिति में परमेश्वर और उसकी सृष्टि में पूरा भेद नहीं कर पाता और वह 'वुजूदिया' ही रहा करता है, किन्तु अधिक आध्यात्मिक विकास हो जाने पर वह उक्त दोनों का अंतर भली भांति समझ लेता है और, अंत में, स्वभावतः 'शुहूदिया' बन जाता है।

'क़यूमियत'

अहमद फारूखी का 'क़यूमियत' संबंधी सिद्धान्त विशेष रूप से उल्लेख-

नीय है। उनके 'क़यूम' समझे जाने वाले महापुरुष की श्रेणी उन लोगों से भी उच्चतर है जो इब्न अरबी के अनुसार 'इंसान कामिल' (पूर्ण-मानव) कहे जाते हैं। 'क़यूम' एक प्रकार का 'पूर्णतममानव' है जिसके अधिकार एवं शासन के अंतर्गत सृष्टि के सारे पदार्थों की स्थिति, जीवन और विकास-संवंधी वातें आ जाती हैं और विना उसकी इच्छा के कुछ भी होना संभव नहीं है। क़यूम इस विश्व में वर्त्तमान सभी प्रकार की वस्तुओं का सार स्वरूप है और परमेश्वर के सिवाय अन्य सभी कुछ उसके ऊपर आश्रित रहा करता है। फारूख़ी के अनुसार भूतल पर क़यूम परमेश्वर का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है और यहां पर वही सव कुछ है। फारुख़ी ने इस पद का अधिकारी केवल अपने तथा क्रमशः अपने तीन उत्तराधिकारियों को ही माना था और वतलाया था कि मेरे शरीर को परमेश्वर ने हज़रत मुहम्मद की रचना के उपरान्त वची हुई सामग्री के द्वारा निर्मित किया था। उनका यह भी कहना था कि स्वयं रसूल ने भी, प्रकट होकर, मुझे उन नव प्रमुख नवियों की कोटि में गिना था जो नूर, इब्राहिम, दाऊद, जेकव, यूसुफ़, जोव, मूसा, ईसा और मुहम्मद के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिन्हें, उनकी अलौकिक शक्ति के कारण, 'उलूले आज़म' (सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक पुरुष) कहा जाता है।

चार क़यूम

अहमद फारूख़ी के अनंतर द्वितीय 'क़यूम' उनके तीसरे पुत्र मुहम्मद मासूम (सं० १६५६-१७२५) कहलाये। मासूम का दावा था कि मैंने अपने पिता के द्वारा उन सभी गूढ़ शब्दों का अर्थ समझ लिया है जो 'क़ुरान शरीफ़' के कतिपय अध्यायों के आरंभ में आते हैं और जिनका वास्तविक अभिप्राय हज़रत मुहम्मद के अतिरिक्त किसी अन्य को विदित नहीं था। औरंगजेव ने इनका मुरीद होना किसी स्वप्न के

आधार पर स्वीकार किया था और इन्हीं के प्रभाव में पड़कर उसने हिंदुओं पर फिर से जिज़िया का कर लगाया था। तीसरे क़यूम ख्वाजा हुज्जतुल्ला (ज० सं० १६८१) मासूम के द्वितीय पुत्र थे और औरंगज़ेब पर इन्होंने भी बड़ा प्रभाव डाला। प्रसिद्ध है कि इन्हीं के कहने से उसने दक्षिण भारत के शिया रियासतों पर आक्रमण किया था। चौथे क़यूम तृतीय क़यूम के पौत्र जुनैद (मृ० सं० १७९७) ने औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर होने वाले उसके पुत्रों के झगड़े में प्रत्यक्ष भाग लिया। शाहज़ादा आज़म के विरुद्ध इन्होंने मुअज़्ज़म का पक्ष लिया जो सफल होकर बहादुरशाह के नाम से राजगद्दी पर बैठा। कुछ लेखकों का कहना है कि इन चार क़यूमों द्वारा प्रचलित किये गए धर्मोन्माद ने मुग़ल साम्राज्य के पतन में बहुत बड़ा भाग लिया। यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि प्रथम क़यूम का समय मुग़ल शासन के स्वर्ण युग अर्थात् अकबर के जीवन-काल में आरंभ हुआ था और चतुर्थ क़यूम की मृत्यु उस समय हुई जब उसका पतन हो रहा था और उसी वर्ष नादिरशाह ने दिल्ली को लूटा भी था।

(ङ) कुछ अन्य संप्रदाय

उवैसी, मदारी और शत्तारी

उपर्युक्त चार प्रमुख संप्रदायों के अतिरिक्त कुछ ऐसे वर्गों के भी सूफ़ी हैं जिनके मूल पुरुषों का स्पष्ट पता नहीं चलता और जिनका प्रारंभिक संबंध स्वयं हज़रत मुहम्मद अथवा किसी प्राचीन पीर के साथ यों ही जोड़ दिया जाता है। (१) एक ऐसा ही संप्रदाय 'उवैसी' नाम से प्रसिद्ध है जिसे किसी उवैसुल क़रनी द्वारा प्रचलित किया गया माना जाता है। इसके अनुयायी अधिकतर व्रत एवं तपस्या के दृढ़ अभ्यासी हुआ करते हैं और वे तुर्किस्तान में भी पाये जाते हैं। (२) 'मदारी' संप्रदाय के प्रवर्त्तक शाह मदार को कुछ लोग यहूदी बतलाते हैं और अन्य लोगों के

अनुसार वे किसी अरबी वंश की सन्तान थे। वे कहीं बाहर से अजमेर आये थे जहां से कानपुर के निकट मकनपुर में जाकर वे सं० १५४२ में वहुत बड़ी आयु पाकर मर गए। मकनपुर में उनके उपलक्ष्य में एक मेला लगा करता है। (३) 'शत्तारी' संप्रदाय के प्रवर्त्तक शेख़ अब्दुल्ला शत्तार प्रसिद्ध शिहाबुद्दीन सुहर्वर्दी के वंशज माने जाते हैं। 'शत्तार' शब्द किसी ऐसी आध्यात्मिक साधना की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा अल्प से अल्प काल में फ़ना और 'वक़ा' की उपलब्धि हो सकती है। अब्दुल्ला भारत में आकर सर्वप्रथम, जौनपुर में रहते थे और फिर मालवा प्रान्त के मांडू नगर में जाकर सं० १४८५ में मरे थे। इस संप्रदाय के एक प्रसिद्ध सूफ़ी शाह मुहम्मद ग़ौस थे जिन्हें बादशाह हुमायूं ने बहुत सम्मानित किया था और जो सं० १६२० में मरे थे।

क़लंदरिया और मलामती

'क़लंदर' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में वहुत कुछ मतभेद जान पड़ता है। कुछ लोग इसे ईश्वर के लिए प्रयुक्त सीरियक भाषा का एक शब्द कहते हैं जहां दूसरों का कहना है कि यह शब्द फ़ारसी के 'कलांतर' (प्रधान पुरुष) अथवा 'क़लंतर' (रूखा आदमी) से निकला है। एक अन्य अनुमान के अनुसार 'क़लन्दर' शब्द तुर्की 'कर्रिद' वा 'कलंदारी' से बना है जो वाजे के लिए प्रयुक्त होते हैं और कुछ लोग इसका सम्बन्ध तुर्की 'क़ाल' शब्द के साथ जोड़ते हैं जो 'विशुद्ध' वा 'पवित्र' का समानार्थक है। जो हो, (४) क़लंदर नाम के फ़क़ीर भ्रमणशील हुआ करते हैं और वे धार्मिक आचार विचार के संबंध में बहुत मीन मेष नहीं किया करते। भारत में यह संप्रदाय, सर्वप्रथम, नजमुद्दीन कलंदर द्वारा प्रचलित किया गया जो नज़ीमुद्दीन औलिया के मुरीद थे। प्रसिद्ध है कि उनके वक्षः स्थल के भीतर से अल्लाह के संक्षिप्त नाम 'हू' की ध्वनि निकला करती थी।

उनका देहांत सं० १५७५ में हुआ था। (५) 'मलामती' संप्रदाय के मूलप्रवर्त्तक जूल नून मिस्री समझे जाते हैं और इसके अनुयायी पूर्णतः स्वतंत्र विचार के हुआ करते हैं। वास्तव में ये किसी भी उपर्युक्त संप्रदाय से अपना संबंध भंग कर के इसमें आ जाते हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएं अनियंत्रित जीवन, मादक वस्तु सेवन, गीत वाद्य जनित उमंग तथा इंद्रजाल आदि के प्रदर्शन कही जा सकती हैं।

सूफ़ीमत का स्वरूप

भारत में प्रचलित सूफ़ीमत अधिकतर ईरानी परंपरा का अनुसरण करता रहा है। विक्रम की ९वीं शताब्दी के सदाचारशील सूफ़ियों से आरम्भ होकर यह १०वीं तथा ११वीं शताब्दी के चिंताशील एवं साहसी पुरुषों के प्रभाव में स्पष्ट रूप ग्रहण करता गया और १२वीं के अंतर्गत इसने अपना एक स्थान विशेष ग्रहण कर लिया। फिर तो सूफ़ी कवियों तथा धर्मोपदेशकों ने इसे उस कोटि तक पहुँचाया जहां से १६वीं शताब्दी तक इसका क्रमशः खिसकना भी आरम्भ हो गया और जिस मूल इस्लामधर्म के स्रोत से यह, सर्वप्रथम प्रवाहित हुआ था वह अधिकाधिक दूर पड़ता हुआ जान पड़ने लगा। इसके अंतर्गत हल्लाज का विश्वात्मवाद, इब्न अरबी का ब्रह्मवाद चिश्तिया वालों का आवेशवाद, नक्शबंदियों का धर्मशास्त्रवाद, इमामग़ज़ाली का नैतिक आचरणवाद, हाफ़िज़ का ऐन्द्रियतावाद , कलंदरों का चमत्कारवाद तथा मलामतियों के अनियंत्रणवाद' ने एक दूसरे को न्यूनाधिक प्रभावित करते हुए ऐसा चित्र खड़ा कर दिया कि उसका कोई एक उपयुक्त नाम देना कठिन हो गया। फिर भी मूल इस्लामधर्म के कतिपय सुधारकों ने इसे किसी न किसी प्रकार अपने में पचा लेने की ही भरपूर चेष्टा की और इधर की दो-तीन शताब्दियों के अंतर्गत यह कई प्रकार से गढ़ा जाकर उनके आदर्श का प्रमुख

प्रतिनिधि स्वरूप बन गया। सूफ़ी मत ने इस्लाम धर्म के पूर्वरूप को प्रेम की भावना तथा सत्पुरुषों के आदर्श नामक दो ऐसे आकर्षक अंगों से सुसज्जित कर दिया कि वह अपनी पुरानी भयप्रभावित मनोवृत्ति को भूल गया और प्राचीन अब्द (दास) के भाव को एक प्रकार से हेय सा समझने लगा।

५—सूफ़ी-साहित्य

सूफ़ी-निबंध

सूफ़ीमत के साहित्य की रचना वस्तुतः उसके द्वितीय युग में आरंभ हुई और तृतीय युग में पूर्णता को प्राप्त हो गई। सूफ़ीसाहित्य की प्रारम्भिक रचनाएं, सर्वप्रथम, अरबी भाषा में लिखी जाती रहीं और कोई सूफ़ी चाहे वह किसी भी देश का होता था पहले पहल अपनी पुस्तक वा निबंध का लिखना 'क़ुरान शरीफ़' की भाषा में ही आरम्भ करता था। द्वितीय युग के लेखकों ने अधिकतर निबंधों की ही रचना की और वे सूफ़ी मत की कतिपय बातों को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से अथवा दूसरे के विचारों से अपने मत को कुछ पृथक दिखलाने के लिए लिखे गए। इसके सब से प्रमुख उदाहरण के रूप में हल्लाज की पुस्तक 'किताबुत्तवासीन' का नाम लिया जा सकता है जो अरबी भाषा के तुकांत गद्य में ११ प्रकरणों में लिखी गई है। इब्न अरबी ने, इसी प्रकार, तृतीय युग के अंतर्गत 'फ़तूहात मक्किया' एवं 'फ़ुसूहुल हिकम' की रचनाकर अपने मत का विशद प्रतिपादन किया, तथा सुहर्वर्दी ने अपनी रचना 'अवारिफ़ुल-म्वारिफ़' द्वारा आगे के सूफ़ियों के लिए एक प्रामाणिक ग्रंथ प्रस्तुत कर दिया। महमूद शबिस्तारी का प्रसिद्ध फ़ारसी ग्रन्थ 'गुलशने राज़' भी वस्तुतः इसी प्रकार की रचनाओं की श्रेणी में आता है। उसीके भिन्न भिन्न पंद्रह प्रकरणों में विविध प्रश्नों को उठा कर उनके उत्तर पूरी व्याख्या

और दृष्टांतों के साथ दिये गए हैं और उनके द्वारा 'रहस्य' खोला गया है।

सूफ़ी जीवन-वृत्त

सूफ़ी-साहित्य का एक दूसरा अंग सूफ़ियों के परिचय वा जीवनवृत्तों से संबंध रखता है। इनमें अरबी अथवा फारसी भाषा के द्वारा प्रसिद्ध प्रसिद्ध सूफ़ियों का प्रशंसात्मक परिचय दे कर उनके चमत्कारों को भी लिखा गया है। इस प्रकार की रचनाओं में स्वभावतः बहुत सी पौराणिक बातों का ही समावेश रहा करता है। फिर भी इनमें दिये गए विविध प्रसंगों द्वारा कई एक ऐतिहासिक प्रश्नों पर भी प्रकाश पड़े बिना नहीं रह पाता और उनमें परिचित कराए गए सूफ़ियों के आचरणादि के संकेतों द्वारा सूफ़ीमत की विचारधारा के विकास का भी रूप निखर आता है। हुज्विरी ने अपनी रचना 'कश्फ़ुल महजूब' के अंतर्गत प्रसिद्ध प्रसिद्ध सूफ़ियों के संक्षिप्त परिचय देकर उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किया है किंतु उसमें इन सूफ़ियों के व्यक्तिगत जीवन की वैसी झलक नहीं मिलती। फ़रीदुद्दीन अत्तार की पुस्तक 'तज़किरातुल औलिया' इसके लिए एक बहुत सुन्दर उदाहरण है जिसमें काव्यमय गद्य के द्वारा उनकी जीवनियों का सारतत्त्व संगृहीत कर दिया है। जामी की प्रसिद्ध रचना 'नफ़हातुल उंस' भी कदाचित् उसी आदर्श को ले कर प्रस्तुत की गई है। सूफ़ियों की जीवनी लिखने की यह परंपरा बहुत पीछे तक उसी रूप में चलती आई और आधुनिक युग के आने पर ही उसे बदलना पड़ा।

सूफ़ी काव्य-रचनाएं

परन्तु सूफ़ी-साहित्य का सब से प्रधान अंग उसके काव्यों द्वारा पुष्ट किया गया जान पड़ता है। अरबी भाषा के अंतर्गत पर्याप्त प्राचीनकाल

से ही काव्य रचना होती आ रही थी और उसमें प्रेम काव्य का भी अभाव न था, किंतु अरब के कवियों की रचनाओं में प्रेम-प्रसंगों का संबंध अधिकतर युद्ध-संबंधी घटनाओं के साथ रहा करता था वह लगभग उसी प्रकार का था जैसा हम भारत के राजस्थानी साहित्य में भी बहुधा देखते हैं। शुद्ध व्यक्तिगत प्रेम अथवा ईश्वरीय प्रेम के प्रतीकात्मक वर्णन की परंपरा ईरान देश की विशेषता बन कर फ़ारसी के द्वारा आगे बढ़ी। फ़ारसी के प्रतिभाशाली कवियों ने न केवल अपनी ग़ज़लों द्वारा गंभीर से गंभीर प्रेमभाव का उद्घाटन किया, अपितु ईश्वरीय प्रेम के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने मसनवी-पद्धति का एक ऐसा उपयुक्त सहारा लिया जिससे उनका उद्देश्य पूर्णत: सिद्ध हो गया और प्रेमतत्त्व के प्रतिपादन वा उसके महत्त्व के वर्णन की उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई। ग़ज़ल का प्रयोग और प्रचार अरब देशमें भी बहुत रहा, किंतु मसनवी छंद को सब से अधिक महत्त्व फारसी कवियों ने ही दिया। प्रेमतत्त्व की भावना को आख्यानों द्वारा हृदयंगम कराने का काम इस छंद से इतना अधिक लिया गया कि इसकी एक पद्धति ही चल पड़ी।

सूफ़ियों की रुबाइयां

ग़ज़ल एवं रुबाई के द्वारा सूफ़ियों ने प्रेम के गूढ़ भाव का व्यक्तीकरण व्यक्तिगत उद्‌गारों के रूप में किया है। इस प्रकार की उनकी रचनाएँ अधिकतर फुटकर ही पाई जाती हैं और उनके संग्रहों को 'दीवान' अथवा 'कुल्लियात' कहने की प्रथा है। इन छंदों द्वारा कवियों ने अपने प्रेमभाव किसी कल्पित व्यक्ति की ओर संकेत करके किया है और वह व्यक्ति प्रायः पुरुष रहा है। फिर भी वह पुरुष किसी प्रेमिका का प्रेमपात्र न रह कर कवि के पुरुष रूप का ही लक्ष्य बनता आया है और यही विशेषता है। प्रेम-पात्र को, ईश्वर का प्रतीक होने के कारण, पुरुष रूप में स्वीकार

करना अधिक स्वाभाविक अवश्य प्रतीत होता है और सूफ़ियों को यह शैली अपने लिए अपनाते समय इस प्रकार का व्याज ढूंढ़ लेना असंगत भी नहीं कहा जा सकता। किंतु अप्रस्तुत की भावना का परित्याग कर विचार करने पर इसमें अनौचित्य का दोष भी आ सकता है। सूफ़ियों का 'इश्क मजीज़ा' (लौकिक प्रेम) के आधार पर 'इश्क हक़ीक़ी' (ईश्वरीय प्रेम) की ओर अग्रसर होना किसी वैसे आध्यात्मिक साधक की दृष्टि से ही संभव है। रुबाई में हम ग़ज़लों की इस विशेषता का होना आवश्यक नहीं समझते और इसके लिए उमर ख़य्याम की प्रसिद्ध 'रुबाइयात' ही उदाहरण हो सकती हैं। उमर ख़य्याम ने अपने प्रेमोद्गार के अतिरिक्त कर्मकांड की आलोचना द्वारा व्यंग्यमय काव्य की भी रचना इन रुबाइयों में की है।

सूफ़ियों की ग़ज़लें

कर्मकांड की आलोचना को सूफ़ियों ने अपनी ग़ज़लों का भी विषय बनाया है, किंतु उतनी दूरी तक नहीं। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी ग़ज़लों के दीवान को शम्स तबरेज़ के नाम समर्पित किया था और वह बहुधा 'कुल्लियात शम्स तबरेज़' के नाम से प्रकाशित पाया जाता है जिस कारण कभी कभी भ्रम उत्पन्न होता है। रूमी ने अपनी इन रचनाओं में सूफ़ी के लिए 'परमेश्वर का मानव' का प्रयोग किया है और उसे ईश्वरीय प्रेम द्वारा मदोन्मत्त रूप में चित्रित किया है। रूमी के इस 'दीवान' की ही भाँति रचे गये सनाई, सादी एवं हाफ़िज़ आदि के भी 'दीवान' मिलते हैं जिनमें वैसी ग़ज़लें संगृहीत की गई हैं। इनमें हाफ़िज़ की रचनाओं का संग्रह सब से अधिक महत्वपूर्ण है और ग़ज़लों के विचार से यह कवि सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। किंतु यह महत्त्व क़दाचित् उसे केवल इसी कारण दिया गया जान पड़ता है कि उसकी रचनाओं का आध्यात्मिक गूढ़ार्थ भी संभव है अन्यथा उसकी पंक्तियाँ नग्न शृंगार के भावों से भरपूर पायी जाती हैं

और शिवली जैसे विद्वान् आलोचकों को भी उनमें कोई ऐसी बात नहीं लक्षित होती जिसके आधार पर उन्हें ईश्वरीय प्रेम की ओर लक्ष्य करने वाला समझा जाय। हाफ़िज़ के विषय में इस प्रकार के सन्देह करने का एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि हाफ़िज़ किसी संप्रदायविशेष के अनुयायी नहीं थे और इस बात की कमी के कारण उन्हें लोग स्वभावतः अधार्मिक व्यक्ति भी कह सकते हैं।

सूफ़ियों की मसनवी

उमर ख़य्याम जिस प्रकार अपनी रुबाइयात के कारण प्रसिद्ध हैं और हाफ़िज़ की ख्याति जिस प्रकार उनकी ग़ज़लों पर आश्रित है उसी प्रकार मौलाना रूम अपनी मसनवियों द्वारा सर्वश्रेष्ठ कवि समझे जाते हैं। रूमी को उनकी इन रुबाइयों के ही कारण कुछ लोगों ने 'आचार्य' की भी पदवी दी है और हाफ़िज़ को 'प्रेमी' तथा ख़य्याम को एक 'मौजी' कवि कह कर उनकी पृथक्-पृथक् विशेषताओं का निदर्शन किया है। मसनवी की रचना इनके पहले क्रमशः सनाई तथा अत्तार ने भी की थी और पहले से दूसरा श्रेष्ठ कहा जाता है, किन्तु रूमी का स्थान, वास्तव में, अत्तार से भी ऊँचा है। जिन बातों का ठीक-ठीक प्रतिपादन तर्क-प्रणाली द्वारा संभव नहीं और जो साधारण उपदेशों द्वारा भी अपना प्रभाव नहीं जमा पाती उन्हें रूमी ने केवल छोटे छोटे आख्यानों के ही आधार पर प्रतीकों के सहारे स्पष्ट कर दिया है और वे पूर्णतः आकर्षक भी हो गई हैं। रूमी स्वयं मौल्वी-पंथ के प्रवर्त्तक थे जिसे उन्होंने अपने पीर शम्स तबरेज़ के आदेश पर चलाया था। उनकी मसनवी को लोग 'क़ुरानी पहलवी' भी कहा करते हैं और उसे संसार की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में स्थान देते हैं। इसकी कथन-शैली इतनी सरल, सरस एवं भावपूर्ण है कि उसके

प्रभाव बहुधा सर्वसाधारण पर भी बिना पड़े नहीं रह पाता और प्रत्येक के हृदय में वह एक स्थान बना लेती है।

प्रारंभिक उर्दू काव्य पर सूफ़ी प्रभाव

भारत के उर्दू साहित्य ने अपने प्रारंभिक काल से ही फ़ारसी साहित्य को अपना आदर्श बनाया जिस कारण उसके कवियों ने जो जो रचनाएँ कीं उन पर फ़ारसी भाषा के अतिरिक्त उसके पिंगल, वर्णन-शैली तथा अलंकारादि तक का प्रभाव पड़ गया। इसके सिवाय उर्दू के बहुत से कवियों का किसी न किसी सूफ़ी-संप्रदाय के साथ भी कुछ न कुछ संबंध रहता आया जिस कारण वे फ़ारसी की उपर्युक्त रचनाओं जैसे ग़ज़ल, रुबाइयात एवं मसनवी आदि का अनुसरण करते समय उनमें सूफ़ीमत की बातों का विशेष रूप से समावेश करते गए और इस प्रकार उनकी अपनी रचनाओं को भी सूफ़ी साहित्य में स्थान मिल सकता है। मुहम्मद कुली कुतुब शाह (रा० का० सं० १६३७-१६६८) गोलकुंडा का सुल्तान था जिसे उर्दू का प्रथम कवि होने का श्रेय दिया जाता है। उसकी रचनाओं का क़ुल्लियात (संग्रह) हैदराबाद में सुरक्षित है जिससे पता चलता है कि उसने भी ग़ज़लें, रुबाइयाँ और मसनवियाँ लिखी थीं। इस कवि ने अन्य कतिपय विषयों के साथ प्रेम को भी अपनाया है और उसके वर्णन में फ़ारसी के सूफ़ी कवियों द्वारा बहुत कुछ प्रभावित हुआ है। उसकी एक विशेषता केवल यही लक्षित होती है कि उसने प्रेम-पात्र को हिन्दी काव्य शैली के अनुसार स्त्री रूप में दर्शाने की चेष्टा की है। गोलकुंडा के अंतिम सुल्तान अबुल हसन के एक दर्बारी कवि 'तबई' ने भी, इसी प्रकार एक मसनवी 'क़िस्सै बहराम व गुलबदन' नाम से सं० १७२७ में लिखी थी और उसमें प्रेम कहानी कही थी तथा बीजापुर के अली आदिलशाह द्वितीय के दर्बारी कवि मुहम्मद नसरत ने 'गुलशने इश्क़' नाम की एक मसनवी सं०

१७१४ में लिख कर उसमें सूरज भान के पुत्र कुँवरमनोहर और मधुमालती की प्रेम कथा दी थी। यह कवि पहले हिंदू और जाति से ब्राह्मण था और मुसलमान हो गया था। इसकी कविताओं का दीवान 'गुलदस्तए इश्क़' भी प्रसिद्ध है।

पीछे के कुछ उर्दू कवि

कहते हैं कि दिल्ली में सर्वप्रथम उर्दू काव्य की परंपरा चलाने वाले शम्स वलीउल्ला अर्थात् 'वली' नामक उर्दू कवि थे, उसके दक्षिण से वहाँ जाने पर, वहाँ के सूफ़ी फ़ारसी कवि शाह गुलशन ने फ़ारसी की चाल पर दीवान लिखने का विशेष आग्रह किया था। 'वली' स्वयं भी सूफ़ी था और उसके उर्दू दीवान में इस मत का प्रभाव बहुत कुछ दीख पड़ता है। वली का देहान्त सं० १८०१ में हुआ था। वली के अनंतर इस प्रकार की परंपरा दिल्ली के उर्दू काव्य एवं लखनऊ के उर्दू काव्य के रचयिताओं की ओर से सदा अपनायी गई। यह समय सूफ़ीमत के प्रचार का था और सूफ़ी प्रचारक इसके लिए प्रायः सर्वत्र प्रयत्न करने में लगे हुए थे। किंतु उर्दू के अधिकांश कवि सूफ़ियों की आध्यात्मिक मनोवृत्ति को पूर्ववत् बनाये रखने में पूर्णतः कृत कार्य न हो सके और उन्होंने अश्लीलता तक को प्रदर्शित करने में संकोच नहीं किया जिसकारण उनकी रचनाओं का नैतिक स्तर बहुत निम्न श्रेणी तक पहुँच गया। वास्तविक सूफ़ी मनोवृत्ति के साथ अधिक रचनाएँ प्रस्तुत करने वालों में ख़्वाजा मीर 'दर्द' (मृ० सं० १८४२) का नाम लिया जाता है जिन्होंने उर्दू से अधिक फ़ारसी को ही अपनाना अपने लिए श्रेयस्कर समझा था। वे एक विद्वान् सूफ़ी थे और एक दरवेश बन कर रहा करते थे। उनकी सूफ़ी विचारधारा में इश्क हक़ीक़ी की गंभीरता पायी जाती है और उनकी रचनाओं में हृदय की सचाई की भी कमी नहीं है। इनके समसामयिक कवियों में मीर हसन, मीर तक़ी आदि

के भी नाम आते हैं जिन्होंने प्रेम के विषय को लेकर बहुत कुछ लिखा। मीर हसन की 'सिहरुल बयान' मसनवी अत्यन्त प्रसिद्ध है जो सं० १८४२ में लिखी गई थी और मीर तक़ी की ग़ज़लें और प्रेम कहानियाँ भी मिलती हैं। सूफ़ी मनोवृत्ति के आधुनिक उर्दू कवियों में सर मुहम्मद इक़बाल (मृ० सं० १९९५) सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं जो अरबी, फ़ारसी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा का भी ज्ञान रखते थे और एम० ए० एवं बार-एट-ला भी थे। इनकी पुस्तक 'असरारे ख़ुदी' फ़ारसी भाषा की सूफ़ी रचना है।

हिन्दी की सूफ़ी रचनाएँ

उर्दू काव्य के लिए फ़ारसी रचनाओं का एक निश्चित आदर्श था और सूफ़ी मत को उसने कदाचित् इस कारण भी अपनाया, परन्तु हिन्दी-काव्य के सामने यह बात नहीं थी, इसलिए अपने ऊपर पड़े हुए सूफ़ी प्रभाव के लिए उसने फ़ारसी जैसी विदेशी भाषा के साहित्य का अनुसरण करना उतना आवश्यक नहीं समझा। हिंदी के अपने छंद थे, अपने अलंकार थे और अपनी परंपरा थी जिसे उसने संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी के रूप में अपनाया था। उसे सूफ़ी मत से उसकी विचार-धारा का केवल सारतत्त्व ले लेना रहा जिसे वह अपने स्वदेशी ढांचों में भलीभाँति ढाल सकती थी। ग़ज़ल के स्थान पर उसके सामने आर्या, गाथा एवं दूहे का आदर्श प्रत्यक्ष था और मसनवी के लिए वह दोहे चौपाई को अपना सकती थी। इसी प्रकार गुल, बुलबुल, चमन, मदिरा आदि के स्थानापन्न बनाने के लिए उसे कमल, पपीहा, वाटिका, मधु आदि सरलता से मिल सकते थे इतना ही नहीं, उसे इसके लिए प्रेम कहानियों के विदेशी कथानक अपनाने की भी उतनी आवश्यकता नहीं थी। लैला मजनूं, यूसुफ़-ज़ुलेख़ा, शीरीं-फ़रहाद आदि के स्थान पर वह उषा-अनिरुद्ध, नल-दमयंती, रतनसेन-पद्मावती आदि के प्रयोग कर सकती थी और उनके आधार पर

इसे प्रेम, विरह, संयोग और वियोग क सुन्दर से सुन्दर भावों का भी चित्रण कर सकती थी। हिन्दी ने इन सब के सिवाय उस प्रेमाख्यान-परंपरा का भी सहारा लिया जो राजस्थान, पंजाब जैसे प्रांतों में पुराने समय से चली आ रही थी। हिंदी-साहित्य के अंतर्गत यद्यपि सूफ़ी मत-विषयक निबंधों का अभाव है और सूफ़ियों के जीवन वृत्तों का फ़ारसी या उर्दू तक की भाँति भी अस्तित्व नहीं है फिर भी इसकी प्रेमगाथा का भंडार पूर्ण कहा जा सकता है और इसके फुटकर प्रेमकाव्य की भी कमी नहीं है।

६—हिन्दी की सूफ़ी-प्रेमगाथा

सूफ़ी-प्रेमगाथा का आरम्भ

हिंदी की सूफ़ी प्रेमगाथाओं का आरंभ, सर्वप्रथम, किस समय में हुआ इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। बहुत से लेखक इसे मलिक मुहम्मद जायसी (मृ० सं० १५९९) की 'पदुमावति' नामक रचना में दिए गए निम्नलिखित विवरण के आधार पर निश्चित करना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें कुछ प्रमाण भी उपलब्ध हैं। जायसी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

विक्रम धँसा प्रेम के वारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा ॥
मधू पाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा वैरागी ॥
राजकुँवर कंचनपुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भएऊ ॥
साधु कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ॥
प्रेमावति कहँ सुरसरि साधा। ऊषा लगि अनिरुध वर बाँधा ॥

जिनसे पता चलता है कि 'पदुमावति' की रचना के समय तक वे कहानियां किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित रही होंगी जिनकी ओर कवि ने इनके द्वारा संकेत किया है। पंक्तियों का यह पाठ स्व० शुक्ल जी द्वारा संपादित 'जायसी ग्रंथावली' के अनुसार है जो अन्य कतिपय हस्तलिखित

प्रतियों की दृष्टि से यत्किंचित् भिन्न पड़ता है । उदाहरण के लिए उक्त 'सपनावति' शब्द के स्थान पर कहीं कहीं 'चंपावत' शब्द मिलता है और 'मधूमाछ' का 'सुदीमच्छ' तथा 'सिरी भोग' , एवं 'मुगुधावति का 'खंडरावति' दीख पड़ता है । इसी प्रकार 'साधु कुँवर खंडावत' के स्थलपर कहीं-कहीं 'साधा कुँवर मनोहर' भी मिला करता है । फिर भी इनसे सूचित होता है कि, यदि इनमें आए हुए प्रसिद्ध अनिरुद्ध एवं उपा के उल्लेख का परित्याग करा दिया जाय तो , किसी विक्रम और 'सपनावति' वा 'चंपावत' 'मुगुधावति' वा खंडरावति एवं 'सिरीभोज', 'राजकुँवर' एवं 'मिरगावति', 'मधुमालति' एवं मनोहर तथा 'प्रेमावति' एवं 'सुरसरि' जैसे नायक नायिकाओं के आधार पर कमसे कम पांच और भी प्रेम कहानियां प्रचलित रही होंगी । किंतु पता नहीं कि ये सभी कहानियां प्रेमगाथाओं के ही रूप में थी और पुस्तकाकार में लिखी भी जा चुकी थीं अथवा मौखिक रूपमें ही प्रचलित थी । इनमें से 'मिरगावति' की अभी तक खंडित प्रतियां ही उपलब्ध हो पायी हैं और वह जायसी के पूर्व कालीन कुतबन की रचना है । 'मधुमालती' के नाम के आधार पर भी 'मंझन', जानकवि, एवं 'नसरती' आदि की अनेक प्रकार की कथाएं हिन्दी व फ़ारसी में भी मिलती हैं और चतुर्भुजदास की 'मधुमालतीरी कथा' भी उपलब्ध है । सपनावति वा 'चंपावत' मुगुधावति वा 'खंडरावती' तथा 'प्रेमावती' से संबंध रखने वाली किसी प्रेमगाथा का अभी तक पता नहीं चलता । कुतबन के भी पूर्वकालीन किसी दामों द्वारा रचित एक 'लक्ष्मण सेन पद्मावती की कहानी अवश्य मिली है। जिसमें 'वीरकथारस' की चर्चा है ।

पहले की प्रेम-कहानियाँ

'मिरगावति' की उपर्युक्त उपलब्ध प्रतियों द्वारा ठीक ठीक पता नहीं चलता कि कुतबन के पहले किसी अन्य सूफ़ी कवि ने उस प्रकार की प्रेमगाथा

लिखी थी वा नहीं। 'मंझन की' 'मधुमालति' पीछे की रचना है और जब तक इस बात के प्रमाण नहीं मिल जाते कि जायसी के उक्त उल्लेखों का आधार, वास्तव में, ठीक वैसी ही प्रेमगाथाएं रह चुकी थीं तब तक यह निर्णय करना अत्यंत कठिन है कि इस परंपरा का आरंभ किस निश्चित समय में हुआ था। जायसी और कुतवन के पहले से प्रेम कहानियों का प्रचार था और वे पौराणिक रचना वा लोक गीतों के रूप में प्रचलित थीं। कुछ इस प्रकार की कहानियों का आधार ऐतिहासिक नायक नायिकाओं और घटनाओं को लेकर भी निर्मित किया गया पाया जाता था। वीरगाथाकाल अर्थात् हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक युग के अंतर्गत ऐसी अनेक रचनाएं मिलती हैं जो प्रेमाख्यानों के रूप में लिखी गई हैं अथवा जिनमें किसी सामंत की प्रेमकथा और उसके कारण की गई लड़ाइयों आदि के वर्णन पाये जाते हैं उस समय तक इस प्रकार की पुस्तकों का भी अभाव नहीं था जिसकी कथा द्वारा उच्च सिद्धांतों का प्रतिपादन होता था। भिन्न भिन्न प्रकार की 'रासा' 'दूहा' एवं 'वात' और 'चौपई' नामों से प्रसिद्ध रचनाओं में इस ढंग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनमें प्रेमियों के वर्णन या तो शुद्ध व स्वाभाविक रूप में किए गए मिलते हैं और कहीं कहीं चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटनाओं द्वारा आश्चर्य एवं कौतूहल जागृत कर उनमें रोचकता लायी गई रहती है अथवा दैवी संकेतों द्वारा उनमें किसी धार्मिक उपदेश की ओर लक्ष्य रहा करता है जिस कारण रचना का प्रधान उद्देश्य सांप्रदायिक सिद्ध होता है। इसके सिवाय विरहिणियों के संदेशों को लेकर एक प्रकार की रचनाएं उससे भी पहले से प्रसिद्ध चली आती रही हैं। संस्कृत की मेघदूत, 'हंसदूत', 'पवनदूत' से लेकर अब्दुर्रहमान की अपभ्रंश रचना 'सन्देश रासक' (११ वीं शताब्दी) तक इसके उदाहरण में दी जा सकती है।

उनका वर्गीकरण

सूफ़ी प्रेमगाथा की परंपरा का आरंभ होने के पूर्व जो प्रेम से किसी न

किसी प्रकार संबंध रखनेवाली, कथाएं, इस प्रकार प्रचलित थीं उन्हें हम स्थूलरूप में इन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(१) वे कथाएं जिनका संबंध पौराणिक आख्यानों के साथ था और जिनके उदाहरण में हम राधा-कृष्ण, उषा-अनिरुद्ध, नल-दमयंती, आदि की कथाओं के नाम ले सकते हैं और जिनमें शकुन्तलादि के कथानक भी सम्मिलित हैं। (२) वे लोक गीत जो मौखिक रूप में किसी अज्ञात समय से आ रहे थे और जिनमें राजस्थान के ढोला मारवणी की प्रेम कहानी अथवा पंजाब के ससि व पूनों की कथा गिनायी जा सकती हैं और जिनके मूल रूपों का कुछ न कुछ आभास क्रमशः 'ढोला मारूरा दूहा' एवं 'पुष्य कवि की लहंदी कहानी' 'ससि-पूनों' में मिलता है। (३) जैनियों के कुछ पौराणिक आख्यान जिनमें प्रेम की बातें बहुत कुछ गौणसी हो गई हैं और जिनका मुख्य उद्देश्य धार्मिक ही है (४) वीर-गाथा-काल की कुछ प्रेमगाथाएं जिनमें वीर रस संबंधी घटनाओं का भी समावेश रहा करता है और जो अधिकतर कुछ न कुछ ऐतिहासिक आधारों पर भी आश्रित रहा करती हैं और इनके उदाहरण राजस्थानी और अपभ्रंश में अधिक मिलते हैं। (५) वे कथाएं जिन्हें कवियों ने कतिपय काल्पनिक आधारों को लेकर लिखा है और जिनमें तिलिस्मों और चमत्कारों का प्राचुर्य रहता है।

सूफ़ी-प्रेमगाथा की विशेषता

सूफ़ियों की प्रेमगाथाएं उक्त प्रकार के पांचों वर्गों में से किसी एक में भी पूर्णरूप से समाविष्ट नहीं की जा सकतीं। इन प्रेमगाथाओं के रचयिताओं ने उनमें से प्रायः सभी की विशेषताओं को कुछ दूरी तक अपनाया है और उन सब के अतिरिक्त अपनी एक पृथक विशेषता कथारूपक की भी दे देते हैं जो फ़ारसी जैसी विदेशी भाषाओं के साहित्य द्वारा यहाँ पर, सर्वप्रथम, लायी गई जान पड़ती है और जिसमें सूफ़ीमत के प्रेम संबंधी

सिद्धांतों के प्रचार की ओर स्पष्ट संकेत लक्षित होता है। इन प्रेम गाथाओं में पौराणिक आख्यान केवल भारतीय स्रोतों से ही न आकर इस्लामी वा शामीपरंपरा के 'यूसुफ़ जुलेखा' जैसे उपाख्यानों के रूप में भी आते हैं और उनमें स्वभावतः एक भारतीय वातावरण एवं संस्कृति का भी चित्रण पाया जाता है। इसी प्रकार इन सूफ़ी कहानियों में कोरे चित्र दर्शन, स्वप्न-दर्शन वा सौंदर्य कथन के ही आधार पर उत्पन्न अकृत्रिम प्रेम की एक ऐसी झलक मिल जाया करती है जो उपर्युक्त लोक गीतों की एक विशेषता है और पारिवारिक बाधादि का चित्रण भी प्रायः उन्हीं के अनुकूल रहता है। सूफ़ी प्रेमगाथा के कवियों ने रतनसेन एवं पद्मावती जैसे ऐतहासिक आधारों को लेकर भी कभी-कभी अपनी रचनाएं प्रस्तुत की हैं और यथा स्थल उनमें वीर रस का भी समावेश किया है। इनकी कहानियों में इसी-प्रकार काल्पनिक अप्सराओं, उनके आश्चर्यजनक कृत्य तथा चमत्कारों की भी भरमार पायी जाती है। वैज्ञानिक देशकाल का बहुत कम विचार रहता है। सूफ़ी प्रेमगाथाओं के क़वियों का मूल आदर्श फ़ारसी की मसनवी वाली प्रेम कहनियां ही रहती रही हैं, किंतु इन्हें उन्होंने अपने ढंग से ही रचा है।

प्रेमगाथा की परंपरा

उयर्युक्त पांच प्रकार की प्रेमगाथाओं में से अधिकांश की परंपरा आज तक प्रायः लुप्त सी हो गई है और उनका न तो वह प्राचीन रूप कहीं दीख पड़ता है और न इस समय उनका औचित्य ही स्वीकार किया जाता है। उनमें से कुछ का महत्त्व आज कल केवल एक प्राचीन वस्तु की भांति कौतुहल और मनोरंजन की सामग्री बनने में ही रह गया है। उनमें से केवल कुछ पौराणिक और ऐतिहासिक कहानियां ही ऐसी रह गई हैं जिन्हें आधुनिक कवि कभी-कभी अपने कथानक बना लेते हैं। हिन्दी

साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल एवं रीतिकाल के कतिपय कवियों ने कभी-कभी इस प्रकार की रचनाओं को प्रस्तुत किया है जिनमें से आलम कवि के 'माधवानल भाषा बंध'(सं० १६४०), सूरदास कृत 'नलदमन' (सं० १७३०) तथा पृथ्वीराज राठोर कृत 'क्रिसन रुकमिणी री वेल' (सं० १६३७)एवं बोधाकृत 'विरह वारीश' जैसी पुस्तकों के नाम लिए जा सकते हैं और जिनमें काल्पनिक व चमत्कारपूर्ण अंश बहुत अधिक पाया जाता है । सूफ़ी-प्रेमगाथाओं के लगभग समानांतर और प्रायः उन्हीं के आदर्श पर एक अन्य प्रकार की प्रेम गाथाएं भी लिखी गई हैं जो अधिक प्रसिद्ध नहीं है, किंतु जिनका महत्त्व, उनकी कम संख्या के होनेपर भी, किसी प्रकार न्यून नहीं कहा जा सकता । ऐसी प्रेमगाथाएं 'संत प्रेमगाथा' के नाम से अभिहित की जा सकती हैं । इनके रचयिता संतकवि रहते आए हैं और इनमें, सूफ़ी-प्रेमगाथाओं की ही भांति, संतमत की बातों का प्रतिपादन कथारूपकों द्वारा किया गया दीख पड़ता है । इस प्रकार की रचनाओं के उदाहरण में बाबाधरणीदास (१६ वीं-१७ वीं शताब्दी) की 'प्रेम प्रगास' तथा संत दुखहरण की 'पुहुपावति' (सं० १७३०) नामक प्रेम कहानियां दी जा सकती हैं जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो पायी हैं ।

मुल्ला दाऊद की 'चंदावन'

सूफ़ी प्रेमगाथा की कोटि में रखी जाने योग्य सबसे पहली रचना अबतक मुल्लादाऊद की पुस्तक 'चंदावन' मानी जाती है जिसका उल्लेख अब्दुल-क़ादिर बदायूनी ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मुंतखबुत्तवारीख़' (भा० १-पृ० २५०) में किया है और जिसके विषय में वह लिखता है कि उसमें 'हिंदवी' की मसनवी द्वारा नूरक व चंदा के प्रेम का वर्णन है । इस रचना का वह इसलिए विशेष परिचय नहीं देना चाहता कि उसके समय में वह 'अत्यंत प्रसिद्ध' है इसे वह 'दैवी सत्यता से भरी' भी कहता है । इस रचना

का सर्वप्रथम उल्लेख हि० सन् ७७२ (सं० १४२७) में अर्थात् फ़ीरोज़-शाहतुग़लक के शासन-काल (सं० १४०८-१४४५) में हुआ है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने दाऊद को अलाउद्दीन ख़िलजी (रा० का० सं० १३५३-१३७३) का समकालीन समझा है और उसका कविता काल सं० १३७५ ठहराया है[2] जो अनुचित नहीं कहा जा सकता। जान पड़ता है कि मुल्ला-दाऊद, इस प्रकार, अमीर ख़ुसरो (सं० १३१२-१३८१) का भी सम-कालीन था जो फारसी में ८-९ मसनवियां लिखने के लिए प्रसिद्ध है। खुसरो की 'मसनवी 'लैली व मजनू' एवं 'मसनवी ख़िज़्रनामः' या 'इश्क़िया', वस्तुतः प्रेमगाथा की ही रचनाएं कही जा सकती हैं और उनसे पता चलता है कि दाऊद के लिए उस समय कैसा वातावरण था। मुल्लादाऊद की 'चंदावन' के संबंध में यह नहीं पता चलता कि उसकी 'हिंदवी' का रूप क्या था और उसमें किन छंदों का प्रयोग हुआ था।

अन्य अप्राप्त। प्रेमगाथाएं

मुल्ला दाऊद की उपर्युक्त 'चंदावन' के अनंतर जिन सूफ़ी प्रेमगाथाओं की रचना हुई उनकी संख्या बड़ी जान पड़ती है, किंतु अभी तक उनमें से बहुत कम उपलब्ध हैं और कई एक का तो आज तक केवल साधारण उल्लेख मात्र ही मिला है। साधारण उल्लेख वा परिचय-प्राप्त ऐसी प्रेमगाथाओं में शेख़ रिज़क़ल्ला मुश्ताक़ी (सं० १५४९-१६३८) की रचना 'प्रेमवन-जोव निरंजन' की चर्चा की जाती है और कहा जाता है कि वह सूफ़ी मत

---

[1] बा० व्रजरत्नदास : 'खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास' पृ० ९१-९२।

[2] डा० रामकुमार वर्मा : 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इति-हास' (द्वितीय संस्करण) पृ० १२८।

बिठाने तथा उसमें आये हुए पात्रों को न्यूनाधिक सजीवता प्रदान करने की ओर है उतना इस बात की ओर नहीं कि उसे किसी अप्रस्तुत विषय का भी उसके द्वारा स्पष्टीकरण करना है। इसी कारण इस प्रकार की कहानियों के पढ़ने पर उन्हें किन्हीं कथा-रूपकों की संज्ञा देना सदा उचित नहीं प्रतीत होता। इस बात की प्रतिक्रिया विक्रम की १८वीं शताब्दी में लिखी गई कासिमशाह की रचना 'हंस जवाहर' में लक्षित होती है। कासिमशाह अपनी रचना पर पौराणिकता एवं चमत्कार आदि का रंग अवश्य अधिक चढ़ा देते हैं, किन्तु वे अपने मुख्य उद्देश्य को भी नहीं भूलते, कथा के अंत में, जायसी की भांति, उस ओर एक संक्षिप्त संकेत कर देते हैं और प्रायः उसी के शब्दों में उसका अंत भी करते हैं।

वही

विक्रम की १८वीं शताब्दी की केवल कासिमशाह की 'हंस जवाहर' नामक कहानी ही मिलती है जो हि० सन् ११४९ अर्थात् सं० १७९३ में लिखी गई थी और जो अपने आवश्यक गुणों के कारण आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध भी हुई थी। इस कहानी में एक विशेषता यह भी थी कि इसमें सनातनपंथी इस्लाम धर्म के महत्त्व पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था और जहां तक संभव हो सका था प्राचीन आदर्श को ही अपनाया गया था। किन्तु विक्रम की १९वीं शताब्दी के नूर मुहम्मद एवं कवि निसार की रचनाओं में हमें इस नवीन प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है। नूर मुहम्मद ने अपनी 'इंद्रावति' सं० १८०१ (हि० सन् ११५७) तथा 'अनुराग-बांसुरी' सं० १८२१ (हि० सन् ११७८) के अंतर्गत अपनी कट्टर-पंथी इस्लामी भावनाओं का स्पष्ट शब्दों में प्रदर्शन किया है और कवि निसार ने अपनी रचना 'यूसुफ़ जुलेखा' सं० १८४७ (हि० सन्

१२०५) के कथानक तक को अपनी प्राचीन शामी परंपरा से ही चुनना अधिक उपयुक्त समझा है। विक्रम की २०वीं शताब्दी की उपलब्ध इस प्रकार की कहानियों में हमें कोई विशेष रूप से उल्लेखनीय बात नहीं दीख पड़ती। ख्वाजा अहमद की 'नूरजहां' सं० १९६२ (हि० सन् १३१३) तथा शेख रहीम की 'प्रेमरस' सं० १९७२ (ई० सन् १९१५) नामक कहानियों में केवल काल्पनिक पात्रों और घटनाओं का समावेश किया गया है और कवि नसीर की प्रेमगाथा 'प्रेमदर्पण' सं० १९७४ (हि० सन् १३३५) को, कवि निसार की भांति ही, यूसुफ़ और जुलेखा की कथा का आधार मान कर उसके अंत में कथारूपक का स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है।

इनकी विशेषताएं

सूफ़ियों की प्रेमगाथाओं में कतिपय विशेषताएं पायी जाती हैं जो अन्य ऐसी रचनाओं से इन्हें पृथक् कर देती हैं। इनकी सब से प्रधान विशेषता का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जिसके अनुसार ये रचनाएँ एक प्रकार के कथारूपक की श्रेणी में आ जाती हैं। इन कहानियों का वास्तविक उद्देश्य किन्हीं सांसारिक व्यक्तियों की प्रेमचर्चा द्वारा इश्क़ हक़ीक़ी के सिद्धान्त का प्रतिपादन रहा करता है। ये प्रेम के लगाव का स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन, सौंदर्यप्रशंसा अथवा कभी-कभी प्रत्यक्ष दर्शन से भी आरम्भ करती हैं। एक व्यक्ति को उसके प्रभाव द्वारा विमोहित कर प्रेमाधार के साथ स्थायी मिलन के लिए आतुर बना देती हैं, वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अथक परिश्रम करने के लिए शीघ्र सन्नद्ध हो जाता है, विघ्न-बाधाओं को पार करता एवं कष्ट झेलता हुआ वह अग्रसर होता है, उसे बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के अनंतर प्राप्त करता है और फिर सफल होकर भी कभी-कभी अनेक अड़चनों के अनंतर ही अपने घर लौट पाता है। इन प्रेम-

गाथाओं के कवियों ने इसी एक मूल सूत्र के आधार पर लगभग सारी रचनाओं का ढांचा खड़ा किया है और इसके द्वारा बतलाया है कि ईश्वर के प्रति आध्यात्मिक प्रेम का भूखा साधक भी किस प्रकार, सर्वप्रथम, उस तत्त्व का संकेत पाता है, उससे प्रभावित होकर विविध साधनाओं में प्रवृत्त होता है अपने उद्देश्य की सिद्धि के आगे किसी भी प्रकार की आपत्तियों को कुछ भी नहीं गिनता और न किसी प्रलोभन में पड़ता है। अपितु एकनिष्ठ होकर प्रयत्न करता हुआ, अंत में, सिद्धि प्राप्त कर लेता है। कहानियों के प्रस्तुत कथानकों में जिस प्रकार प्रेमी का पथ-प्रदर्शन करने के लिए कोई मनुष्य, परी, देव अथवा पक्षी आदि रहा करते हैं और उसे मार्ग के विवरण दिया करते हैं उसी प्रकार साधक का मार्गप्रदर्शन कोई पीर वा मुर्शिद किया करता है। उसकी विघ्न-बाधाएं साधक को अपने लक्ष्य से डिगाने के लिए प्रस्तुत सांसरिक प्रलोभनादि की ओर संकेत करती हैं। उसके निकट दुर्गों पर विजय प्राप्त करने अथवा घोर युद्धों में सफल होने के वर्णन साधक के शारीरिक एवं मानसिक साधनाओं की सफलता का स्मरण दिलाते हैं और उसके प्रियमिलन द्वारा ईश्वरोपलब्धि की सूचना मिलती है। कथारूपक के रहस्य का इस प्रकार उद्घाटन कभी कभी स्वयं कवि भी कर देता है जैसा जायसी, कासिमशाह, कवि नसीर आदि ने किया है और कभी-कभी कोई कवि अपनी कहानी के पात्रों के ऐसे नाम ही रख देता है जिससे सारी गूढ़ बातें क्रमशः प्रकट होती जाती हैं। इस दूसरे प्रकार का प्रयत्न नूर मुहम्मद ने अपनी रचना 'अनुराग बांसुरी' में किया है। कहानी के पात्रों के नाम साधारण प्रकार से भी अधिकतर वे ही रखे जाते हैं जिनसे कवि के मूल उद्देश्य का कुछ न कुछ संकेत मिल जाया करता है और उसमें आये हुए स्थानादि की संज्ञा भी प्रायः वैसी ही दी जाती है जिससे पाठकों को इस बात की कुछ न कुछ सूचना मिल जाय।

वही

इन कहानियों की एक दूसरी विशेषता इस बात में पायी जाती है कि प्रेमारंभ का मूल कारण रूप-सौंदर्य बना करता है जो वस्तुतः, 'खुदा के नूर' की ओर संकेत करता है और जिसकी एक साधारण सी भी झलक प्रेमी को बेचैन कर देती है। इस रूप का अवतरण कवि अधिकतर नायिकाओं में ही किया करता है और नायकों को उसके द्वारा अनुप्राणित कर देता है। उपलब्ध प्रेमगाथाओं के अंतर्गत कवि निसार एवं कवि नसीर का केवल यूसुफ़ ही ऐसा एक मात्र नायक है जो इस रूपसौंदर्य का मुख्य आधार बना जान पड़ता है यों तो प्रेम-भाव के विकास एवं वृद्धि के लिए सभी कवियों को अपने अपने नायकों को सुन्दरी नायिका के अनुरूप ही रचना पड़ा है जिससे "खुदा ने इन्सान को अपना प्रतिबिम्ब बनाया" की ध्वनि भी निकलती है। नायक के भी इस प्रकार सुन्दर एवं आकर्षक होने से इस धारणा को बल मिलता है कि सच्चे साधक की ओर स्वयं भगवान् भी आकृष्ट हो जाया करता है। प्रेमगाथाओं की एक तीसरी विशेषता प्रेमियों का अपने पारिवारिक बंधनों के प्रति पूरी उदासीनता प्रदर्शित करना है। इनके नायक वा नायिका अपने माता-पिता अथवा पूर्व के किसी भी निकटवर्त्ती के प्रति कुछ भी आकृष्ट नहीं रह जाते, प्रत्युत वे उनके संपर्क से पृथक् होकर उनके सत्पराशमर्शों तक की अवहेलना करने लग जाते हैं। इस विशेषता के द्वारा सूफ़ी कवि सांसारिक लगाव को इश्क़ हक़ीक़ी के सामने हेय ठहराने का प्रयत्न करते है।

वही

इन विषय-संबंधी कतिपय विशेष बातों के अतिरिक्त प्रेमगाथाओं की रचनाशैली की भी एकाध विशेषताएं उल्लेखनीय हैं और इन्हें इनका प्रत्येक रचयिता प्रदर्शित करने का प्रयत्न करता है। सूफ़ी प्रेमगाथा

का प्रत्येक रचयिता उसे आरंभ करते समय ईश्वर की स्तुति करता है और उसकी सृष्टि-रचना के कार्य का कुछ न कुछ परिचय देता है। फिर वह क्रमशः हज़रत मुहम्मद और उनके चार ख़लीफ़ाओं का प्रशंसात्मक उल्लेख करता है और अपने पीर का परिचय देता है। इसके अनंतर कवि अपने 'शाहे वक़्त' अर्थात् समकालीन बादशाह की प्रशंसा करता है और तब अपना पता देता है। बड़ी बड़ी प्रेमगाथाओं में ये सारी बातें विस्तार पूर्वक दी गई रहती हैं और छोटी-छोटी कहानियों में इनमें से एकाध बातें कभी कभी छोड़ भी दी जाती हैं। फिर कथा के प्रधान पात्रों के स्थान एवं परिवारादि का कुछ न कुछ परिचय दिया गया मिलता है और बहुधा यह भी देखा जाता है कि कथा का नायक अपने कुल में एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति के रूप में ही जन्म लिया करता है। इसके उपरान्त नायक वा नायिका के प्रेमभाव का गांभीर्य प्रदर्शित करने के लिए उनकी लगन के आरम्भ हो जाने पर, बहुधा उनके विरह का वर्णन पूरे विस्तार के साथ किया गया पाया जाता है और उसमें 'बारहमासे' तक आ जाते हैं, फिर कथा के अंत में, संयोग हो जाने पर, कभी-कभी उसे दुःखान्त भी बना दिया जाता है जिसका प्रभाव संसार की अनित्यता पर भी पड़ता है। उपर्युक्त सूफ़ी प्रेमगाथाओं में से लगभग एक तिहाई दुःखांत हैं और वे विशेषकर उन कवियों की रचनाएं हैं जो प्राचीन परंपरा के पोषक हैं। 'मधुमालति' के अंत में मंझन ने इस बात में खेद प्रकट किया है कि कवि लोग प्रायः दुःखान्त कहानियां लिख दिया करते हैं। उसने स्वयं सुखान्त रचना की है और जानकवि, नूरमुहम्मद, ख़्वाजा अहमद एवं रहीम ने भी ऐसा ही किया है।

भाषा

भाषा के विचार से ऐसे सभी कवियों ने अवधी को ही सब से अधिक

महत्व दिया है। केवल जानकवि इसके अपवाद स्वरूप हैं। इसका प्रधान कारण यह जान पड़ता है कि इन कवियों में से अधिकांश का संबंध अवध अथवा पूर्वी उत्तर प्रदेश से था और अवधी भाषा में लिखे गए दोहा-चौपाई के छंद क्रमशः फ़ारसी तथा उर्दू के मसनवी का स्थान परंपरानुसार ग्रहण करते जा रहे थे। क़ुतबन एवं मंझन के निवासस्थानों का ठीक ठीक पता नहीं चलता, किन्तु उनका भी संबंध इधर के ही ज़िलों से हो सकता है। मलिक मुहम्मद का जायस नगर, कासिमशाह का दरियाबाद, कवि निसार का शेखपुर, ख्वाजा अहमद का बाबूगंज तथा शेखरहीम का जोवल गांव सभी अवध प्रान्त में ही पड़ते हैं तथा उसमान एवं कवि नसीर गाज़ीपुर ज़िले के और नूर मुहम्मद जौनपुर ज़िले के ठहरते हैं। इन कवियों में से केवल जानकवि फतेहपुर (जयपुर) का निवासी है जो ब्रजभाषा को अधिक अपनाता हुआ जान पड़ता है। ब्रज-भाषा को अपनी रचना 'यूसुफ़ और ज़ुलेखा' में कवि निसार ने भी स्थान दिया है, किन्तु ऐसा उसने ऋतु-वर्णन आदि लिखते समय कहीं-कहीं केवल बीच-बीच में ही किया है और वहां भी उसके छंद दोहा वा चौपाई नहीं हैं। छंदों में दोहा और चौपाई को ही अधिकांश कवियों ने प्रयुक्त किया है और उनके क्रम में विशेषकर पांच चौपाइयों से लेकर सात वा नव तक के अनंतर दोहा देना उचित समझा है तथा 'चौपाई' शब्द का अर्थ भी उन्होंने संभवतः, एक अर्द्धाली का ही लगाया है। किन्तु कोई कोई कवि चौपाई के स्थान पर चौपई—भी रख देते हैं और दोहे के स्थान पर बरवै का प्रयोग कर देते हैं। अवध एवं पूर्वी ज़िले के कवि प्रायः ऐसा ही करते रहे हैं, राजस्थानी जानकवि ने इस ओर तथा रचना शैली के विषय में भी पूरी स्वतन्त्रता दिखलायी है। वास्तव में, यदि सभी बातों पर सूक्ष्म रूप से विचार किया जाय तो इस कवि की बहुत कम रचनाएं शुद्ध प्रेम गाथा कहला सकती हैं।

७—हिन्दी का फुटकल सूफ़ी-काव्य

सूफ़ियों के हिन्दी पद

ऊपर कहा जा चुका है कि सूफ़ी-प्रेमगाथा का हिन्दी में सर्व-प्रथम रचयिता मुल्ला दाऊद था जो, संभवतः, अमीर ख़ुसरो का समकालीन था और अमीर ख़ुसरो भी स्वयं एक प्रसिद्ध कवि और सूफ़ी था। अमीर ख़ुसरो चिश्ती संप्रदाय के विख्यात पीर निज़ामुद्दीन औलिया का मुरीद था जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है और वह एक फ़ारसी कवि भी माना जाता था। उसकी गणना भारतीय फ़ारसी कवियों में से सर्वश्रेष्ठ में की जाती है और फ़ारसी में उसकी मसनवियों की भी संख्या कम नहीं। किन्तु अमीर ख़ुसरो हिन्दी एवं उर्दू के पुराने कवियों में भी गिना जाता है और उसकी पहेलियां, मुकरियाँ, दो सखुनें जैसी रचनाएं प्रारंभिक हिन्दी-काव्य के इतिहास की महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ हैं। अमीर ख़ुसरो ने इन रोचक और मनोरंजक चुटकुलों के अतिरिक्त कतिपय गंभीर व भावपूर्ण हिन्दी रचनाएँ भी की हैं जो अभी तक वहुत कम संख्या में उपलब्ध हो सकी हैं और जो विशेषकर पदों एवं दोहों के रूप में हैं। इन रचनाओं में प्रायः वे ही भाव लक्षित होते हैं जो आजतक प्रचलित 'निर्गुनिया' गीतों में दीख पड़ते हैं। इस प्रकार के सूफ़ी गीतों के उदाहरण अमीर ख़ुसरो के अनंतर लगभग तीन सौ वर्षों तक नहीं मिलते और आगे चल कर, विक्रम की १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल में प्राप्त होते हैं। फिर तो उसके प्रायः सौ वर्षों तक के कई सुफ़ियों तथा संतों में कोई विशेष अंतर ही लक्षित नहीं होता और इस प्रकार की रचनाओं की भरमार हो जाती है। यारी-साहव (१८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) एवं वुल्लेशाह (सं० १७३७-१८१०) के शब्द इनके उदाहरण में दिये जा सकते हैं, यारी साहव के ही समकालीन 'प्रेमी' कवि ने जहां प्रेमगाथा की शैली के अनुसार 'प्रेम प्रगास' की रचना

की थी वहां उसने कुछ ऐसे पद भी लिखे थे जो भक्त सूरदास के प्रसिद्ध भ्रमरगीतों का स्मरण दिलाते हैं। इन कवियों के कुछ पीछे अब्दुल समद ने भी कतिपय 'भजन' लिखे थे जिनमें बुल्लेशाह की चेतावनी के साथ साथ 'नज़ीर' की मस्ती की भी कुछ न कुछ झलक दीख पड़ती है।

उनके दोहे, आदि

सूफ़ियों के हिन्दी दोहे अपना एक पृथक् महत्त्व रखते हैं और इनकी संख्या उनके पदों से कहीं अधिक है। अमीर ख़ुसरो के उपर्युक्त दोहों के अतिरिक्त 'जायसी' के 'अखरावट' एवं 'आखिरीकलाम' में आये हुए दोहे, वा सोरठे, शेख़ फ़रीद (मृ० सं० १६१०) के 'आदिग्रंथ' में संगृहीत 'सलोक' (दोहे) यारी साहब की साखी (दोहे) तथा 'पेमी', हाजी वली (१९वीं शताब्दी) एवं वजहन के दोहे, सभी लगभग एक ही टकसाल में ढले सिक्के हैं और उनकी चलती और चुभती चेतावनियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इन दोहों की भाषा की सफ़ाई और कथनशैली की सजीवता अन्यत्र दुर्लभ ही जान पड़ती है। इन पदों एवं दोहों के अतिरिक्त यारी साहब के कुछ झूलने, दीन दरवेश (१९वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध) के कुंडलियाँ तथा 'नज़ीर' अकबराबादी (मृ० सं० १८८७) की फ़ारसी वज़नों के अनुसार लिखी गई अनेक रचनाएँ भी अपना-अपना महत्त्व रखती हैं और उनमें भी सूफ़ी-काव्य की वही परिचित प्रेरणा काम करती जान पड़ती है जो उपर्युक्त पदों एवं दोहों में विद्यमान है। इनमें निजी अनुभव की गंभीरता के साथ साथ स्वाभाविक उद्गारों की सरलता है जो, कवि की मस्ती के कारण, एक रंगीन और चित्ताकर्षक रूप में प्रकट होकर तन्मय कर देती है। सूफ़ियों के इन कथनों में साहित्यिक सौंदर्य उतना स्पष्ट नहीं जितना सूक्तिसुलभ व्यावहारिक महत्त्व भरपूर है।

उनके निबंधों का रूप

सूफ़ियों की हिन्दी रचनाओं में उनके निबंधों का पता नहीं चलता किन्तु जायसी की 'अखरावट', हाजी वली की 'प्रेमनामा', वजहन की 'अलिफ़नामा' एवं किसी अज्ञात कवि की 'अल्लानामा' नामक रचनाओं का जो विषय है वह फ़ारसी में लिखे गए सूफ़ी-निबंधों के ही अभाव की पूर्ति करता जान पड़ता है। इनके विषय के अंतर्गत ईश्वर की स्तुति प्रेम की महत्ता और सूफ़ियों की विविध साधनाओं का आभास कहीं-कहीं सीधे सादे वर्णनों और अन्यत्र 'सवाल व जवाब' के द्वारा दिया गया है जिससे स्पष्ट है कि इनके कवियों का प्रधान उद्देश्य सूफ़ीमत के किसी न किसी अंग का अपने ढंग से प्रतिपादन ही है इनमें से जायसी की 'अखरावट' तथा वजहन की 'अलिफ़नामा' में क्रमशः नागरी एवं फ़ारसी के अक्षरों का आरंभ करके वर्णन किया गया है और इस प्रकार की एकाध रचना यारी साहब आदि की भी मिलती है। जायसी की 'आखिरी कलाम' नामक रचना के अंतर्गत इस्लामधर्म के सच्चे अनुयायियों की अंतिम यात्रा, भिन्न भिन्न पौराणिक व्यक्तियों के विविध कार्य एवं हज़रत मुहम्मद की महत्ता का दिग्दर्शन कराया गया है और उसके द्वारा प्रसंग-वश सूफ़ीमत की कतिपय मान्यताओं की भी झांकी मिल जाती है। इन निबंधवत् निर्मित कतिपय रचनाओं के आधार पर हमें यह पता चल जाता है कि सूफ़ी लोग मूलधर्म को कहां तक माना करते थे। सूफ़ियों की हिन्दी रचनाओं में उनके जीवन वृत्तों का अभी तक अभाव ही जान पड़ता है। उर्दू साहित्य में यह कमी कुछ अंशों तक उसके 'तज़किरः शुअरा' जैसी रचनाओं द्वारा पूरी हो जाती है, किन्तु हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकें बहुत कम मिला करती हैं।

८—संक्षिप्त आलोचना

कवि की मनोवृत्ति

सूफ़ी प्रेमकथाएं किसी उद्देश्य के अनुसार लिखी गई हैं जिसकी ओर इसके पहले भी संकेत किया जा चुका है। सूफ़ी कवियों को 'कथाछलेन' अपने मत का प्रचार करना था और उसके द्वारा लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करना भी था। इस कारण उन्होंने न केवल अपने लिए भरसक सरस और मनोहर कथानक चुने अपितु उसके घटना निर्वाहादि का विधान करते समय उसे अधिक से अधिक आकर्षक रूप में सजाने की चेष्टा की। रचनाओं की सृष्टि हिन्दी भाषा के द्वारा की गई जिससे पाठकों की अधिक से अधिक संख्या उन्हें पढ़कर समझ सके और उसका रहस्य सरलता पूर्वक हृदयंगम किया जा सके इसके सिवाय देश में हिन्दुओं की संख्या अधिक पायी जाने के कारण कहानी के पात्रों को भी अधिकतर हिन्दू ही रखा गया। हिन्दू देवी-देवता का यथास्थल अवतरण कराया गया, उसके प्रति, परिस्थिति के अनुसार, श्रद्धा प्रदर्शित की गई और हिन्दू-संस्कृति का वातावरण भी रखा गया हिन्दू भावों तथा परंपराओं को यथावत् चित्रित करने की चेष्टा द्वारा कथावर्णन में स्वाभाविकता लाना भी उन्हें आवश्यक था। परन्तु सभी सूफ़ी कवियों ने अपनी इस मनोवृत्ति को सदा स्थिर नहीं रखा और कुछ ने इसके विपरीत भी कार्य किया। एक बार हिन्दू कथानक वा पात्रादि को चुनकर उनके अनुसार आगे बढ़ने के लिए वे विवश थे। फिर भी किसी किसी कवि ने हिन्दू-धर्म-संबंधी बातों का हेयत्व सिद्ध कर उसके विपरीत इस्लाम-धर्म का उत्कर्ष प्रकट करने की भी चेष्टा की है। उदाहरण के लिए कुछ सूफ़ी कवियों ने कथा-प्रसंग के व्याज से कभी-कभी हिन्दू मूर्त्तियों की अवमानना कर डाली, कभी-कभी हिन्दू मान्यताओं को निःसार सिद्ध करने के प्रयत्न

किये और कभी कभी तो अपने को इस्लाम-धर्म-निष्ठ प्रकट करने की प्रत्यक्ष घोषणा तक कर दी। ऐसी बातों के लिए 'पद्मावति' के रचयिता जायसी तथा 'अनुराग बांसुरी' के कवि नूर मुहम्मद जैसे सूफ़ियों का उल्लेख किया जा सकता है। कवि निसार, कवि नसीर, जानकवि, क़ासिमशाह जैसे कवियों ने बहुत कुछ विदेशी बातों का समावेश कर अपनी कहानियों का आरंभ ही किया है, अतएव उनके लिए इस प्रकार की मनोवृत्ति दिखलाना क्षम्य भी कहा जा सकता है।

प्रबंधकल्पना व निर्वाह

सूफ़ी-प्रेमगाथा के कवियों की सभी रचनाएं स्वभावतः प्रबंधकाव्य की कोटि में आती हैं। इसलिए उन्होंने अपनी अपनी रचनाओं का निर्माण उसी के नियमानुसार करने की चेष्टा की है। अपने कथानकों को चुनकर उन्होंने उनकी प्रमुख घटनाओं को यथासंभव स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है और उनका क्रम आगे बढ़ाया है, ऐसा करते समय वे बीच में कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी लाते गए हैं जिनसे पूरे प्रबंध की रोचकता में अभिवृद्धि हो सके। उन्होंने परिस्थितियों पर ध्यान देते हुए उन्हें कार्य-कारण के नियमानुसार स्थान दिया है और पूरे प्रबन्ध की दृष्टि से उनसे काम लिया है। कभी कभी ऐतिहासिक कथानकों को विकास देते समय उन्हें काल्पनिक घटनाओं का भी न्यूनाधिक समावेश करना पड़ गया है। फिर भी सूफ़ी प्रेमगाथा के इन कवियों के समक्ष सदा एक प्रकार की बहुत बड़ी अड़चन भी उपस्थित रहती आई है। उन्हें न केवल अपने कथानकों के स्वाभाविक प्रवाह की गति देखनी पड़ी, किन्तु इसके साथ साथ उन्हें यह भी विचार करते जाना पड़ा कि अमुक घटना वा घटनाएं हमारे अंतिम उद्देश्य अर्थात् कथारूपक के आदर्श को किसी प्रकार विकृत वा अंगहीन तो नहीं कर देतीं। सारी घटनावली को स्वाभाविक स्वरूप

देते चलना और उन्हें फिर आवश्यकतानुसार, अंत में, एक रूपक का अंग भी बना देना सरल काम नहीं था। इस कारण, यदि सूक्ष्म रूप से विचार किया जाय तो, कदाचित् कोई ऐसा कवि अपनी इस परीक्षा में पूर्ण सफल होता नहीं दीखता। प्रत्येक कथारूपक (Allegory) के रचयिता का यह कर्त्तव्य होता है कि वह एक ओर अपने कथानक की घटनाओं को यथावत् स्वाभाविक रूप में अंत तक पहुँचाने की चेष्टा करे और साथ ही अपने रूपक को भी स्वस्थ बनाये रखे, इस कारण इस द्विविध प्रयत्न में केवल वे ही इने गिने कवि पूर्ण सफल हो पाते हैं जो सभी प्रकार से कुशल और दक्ष हुआ करते हैं। इन सूफ़ी कवियों की रचनाओं पर विचार करते समय हम देखते हैं कि इनमें से बड़े बड़े तक इस ओर पूर्णतः कृतकार्य नहीं हो सके हैं। स्वयं जायसी जो अन्य सभी दृष्टियों से इनमें सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, इस में असफल हो गए हैं, और अपने कथानक का रूप ऐतिहासिक होने के कारण, उन्हें कुछ और भी विवश होना पड़ गया है। इसके सिवाय जानकवि जैसे कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने अपने रूपक-निर्वाह में उतनी सजगता ही नहीं प्रदर्शित की है और उनकी रचनाएँ कोरी प्रेमकहानी-सी बन गई है, जिस कारण उनसे सूफ़ियों का अंतिम उद्देश्य उचित प्रकार से सिद्ध नहीं हो पाता।

चरित्रचित्रण

प्रबन्ध-काव्य के अंतर्गत चरित्र-चित्रण का कार्य बहुत बड़ा महत्व रखता है और इसमें पूरी सफलता प्राप्त करने की चेष्टा सभी कवि किया करते हैं। प्रत्येक पात्र के चरित्र को, उसकी परिस्थिति की संगति में बिठाते हुए भी, विविध घटना-चक्रों के आवर्तों से बचाकर निकाल लाना और, अंत में, एक सुन्दर, किन्तु स्वाभाविक रूप भी प्रदान कर देना कुछ सरल काम नहीं है और फिर उन कवियों के सामने तो एक दुहरी समस्या

भी खड़ी हो जाती है जिन्हें उन पर किसी आदर्शानुसार रंग-विशेष चढ़ाने की भी आवश्यकता होती है, सूफ़ी-प्रेमगाथा के कवियों को जब अपनी कथा-वस्तु के घटना प्रवाह में डाल कर किसी पात्र को अंत तक निवाह ले जाने की आवश्यकता पड़ती है तो उन्हें केवल इसी बात की चिन्ता नहीं रहा करती कि उसका स्वरूप किसी परिस्थिति-विशेष के अनुकूल गढ़ता जा रहा है वा नहीं। उन्हें इस बात को देखते रहने के लिए भी जागरूक बनना पड़ता है कि वह अंत में जाकर हमारे आदर्शों के अनुरूप ही उतर सकेगा। कवि की परीक्षा इस बात में तब विशेष रूप से होती है जब वह सारी कथा को अंत में, एक कथारूपक के आदर्शनुसार प्रदर्शित कर देना आरंभ करता है। पाठकों को उस समय इस बात पर विचार करने का अवसर मिल जाता है कि अमुक पात्र कवि के कथनानुसार, वास्तव में, प्रस्तुत भी किया गया है वा नहीं और, यदि नहीं तो, उसके कारण पूरे प्रबन्ध-काव्य में कहां तक दोष आ जाता है।

वही

सूफ़ी प्रेमगाथा के कवियों को जहां ऐतिहासिक घटनाओं का आधार लेना पड़ा है और इसके लिए उन्होंने भरसक ऐतिहासिक पात्रों की ही अवतारणा की है वहां परिस्थिति-विशेष को संभालने के लिए उन्हें कुछ काल्पनिक पात्रों की भी सृष्टि करनी पड़ी है जिन्हें उन्होंने प्रसंगानुसार उपस्थित कर अपनी कहानी में खपा दिया है। वे पात्र भी सदा इसीलिए नहीं आये हैं कि उनके द्वारा किसी प्रधानपात्र के पूर्ण चित्रों में सहायता मिलती है अथवा उनके सहारे घटनाओं के यथावत् प्रवाह में कोई सुसंगति बैठती है जैसा साधारण प्रबंध-काव्यों में देखा जाता है। ऐसे पात्रों को ये कवि विशेषकर इस कारण स्थान दिया करते हैं कि इनके अंतिम उद्देश्य की पूर्ति का वे आवश्यक अंग भी हो सकते हैं। उदाहरण

के लिए जायसी ने अपनी 'पद्‌मावति' में जिस तोते का वर्णन किया है उसका इतिहास में कोई स्थान नहीं है। किन्तु प्रस्तुत प्रेम-कथा की दृष्टि से उस पात्र का चित्रण बहुत महत्त्व रखता है और फिर 'गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा' की दृष्टि से विचार करने पर तो वह, सूफ़ी मत के सिद्धान्तानुसार, पूरे घटनाचक्र को अनुप्राणित करने वाला सिद्ध हो जाता है। ऐसे पात्र को प्रायः सभी ऐसे कवियों ने देव, परी, परेवा, तपी, ब्राह्मण, आदि के किसी न किसी रूप में चित्रित किया है। हाँ, कुछ अन्य पात्र जैसे राक्षस, दूत, दूती, वनचर, मालिन, जोगी, आदि भी आते हैं जिनकी, आदर्श रूपक के अनुसार, कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

चही

सूफ़ी-प्रेम गाथा के कवि अपने चरित्र-चित्रण में अच्छी स्वाभाविकता नहीं ला सके हैं। उनके द्वारा चित्रित पात्र उतने सजीव नहीं जान पड़ते, जैसे साधारण प्रेमकथा के पात्र बहुधा हुआ करते हैं। इसका कारण, उपर्युक्त उद्देश्य की सिद्धि वाली अड़चनों के अतिरिक्त, एक यह भी हो सकता है कि इन कवियों ने अपनी रचनाओं को बहुत कुछ उन आदर्शों के अनुसार ही ढालने का प्रयत्न किया है जो उनकी शामी परंपरा के फलस्वरूप 'अलिफ़ लैला' आदि में भरे पड़े हैं। परियों, सिंहों, अजगरों, दानवों तथा अलौकिक पुरुषों की भरमार उनकी प्रायः सभी कथाओं में रहा करती है और कभी-कभी उनमें ऐसी अस्वाभाविक घटनाएँ भी घट जाती हैं जिन्हें कोरी कल्पना के ही बलपर हम कभी स्वीकार कर सकते हैं। इन सारी बातों का भी प्रभाव किसी पात्र के चित्रण में अवश्य पड़ जाया करता है और वह उसे नैसर्गिक रूप प्रदान करने में बाधा खड़ा कर देता है। प्रस्तुत प्रेम-कथा से अधिक अप्रस्तुत विषय अर्थात् 'इश्क़ हक़ीक़ी' के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान देने वाले कवि नूर मुहम्मद ने अपनी

का होना बहुधा खल जाया करता है और पाठक उन्हें बिना पढ़े भी आगे बढ़ने को तैयार बना रहता है। इसी प्रकार प्रेमियों की बाधापूर्ण यात्राओं के वर्णन पहले हममें उत्सुकता उत्पन्न करते हैं और यात्रियों के लिए बंधी हुई हमारी सहानुभूति हमें उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करती रहती है, किंतु कुछ ही आगे बढ़ने पर हमें पता चल जाता है कि सामने के दृश्यों से हम पहले से ही परिचित रहते आए हैं, इस कारण उन सब का परिणाम भी सर्वथा निश्चित-सा ही है। फलतः हमारी उत्सुकता वहाँ से ठंडी पड़ने लगती है और सहानुभूति में भी शिथिलता आ जाती है। इन कवियों ने कभी-कभी कतिपय युद्धों के भी वर्णन किये हैं, किंतु कथा-नायक के शौर्य को प्रकट कर देने की शीघ्रता ने उनमें वीररस का परिपाक विधिवत् नहीं होने दिया है। इन कवियों द्वारा किए गए संवाद-वर्णन कहीं कहीं अच्छे दीख पड़ते हैं, किंतु उनकी संख्या कम है।

भाषा एवं शैली

सूफ़ी-प्रेमगाथा के कवियों का भाषा पर पूरा अधिकार सर्वत्र नहीं लक्षित होता। जायसी, जानकवि, उसमान और नूर मुहम्मद इस विषय में अधिक सफल जान पड़ते हैं। जायसी द्वारा किया गया शुद्ध और मुहावरेदार अवधी का प्रयोग तथा नूर मुहम्मद का संस्कृत-शब्द-भंडार पर अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जायसी की सफलता उनकी सादी एवं आलंकारिक भाषा के व्यवहार में भी पायी जाती है। कहीं-कहीं उसमें यदि अनजान का अल्हड़पन आ जाता है तो अन्यत्र एक मँजी हुई लेखनी द्वारा निकले हुए प्रौढ़ उद्गारों की बहार भी देखने को मिलती है। उसमान अपने भावों को यथावत् प्रकट करते समय कभी-कभी भोजपुरी की भी सहायता लेते दीख पड़ते हैं और एकाध स्थलों पर उन्होंने इसके प्रचलित मुहावरों के भी प्रयोग किए हैं जिनसे उनकी उक्तियों में

सरसता आ गई है। जान कवि को अपनी भाषा पर इन सब से अधिक अधिकार दीख पड़ता है और उनकी रचनाओं को पढ़ते समय प्रतीत होता है कि वे एक सिद्धहस्त कवि हैं। नूर मुहम्मद भी एक पढ़े-लिखे कवि हैं और उनके यमकबाहुल्य से जान पड़ता है कि उन्हें काव्य-रचना का पूरा शौक था। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त फ़ारसी, अरबी एवं तुर्की आदि भाषा के शब्द और मुहावरे इनकी रचनाओं में स्वाभाविक जान पड़ते हैं। इन कवियों में से 'मँझन' का नाम विशेषतः उसकी सहृदयता एवं वर्णनों की स्पष्टता और स्वाभाविकता के लिए लिया जा सकता है।

सूफ़ी कवियों का रहस्यवाद

उपक्रम

सूफ़ियों के दार्शनिक सिद्धान्त और उनकी आध्यात्मिक साधना के संक्षिप्त परिचय द्वारा उनकी साधारण विचारधारा की ओर, इसके पहले ही, संकेत किया जा चुका है और उसकी एक रूपरेखा भी दी जा चुकी है। प्रत्येक सूफ़ी कवि के विषय में यह अनुमान कर लेना स्वाभाविक है कि वह अपने मत का अनुयायी होने के नाते उन सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास करता होगा और उन साधनाओं में यथासंभव और यथाशक्ति अभ्यस्त भी होगा। कारण यह है कि कम से कम सूफ़ी-प्रेमगाथा के कवियों का यह चरमलक्ष्य रहा करता है कि मैं अपने मत के सार-स्वरूप प्रेमतत्त्व का कथारूपक द्वारा प्रतिपादन करूँ और इस बात को वे कभी-कभी अपनी रचनाओं के अंत में स्पष्ट कर भी दिया करते हैं। अपनी रचना के अंतर्गत वे न तो किसी कोरे दार्शनिक की भाँति तर्क-वितर्क ही करते हैं और न किसी धार्मिक साधक की भाँति अपनी साधना का कोई क्रम ही ठहराते हैं। वे अपने कथारूपक की रचना में प्रवृत्त हो कर उसकी विविध

घटनावलियों को विकसित करते हैं और उसके भिन्न-भिन्न पात्रों की सहायता से कहानी का पर्यवसान कर उसके गूढ़ रहस्य का उद्घाटन कर देते हैं। सूफ़ी कवियों के इस कार्य-क्रम द्वारा यह बात स्पष्ट नहीं हो पाती कि उनका निजी अनुभव क्या है और वे किस आध्यात्मिक स्तर पर बैठ कर अपने संदेश दे रहे हैं। उनकी रचना किसी पूर्वपरिचित कार्य-क्रम के अनुसार किसी रेखा-चित्र में केवल रंगमात्र भर देती है और इस रंग-भरी में प्रदर्शित उनका कला नैपुण्य ही उन्हें अन्य कवियों की श्रेणी में स्थान दिलाता है। अतएव, इन सूफ़ी कवियों के रहस्यवाद का पता लगाना या तो इनकी रचनाओं में बिखरे हुए कतिपय विचारों के आधार पर संभव है अथवा उसकी रूपरेखा हम साधारण सूफ़ियों की विचारधारा को ध्यान में रख कर ही प्रस्तुत कर सकते हैं। उन सूफ़ी कवियों के रहस्यवाद का परिचय पाना कहीं अधिक सरल है जिन्होंने फुटकल पद्यों की रचना की है और उनमें अपने निजी अनुभव प्रकट किए हैं।

रहस्यवाद का स्वरूप

रहस्यवाद के वास्तविक स्वरूप का पता किसी कवि की उन पंक्तियों द्वारा ही लग सकता है जिनमें उसने परमात्मा की निजी अनुभूति वा तज्जन्य आनंदादि को व्यक्त किया है। परमात्मा की अनुभूति एक रहस्य-मयी वस्तु की अनुभूति है जिसका वर्णन भी स्वभावतः अस्फुट और अधूरा हुआ करता है। अनुभूति की गहराई कवि को अपने विषय के साथ पूर्णतः तन्मय कर दिये रहती है और वह लाख प्रयत्न करने पर भी उसका यथावत् वर्णन नहीं कर पाता। इस अनुभूति एवं इसकी अभिव्यक्ति का, इसी कारण, सुस्वादु मधुर वस्तु को खा कर आनंदित हो उठने वाले तथा अपने उस अनुभव को दूसरे के प्रति प्रकट करने की चेष्टा करने वाले किसी गूंगे की अनुभूति और अभिव्यक्ति के सदृश होना कहा जाता है।

यह एक साधारण अनुभव की भी बात है कि मनुष्य को जब किसी वस्तु का बहुत निकट से परिचय मिलता है और वह उसके साथ पूरे संपर्क में आ जाता है तो उसकी रागात्मक वृत्तियाँ उसे उस वस्तु के साथ क्रमशः अधिकाधिक सम्बद्ध करती चली जाती हैं और वह इस प्रकार अपने को उसमें खोता हुआ सा चला जाता है और अन्त में, वह उसके साथ अपने को अभिन्नवत् समझने लगता है। इस दशा में उसे उस वस्तु का केवल परिचय वा बाहरी ज्ञानमात्र ही नहीं रह जाता वह उसके साथ अपने को तदाकार सा बन गया हुआ अनुभव करता है जिस कारण वह उसका ठीक-ठीक पता नहीं दे पाता। अनुभूति के सारे साधनों जैसे रूप, रस, गंधादि का अनुभव करने वाली इंद्रियों का यह स्वभाव है कि अनुभूति की अधिकता वा गहराई के समय मानो सिमट कर किसी केंद्रीय साधन में मग्न हो जाती है जहाँ की अभिव्यक्ति का स्पष्ट होना संभव नहीं। भाषा केवल वहीं तक काम करती है जहाँ तक इन इंद्रियों की साधारण पहुँच रहा करती है। गहराई की अनुभूति की अभिव्यक्ति के समय इनकी शक्ति कुंठित सी हो जाती है और तब केवल इंगितों द्वारा काम लिया जाने लगता है।

वही

परमात्मतत्त्व का वर्णन करने वालों ने सदा उसे इंद्रियातीत, अगोचर और अज्ञेय तक बतलाया है और कहा है कि वह केवल निजी अनुभव की ही वस्तु है तथा अनिर्वचनीय है। यहाँ पर 'इंद्रियातीत' जैसे उपर्युक्त शब्दों का अभिप्राय केवल यही है कि हमारी इंद्रियों की साधारण शक्ति इस विषय में काम नहीं करती और न उसका बाह्य ज्ञान होता है, सूफ़ी दार्शनिकों ने उसे 'एक' और अकेला माना है और उनमें से बहुतों ने उसे एवं जगत् को अभिन्न ठहराया है। जीवन को इसी कारण परमात्मा का अंश कहा करते हैं और यह भी बतलाते हैं कि इसे साधारणतः अपने मूल से

पृथक् रहने का भान हुआ करता है। उससे पृथक् की दशा में अपने को समझने के ही कारण यह उसे भूला रहता है और मनमानी भी किया करता है। जब कभी इसे इस बात का पता चल जाता है कि मैं उसका सजातीय हूँ अथवा उसका अंश हूँ तो यह उसे भली भाँति जानना चाहता है और जब यह उसे जानने का प्रयत्न करते करते उसका अनुभव अति-निकट से करने लगता है तो यह अपने को उसमें खो-सा देता है और तब इसकी दशा लगभग उसी ढंग की हो जाया करती है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। फिर तो यह अपने को, अपने घर पहुँच कर, अपने आत्मीय से मिल गया हुआ समझने लगता है और आनंद-विभोर हो जाता है। आनंदातिरेक के कारण यह अपनी दशा को दूसरे के प्रति भलीभाँति प्रकट नहीं कर पाता और अनेक प्रयत्न करता है। गूंगा जिस प्रकार अपनी माधुर्यानुभूति की अभिव्यक्ति विविध इंगितों वा इशारों द्वारा करता है और मुस्कुराता रहा करता है इसी प्रकार परमात्मतत्त्व की अनुभूति कर लेने वाला मनुष्य भी अपनी भाषा की असमर्थता के कारण विवश हो कर उसकी अभिव्यक्ति अधिकतर प्रतीकों (Symbols) द्वारा किया करता है और कथारूपकों का भी सहारा लेता है। कथारूपकों (Allegories) का सहारा लेने में एक लाभ यह हुआ करता है कि वह अपनी अनुभूति की कथा को दूसरे के प्रति आद्यंत कह सुना देता है और उसकी रोचकता द्वारा दूसरे को उसकी ओर आकृष्ट भी कर लेता है।

सूफ़ी कवि की विशेषता

सूफ़ी-प्रेमगाथा के कवियों ने अपने आध्यात्मिक अनुभव के व्यक्तीकरण के लिए कथारूपकों को ही चुना है और उनके द्वारा उन्होंने अपनी अनुभूति का वर्णन विवरणों के साथ किया है। उनका, संक्षेप में, कहना है कि अपनी मूल वस्तु परमात्मा के प्रति हमारा आकर्षण उसी प्रकार

होता है जिस प्रकार एक प्रेमी का किसी प्रेमपात्र के प्रति हुआ करता है और लगभग उसी प्रकार वह आरंभ भी होता है। जिस प्रकार स्वप्न-दर्शन, चित्रदर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन वा गुण-कथन द्वारा कोई व्यक्ति किसी के प्रति आकृष्ट होता है और उसके विषय में अधिक जान-सुन लेने पर, उसके अभाव में, उसे प्राप्त करने के लिए उत्सुक एवं अधीर हो जाता है उसी प्रकार एक साधक भी अपने सद्‌गुरु वा पीर के द्वारा परमात्मा की एक झांकी प्राप्त कर उसके विषय में चिंतन करता हुआ, उसकी उपलब्धि के लिए विरहाकुल हो उठता है। फिर जिस प्रकार उक्त प्रेमी अपने प्रेम-पात्र से मिलने के लिए विविध प्रयत्न करने लगता है और अपने बंधु-बान्धवों तक के संग का पत्यिाग कर उस धुन में अपने प्राणों की बाजी लगा देता है उसी प्रकार परमात्मा का प्रेमी साधक भी उसके लिए कठिन से कठिन साधनाओं में प्रवृत्त हो जाता है और पूर्ण वैराग्य धारण कर उस ओर प्राणपण से लग जाता है तथा वह तब तक विश्राम नहीं लेता जब तक अपने लक्ष्य तक उसकी पहुँच नहीं हो जाती। अंत में जिस प्रकार एक प्रेमी अपने प्रेम-पात्र को पाकर हर्षित और प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार उक्त साधक भी परमात्मा की उपलब्धि का अनुभव कर आनन्द के मारे फूला नहीं समाता और अपनी दशा को दूसरे के प्रति कहने के भी प्रयत्न करने लगता है। सूफ़ी-कवि अपनी परमात्मानुभूति का परिचय इस प्रकार सीधे सादे कथनमात्र के द्वारा न देकर उसे किसी न किसी प्रेम कहानी के सहारे देने का प्रयत्न किया करते हैं और यही उनकी विशेषता है।

विरहानुभूति

इन सूफ़ी-कवियों के अनुसार साधक पहलेपहल परमात्मा संबंधी केवल संकेत मात्र से ही अवगत होता है। उसे उसके सौंदर्यकी एक झलक-मात्र ही मिलती है, किंतु उसकी मनोहरता उसे अत्यंत आकृष्ट कर लेती

है और वह उस अनुपम वस्तु का परिचय पाने के लिए उत्सुक होकर उसकी जानकारों की शरण में जा पड़ता है। अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए वह बार बार प्रश्न करता है, सत्संग करता है, और एकांत-चिंतन के द्वारा उसके स्वरूप की रूप-रेखा तय्यार किया करता है। वह ज्यों-ज्यों उसके विषय में सोच-विचार करता है त्यों-त्यों उस पर मुग्ध होता जाता है और इस बात पर पूरी आस्था रखता हुआ कि मैं मूलतः उसीका हूँ और उससे विलग हो पड़ा हूँ उसके साथ पुनर्मिलन के लिए वह आतुर हो जाता है। यही उसकी विरहावस्था कि स्थिति है जिसका वर्णन इन कवियों ने प्रेमियों की विरह-कातरता के रूप में किया है। सूफ़ियों के यहां पर इस प्रांरम्भिक विरह को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। वास्तव में प्रेम उनके अनुसार, पहले विरह के रूप में ही उत्पन्न होता है और जागृत होते ही होते प्रेमी को सताना आरंभ कर देता है। जायसी ने रतनसेन के विषयमें लिखा है कि वह सुआ द्वारा पद्मावती का रूप-वर्णन सुनता ही सुनता मूर्च्छित हो गया और 'प्रेम-समुद्र' के 'विरहभौंर' में पड़कर गोते खाने लगा। जायसी के अनुसार 'जिस प्रकार मोम के घर अर्थात् मधुकोश में अमृत सदृश मधु-संचित रहा करता है उसी प्रकार प्रेम के भीतर विरह निवास करता है' जैसे

पेमहि मांह विरहरसरसा। मैन के घर मधु अमृत बसा।

—(जा० ग्रं० पृ० ७६)

अतएव विरह ही, वस्तुतः, वह मूल पदार्थ है जिसमें अमरत्व का गुण वर्त्तमान है और जिसके लिए प्रेम का आविर्भाव हुआ करता है अर्थात प्रेम का यदि अस्तित्व है तो वह विरह के ही कारण है, क्योंकि वही प्रेम का सार है।* इस कथन की सार्थकता इस बात के द्वारा सिद्ध की जा सकती

---

*परशुराम चतुर्वेदी:-'जायसी और प्रेमतत्त्व'—हिन्दुस्तानी भा० ४ सं० ३, १९३४ हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग।

है कि सूफ़ियों के वर्णनों में आया हुआ यह प्रेम ईश्वरोन्मुख प्रेम का प्रतीक है जो सारे ब्रह्मांड के मूलाधार जगन्नियंता के प्रति उद्दिष्ट होने के कारण 'धरम प्रीति' बनकर सबके हृदयों में एक समान उत्पन्न हो सकता है और जिसमें सूफ़ी-संप्रदाय वालों के अनुसार परमात्मा से बिछुड़ी हुई जीवात्मा की विरह-व्यथा का आरंभ होना अनिवार्य सा है। जायसी ने इसे राजा रतनसेन और पद्मावती के संबंध में इस संकेत के द्वारा बतला दिया है कि उन दोनों का संबंध पूर्वनिश्चित था। राजा रतनसेन के बचपन में ही उसकी सामुद्रिक रेखाओं को देखकर पंडित कह देता है —

रतनसेन यह कुल निरभरा। रतन जोति मनि माथे परा।
पदुम पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अंजोरी॥
—(जा० ग्रं० पृ० ३२)

और फिर उसी प्रकार उधर पद्मावती की सखी भी स्वप्न-विचार कर कह देती है—

पच्छिउं खंडकर राजा कोई। सो आवा वर तुम्ह कहँ होई॥......
....
चाँद सुरुज सौं होइ बियाहू। वारि विधंसव वेधव राहू॥
जस ऊषा कहँ अनिरुध मिला। मेटि न जाइ लिखा पुरविला॥
—(जा० ग्रं० पृ० ९२)

जायसी ने परमात्मा से बिछुड़े हुए मानव की ओर से अपनी 'अखरावट' में भी कहा है—

हुता जो एकहि संग, हौं तुम काहे बीछुरा?
अब जिउ उठै तरंग, मुहमद कहा न जाइ कछु॥
—(जा० ग्रं० पृ० ३३६)

अर्थात सदा एक ही साथ रहने वालों में यह वियोग किस प्रकार घटित

हो गया जिसके कारण आज हृदय में भिन्न २ प्रकार के भाव जागृत हो रहे हैं और अपनी विचित्र दशा का वर्णन करते नहीं बनता। सूफ़ी-प्रेम-गाथा के सभी कवियों ने, इसी कारण, प्रेमियों को कहानी के प्रायः आरंभ में ही विरह-यातना द्वारा अभिभूत सा कर दिया है।

विघ्न-बाधाएं

सूफ़ी-कवियों ने इसके अनंतर उन प्रयत्नों का विस्तृत वर्णन किया है जो प्रेमियों की ओर से अपने प्रेमपात्र के साथ मिलने के लिए निरंतर अकथपरिश्रमपूर्वक किये जाते हैं। इन प्रयत्नों का आरंभ करने के पहले प्रेमी अपने धन-वैभव और कुटुम्ब परिवारादि की ओर से विरक्त हो जाता है और बहुधा 'जोगी' बनकर निकला करता है। मार्ग में उसे अनेक प्रकार के विघ्नों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है। बीहड़ वन, विस्तृत समुद्र , हिंसक प्राणिवर्ग, राक्षस आदि से लेकर दैवी घटनाओं के प्रकोप तक उसे अपने पथ से विपथ करनचाहते हैं। कभी २ वह पानी में बहा दिया जाता है, हवा में उड़ा दिया जाता है और अपने सहायकों-साथियों से वियुक्त करा दिया जाता है किंतु अपने प्रिय के साथ मिलने की दृढ़ आशा उसे अधीर नहीं होने देती और वह अवसर पाते ही फिर अग्रसर होने लगता है। अपने मार्ग में उसे कई प्रकार के प्रलोभन भी आ घेरते हैं और उसे जाने देना नहीं चाहते , किंतु वह उनकी ओर मुड़कर भी नहीं देखता और, अंतमें, वहीं पहुंच कर कुछ विश्राम लेता है जहां उसे अपने प्रेमपात्र का सान्निध्य जान पड़ता है। सूफ़ी-साधना के अनुसार उपर्युक्त विघ्न-बाधाएं किसी साधक वा 'सालिक' के सामने दैनिक जीवन के विविध संकटों के रूपमें आया करती हैं और उक्त प्रलोभन उसे ऐश्वर्यादि की उपलब्धि के रूप में बीच में ही रोक रखना चाहता है। परंतु वह किसी प्रकार भी अपनी धुन से विरत होना नहीं जानता और जब तक उसे परमात्मा के शुभ्र आलोक

की उपलब्धि नहीं हो जाती तब तक अपनी साधना में अनवरत लगा ही रह जाता है और क्रमशः बढ़ता चला जाता है ।

मार्ग के विभिन्न पड़ाव

प्रेमगाथा के सूफ़ी-कवियों ने प्रेमियों के उपर्युक्त मार्ग को विकट और विलक्षण बतलाते समय कभी-कभी उसके बीच में पाये जाने वाले विविध नगरों और प्रदेशों का भी वर्णन किया है। ये स्थल अधिकतर वे ही हैं जो सालिक अर्थात् उस साधक वा यात्री की प्रगति की विभिन्न दशाओं को सूचित करते हैं और जिनकी संख्या के विषयमें कुछ मत-भेद है। सूफ़ी धर्माचार्यों ने कभी-कभी उनका नाम 'मुक़ामात' (Stages) करके भी दिया है जिन्हें वे संख्यामें ७ बतलाते हैं और क्रमशः अबूदिया, इश्क़, ज़ुहद, म्वारिफ़, वज्द, हक़ीक़ और वस्ल कहा करते हैं। प्रथम दशा वह है जब साधक के हृदय में प्रेम का भाव जागृत हो जाता है, किंतु वह आंशिक रूप में ही रहा करता है, फिर वहीं दूसरी दशा में विरह का रूप धारण कर लेता है। तीसरी दशा वह है जब साधक अपनी चित्त-वृत्ति के साथ जहाद वा धर्मयुद्ध करता है और 'जहद' की स्थिति में रहता है। फिर वह आगे की दशा 'म्वारिफ़' में आता है जब उसके भीतर ज्ञान का उदय होता है और उसके अनंतर वह 'वज्द' अर्थात् तन्मयता की दशा को प्राप्त हो जाता है और तब फिर उसे 'हक़ीक़' की भूमि पर सत्य के निकट ठहरने का अवसर मिलता है। यही वह अवस्था है जहां पर उसे तनिक विश्राम मिलता है और जहां से, अंतमें, वह 'वस्ल' अर्थात् मिलन की अंतिम दशा में निरत हो जाता है। परन्तु ये सातों 'मुक़ामात' वस्तुतः साधक की मानसिक स्थितियां ही हैं, इनका कोई बाह्य स्थान नहीं है। जायसी ने मार्ग के (इसी प्रकार, "चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरै पार" कह कर) पड़ावों की संख्या अन्य ढंग से बतलायी है। उसमान कवि ने अपनी

'चित्रावलि' के अंतर्गत 'परेवा' द्वारा चार प्रमुख पड़ावों के नाम क्रमशः 'भोगपुर', 'गोरखपुर', 'नेहनगर' एवं 'रूपनगर' कहलाये हैं और उनकी भिन्न-भिन्न दशाओं का परिचय भी दिया है। उदाहरण के लिए भोगपुर में काया को भोग-विलास की सामग्रियां मिलती हैं, गोरखपुर में उसीका निर्वाह हो पाता है जो गुरु गोरखकी भाँति जोगी की दशा में रहा करता है, नेहनगर में जाकर निर्धन भी धनी की दशा में आ जाता है और उसे शांति मिलती जान पड़ती है और फिर आगे के अंतिम देश रूपनगर तक पहुँच कर उसे अपने प्रेमपात्रकी उपलब्धि हो जाती है और वह कृतकार्य हो जाता है।

मिलन की दशा

सूफ़ी-कवियों के अनुसार अंतिम दशा अपने प्रियतम वा प्रियतमा के साथ मिलन की होती है। साधक अपने अभीष्ट को पा कर आनन्द-विभोर हो जाता है। प्रेमगाथाओं में इस अवस्था तक प्रेमी को पहुंचा कर बहुधा छोड़ दिया जाता है और कहानी समाप्त कर दी जाती है। कहीं-कहीं तो प्रेमी, अपनी लंबी यात्रा के अंतमें, अपनी प्रियतमा को पाकर कुछ दिनों तक वहीं रम ज़ाता है और फिर घर की सुध किया करता है। फिर वहाँ से लौटते समय वह पूर्वपरिचित मार्ग से ही वापस आता है और मार्ग में त्यक्त पत्नियों को भी ले लेता है। किसी-किसी कहानी में उसे, अपने घर लौटते समय, फिर मार्ग में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वह सर्वत्र विजयी होता हुआ अपने घर पहुंच कर अपने माता-पिता के चरण छूता है। इस प्रकार के अंत में एक समस्या यह खड़ी हो जाती है कि अपनी प्रियतमा की उपलब्धि के अनंतर प्रेमी फिर अपने किस आत्मीय के पास आ सकता है। कथारूपक कीदृष्टि से कहानीका अंत तो वहीं पर होना ठीक जान पड़ता है जहाँ पर प्रेमी को अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है।

आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि उस स्थिति में आकर साधक अपनी मूल वस्तु को पा लेता है और चिरकाल के बिछुड़े हुए दो व्यक्तियों की भाँति, परमात्मा और जीवात्मा का स्थायी मिलन हो जाता है। इसके अनंतर फिर किसी अन्य के साथ, चाहे कहानियों के अनुसार वे अपने माता-पिता ही क्यों न हों, दो बिछुड़े हुए प्राणियों के रूप में मिलना कहानी के मूल उद्देश्य पर से पाठकों का ध्यान खींच लेता है और उन्हें अपने सामने प्रस्तुत कहानी को केवल एक प्रकृत कहानी के रूप में ही मानने को बाध्य कर देता है।

समीक्षा

सूफ़ियों द्वारा, प्रेमगाथा के अंतर्गत प्रदर्शित किये गए, इस रहस्यवाद के, इस प्रकार, केवल तीन मुख्य अंग हैं। इसका प्रथम अंग प्रारंभिक है जो साधक की विरहावस्था को सूचित करता है, दूसरा मध्यवर्ती है जो उसके विविध प्रयत्नों का परिचय देता है और तीसरा अंतिम है जो अभीष्ट-सिद्धि का सूचक है। इसके किसी अन्य अंग के संबंध में प्रेमगाथाओं के सूफ़ीकवि मौन दीख पड़ते हैं। वे इस बात की ओर ध्यान देते हुए नहीं जान पड़ते कि उनका साधक, वास्तव में, एक व्यक्ति मात्र है और उसकी उक्त सफलता केवल व्यक्तिगत ही कही जायगी। वह साधक, वास्तव में एक वृहत् मानव-समाज का अंग है जिसके प्रति भी उसके कर्तव्य और अधिकार निश्चित से हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न उठ सकता है कि उसने अपनी इस सिद्धि के द्वारा कुछ समाज के लिए भी किया वा नहीं। सूफ़ी दार्शनिकों एवं धर्माचार्यों ने अपने सिद्धान्तों और विविध साधनाओं को बड़े ऊँचे स्तर पर सिद्ध करना चाहा है। उनके अनुसार उनका परम लक्ष्य स्वयं परमात्मा है जो 'एक' और 'एकमात्र' सत्य है। जो कुछ है सो वही है और वह सभी के भीतर एवं बाहर व्याप्त होकर प्रत्येक कण वा परमाणु

'चित्रावलि' के अंतर्गत 'परेवा' द्वारा चार प्रमुख पड़ावों के नाम क्रमशः 'भोगपुर', 'गोरखपुर', 'नेहनगर' एवं 'रूपनगर' कहलाये हैं और उनकी भिन्न-भिन्न दशाओं का परिचय भी दिया है। उदाहरण के लिए भोगपुर में काया को भोग-विलास की सामग्रियां मिलती हैं, गोरखपुर में उसीका निर्वाह हो पाता है जो गुरु गोरखकी भांति जोगी की दशा में रहा करता है, नेहनगर में जाकर निर्धन भी धनी की दशा में आ जाता है और उसे शांति मिलती जान पड़ती है और फिर आगे के अंतिम देश रूपनगर तक पहुँच कर उसे अपने प्रेमपात्रकी उपलब्धि हो जाती है और वह कृतकार्य हो जाता है।

मिलन की दशा

सूफ़ी-कवियों के अनुसार अंतिम दशा अपने प्रियतम वा प्रियतमा के साथ मिलन की होती है। साधक अपने अभीष्ट को पा कर आनन्द-विभोर हो जाता है। प्रेमगाथाओं में इस अवस्था तक प्रेमी को पहुंचा कर वहुधा छोड़ दिया जाता है और कहानी समाप्त कर दी जाती है। कहीं-कहीं तो प्रेमी, अपनी लंवी यात्रा के अंतमें, अपनी प्रियतमा को पाकर कुछ दिनों तक वहीं रम ज़ाता है और फिर घर की सुध किया करता है। फिर वहाँ से लौटते समय वह पूर्वपरिचित मार्ग से ही वापस आता है और मार्ग में त्यक्त पत्नियों को भी ले लेता है। किसी-किसी कहानी में उसे, अपने घर लौटते समय, फिर मार्ग में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वह सर्वत्र विजयी होता हुआ अपने घर पहुंच कर अपने माता-पिता के चरण छूता है। इस प्रकार के अंत में एक समस्या यह खड़ी हो जाती है कि अपनी प्रियतमा की उपलब्धि के अनंतर प्रेमी फिर अपने किस आत्मीय के पास आ सकता है। कथारूपक कीदृष्टि से कहानीका अंत तो वहीं पर होना ठीक जान पड़ता है जहाँ पर प्रेमी को अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है।

आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि उस स्थिति में आकर साधक अपनी मूल वस्तु को पा लेता है और चिरकाल के बिछुड़े हुए दो व्यक्तियों की भाँति, परमात्मा और जीवात्मा का स्थायी मिलन हो जाता है। इसके अनंतर फिर किसी अन्य के साथ, चाहे कहानियों के अनुसार वे अपने माता-पिता ही क्यों न हों, दो बिछुड़े हुए प्राणियों के रूप में मिलना कहानी के मूल उद्देश्य पर से पाठकों का ध्यान खींच लेता है और उन्हें अपने सामने प्रस्तुत कहानी को केवल एक प्रकृत कहानी के रूप में ही मानने को बाध्य कर देता है।

समीक्षा

सूफ़ियों द्वारा, प्रेमगाथा के अंतर्गत प्रदर्शित किये गए, इस रहस्यवाद के, इस प्रकार, केवल तीन मुख्य अंग हैं। इसका प्रथम अंग प्रारंभिक है जो साधक की विरहावस्था को सूचित करता है, दूसरा मध्यवर्ती है जो उसके विविध प्रयत्नों का परिचय देता है और तीसरा अंतिम है जो अभीष्ट-सिद्धि का सूचक है। इसके किसी अन्य अंग के संबंध में प्रेमगाथाओं के सूफ़ीकवि मौन दीख पड़ते हैं। वे इस बात की ओर ध्यान देते हुए नहीं जान पड़ते कि उनका साधक, वास्तव में, एक व्यक्ति मात्र है और उसकी उक्त सफलता केवल व्यक्तिगत ही कही जायगी। वह साधक, वास्तव में एक वृहत् मानव-समाज का अंग है जिसके प्रति भी उसके कर्तव्य और अधिकार निश्चित से हैं। ऐसी दशा में यह प्रश्न उठ सकता है कि उसने अपनी इस सिद्धि के द्वारा कुछ समाज के लिए भी किया वा नहीं। सूफ़ी दार्शनिकों एवं धर्माचार्यों ने अपने सिद्धान्तों और विविध साधनाओं को बड़े ऊंचे स्तर पर सिद्ध करना चाहा है। उनके अनुसार उनका परम लक्ष्य स्वयं परमात्मा है जो 'एक' और 'एकमात्र' सत्य है। जो कुछ है सो वही है और वह सभी के भीतर एवं बाहर व्याप्त होकर प्रत्येक कण वा परमाणु

तक को प्रकाशित किए हुए हैं। अतएव, इस प्रकार की वास्तविक स्थिति के होने पर किसी एक व्यक्ति का उस तत्त्व को उपलब्ध कर लेना कोई महत्त्व तब तक नहीं रख सकता जब तक कि उस तत्त्व द्वारा पूर्णतः अनुस्यूत जगत् पर भी उसका कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई न दे। सारांश यह कि 'खुदा' के साथ 'वस्ल' की हालत में आ चुकने पर जब 'सालिक' एक सच्चे 'सूफ़ी' का रूप ग्रहण कर लेता है और वह 'खुदा' के 'वजूद' में अपने को 'फ़ना' कर उसके साथ 'वक़ा' के स्तर पर भी पहुंच जाता है उस समय उससे यह स्वभावतः आशा की जा सकती है कि वह जगत् के लिए भी कल्याणप्रद सिद्ध होगा। परन्तु सूफ़ियों की प्रेमगाथाओं में इसके लिए न तो कोई आदर्श रखा हुआ दीख पड़ता है और न इसके लिए किसी प्रकार के कार्यक्रम की योजना ही प्रस्तुत की गई मिलती है। फुटकल सूफ़ी-काव्यों के रचयिताओं ने इस ओर यदाकदा संकेत किया है और उन्होंने एक सुन्दर आध्यात्मिक जीवन तथा उसके नैतिक स्तर पर लक्षित होने वाली कतिपय बातों की झाँकी भी किसी न किसी रूप में दिखलायी है, किंतु वह अपूर्ण मात्र है। संत-प्रेमगाथाओं के कवियों ने सूफ़ी-प्रेमगाथाओं के कवियों से, इस विषय में, कहीं अधिक सजगता दिखलायी है। फिर भी उनकी रचनाओं के निश्चित आदर्श ने उन्हें भी पूरी सफलता नहीं मिलने दी है।

कविपरिचय और मूलपाठ

(क) सूफ़ी प्रेमगाथा काव्य

१—शेख़ क़ुतबन

जिन सूफ़ीकवियों की प्रेम-गाथाएं अभीतक किसी न किसी रूप में मिल सकी हैं उनमें सबसे पहला नाम क़ुतबन का आता है। इनकी रचना 'मृगावति' की उपलब्ध खंडित प्रतियों के आधार पर इनके विषय में केवल थोड़ासा ही परिचय दिया जा सकता है। जैसे,

सेष बुढन जग साचा पीरू। नाम लेत सुध होय सरीरू।
कुतबन नाम लेइ पावरे। सरवर दो दुहुँ जग नीर भरे।

आदि से पता चलता है कि क़ुतबन शेख़ बुढ़न पीर के बहुत बड़े प्रशंसक थे और उन्हें ये "सबसो बड़ा सो पीर हमारा" तक कहा करते थे। 'आइन-ए-अकबरी' से विदित होता है कि एक शेख़ बुढ़न शत्तारी शेख अब्दुल्ला शत्तारी के वंशज थे और प्रसिद्ध मुसलिम सुलतान शाह सिकंदर लोदी (रा० का० सं० १५४६-१५७४ वि०) के समकालीन भी थे। वहां पर यह भी कहा गया मिलता है कि उस ग्रंथ के रचयिता के पिताके बड़े भाई शेख़ रिज़क़ उल्लाह ने उस शेख बुढ़न से भेंट कर उनसे 'ज़िक्र' की शिक्षा ग्रहण की थी।* ये शेख़ रिज़क़ उल्लाह यदि शेख रिज़क़ुल्ला 'मुश्ताक़ी' हों तो इनका समय (हि० ८९७-९८९ अर्थात् सं० १५४९-१६३८ वि०)समझा जाता है।

---

* डा० मोहनसिंह : 'कबीर एंड दि भक्ति मूवमेंट' (भा० १), पृ० ९३।

ये सूफ़ी थे, हिन्दी कविता करते समय अपना नाम 'रज्जन' रखा करते थे और इन्होंने 'पेमवन जोव निरंजन' के नामकी कोई हिन्दी रचना भी की थी।* इस प्रकार क़ुतवन के उक्त पीर शेख़ वुढ़न और शेख़ वुढ़न शत्तारी के एक व्यक्ति होने की संभावना प्रतीत होती है। स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने क़ुतवन को सूफ़ीमतके चिश्तिया-संप्रदाय वाले शेख़ वुरहान का शिष्य वतलाया है।

क़ुतवन की 'मृगावति' में, इसी प्रकार,

साहे हुसेन आहे वड़राजा। छत्र सिंघासन उनको छाजा।
पंडित औ वुधवंत समाना। पढ़े पुरान अरथ सव जाना।

आदि पंक्तियों द्वारा 'शाहेवक़्त' की प्रशंसा की गई मिलती है। वहां पर साहे हुसेन को एक महादानी, धर्मात्मा और ऐश्वर्यसंपन्न राजा भी कहा गया है और उसे कर्ण एवं युधिष्ठिर का समकक्ष माना गया है। कुछ लेखकोंने इस को शेरशाह का पिता समझकर क़ुतवन को उसका आश्रित वतलाया है जो ठीक नहीं है। शेरशाह के पिताका नाम इतिहास की पुस्तकों में प्रायः 'हसन खां' ही देखा जाता है और उसकी वैसी किसी योग्यता का भी पता नहीं चलता। उधर क़ुतवन के समसामयिक समझे जाने योग्य दो अन्य ऐसे शासकों का भी पता चलता है जिनका नाम वास्तव में हुसेन शाह था। इनमें से एक हुसेन शाह शर्क़ी था जो जौनपुर का शासक था और जिसे वहलोल खां लोदी (मृ० सं० १५४५) ने हराया था और दूसरा बंगाल का शासक हुसेन शाह था जिसका राज्यकाल सं० १५५० से सं० १५७६ तक था। यह दूसरा हुसेन शाह वास्तव में वहुत ही योग्य एवं धर्मपरायण भी था और प्रसिद्ध है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के उद्देश्य से

---

* ब्रजरत्नदास : 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ९२।

उसने 'सत्यपीर' नाम का एक मत भी चलाया था। सं० १५६० में 'मृगावति' की रचना करते समय क़ुतवन का इस हुसेनशाह का नामोल्लेख करना कोई असंभव बात नहीं थी।

क़ुतवन ने इस रचना-काल की तिथि भी भादों बदि ६ दे दी है और कहा है कि मैंने इसे दो महीने और दस दिनों में पूरा किया है। उन्होंने एक स्थल पर इस काल को हिजरी सन् ९०९ अर्थात् सन् १५०३ ई० भी बतलाया है जो सं० १५६० ही पड़ जाता है। वे कहते हैं कि यह सुन्दर कथा पहले से ही चली आ रही थी और मैंने इसे केवल दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल आदि से लिपिबद्ध कर दिया। जैसे,

पहले हीअे दुइ कथा अही। योग सिंगार विरह रस कही॥
पुनि हम खोली अरथ सब कहा। लघु दीरघ कौतुक नहीं रहा॥
जहीय होत पन्द्रह सै सठी। तहीय अेरे चौपई गंठी॥
खट भख अहही ऐहि मद्ध। पंडित बिन बूझत होइ सिद्ध॥
पहिले पख भादौं छठी अही।..................
.............ही। नौ सौ नव जब संवत अही॥
रेअ मोहमि चांद उनियारी। यह कब कही पूरी संवारी॥
गाहा दोहा अरेल अरल। सोरठा चौपाई कै सरल॥
आस्तर आखिर बहुतै आये। औ देसी चुनि चुनि कछु लाये॥
पढ़त सुहावन दीजै कानू। इहकै सुनत न भावै आनू॥

दोहरा

दोये मास दिन दस मही, पहरे दौराये जाय।
येक येक बोल मोती जस पुरवा, इकठा भवचित लाय॥

मुल्ला दाऊद (कविता काल सं० १३७५) की रचना 'चंदावन' के उपलब्ध न हो सकने के कारण 'मृगावति' सर्वप्रथम प्रेमगाथा कही जाती

७

है। पता नहीं इसका मूल आदर्श क्या था, किन्तु इसमें आये हुए अलौकिक प्रसंगों से जान पड़ता है कि इस पर शामी परंपरा का कम प्रभाव न था। फिर भी कथा को भारतीय संस्कृति के वातावरण में रखकर सजाने के कारण क़ुतवन को हम प्रेमगाथा के सूफ़ी कवियों का मार्ग प्रदर्शक ही कहेंगे।

मृगावति

(मृगावती-दर्बार)

चौपाई

मृगावती सुनि जिअ रहसाई। कामा जनु मधवानल पाई॥
बिहसि नाम कहेसि मृगावति। नल जनु भेंटी दामावती॥
कहेसि जांउ अब नगर मंझारी। बैसै नरिन्द्र महाजन भारी॥
चलिकै सुर पंवरी लउ आवा। कनक पत्र जनु रतन जरावा॥

दोहरा

छत्तीस कुली बनिजारा, बैसे करहिं बैयार।
मंडप देषि धौराहर, पाप हरइ सभ झार॥३॥

चौपाई

पुनि जौ राज दुआरे जाई। कुँअरन्ह कै जाहां बैसु अथाई॥
सुरपती सभा स्रवन पें सुने। सेइ बिसेषे बैसे बहु गुने॥
पंडित औ बुधिवंत सरूपा। फुलि रही फुलवारी अनूपा॥
पंडुर पान सबै कोउ षाई। धरनी सुगंध सभै महंकाई॥
भोग की बात सभै केउ कहई। दुख की बात नहीं संचरई॥

दोहरा

एक एक देस के ठाकुर, आइ जो ठारै ही पार।
प्रतीहारे सें जो चरीती लए, छाड़हु करीउ जोहार॥४॥

चौपाई

कुँअर देषिकै चिंता भई। मोरी चाह कैसे पहुँचे जाई ।।
राजा राउ जोहार न पावही। हमरी गनती केकरे मन आवही ।।
बहुरि वियोग भएउ सिर सेती। कहेसि बात नाहि आवहि एती ।।
कीगरी लिहे वियोग बजावइ। सभही सुन वोही देषइ आवइ ।।
सुनि वियोग सभही एन बोला। भाइहु राग आसन हरि डोला ।।

दोहरा

जेइरे सुनीउ से भुलीउ, चिंत न रहीउ काही ।
बज्र करेजा जाही कर, भावी योग उर ताही ।।५।।

चौपाई

नगरी सगरी वियोग संतावइ। घर घर इहै बात जनावइ ।।
योगी एक कतहुं ते आवा। विरही वियोग संताप जगावा ।।
एही रे बात मृगावति सुनी। आएसु एक आवो बहुगुनी ।।
आग्या भई बोलावहु ताही। पूछहु कवन देसकर आही ।।
चेरी तीस एक उठि धाई। आएसु बार वोलावन आई ।।

दोहरा

आग्या भई राजाकै आऐ, सु चलहु वोलाए धाइ ।
एतनी वोल सुनी जोगी रहसा, षंथा मंह न समाइ ।।६।।

चौपाई

करम आजु भल अहइ हमारा। सिध होइ कै गुरू हंकारा ।।
ससी रे सारद मुष देषै पावउ। जरे पेम ओहीआरीसीरावउ ।।
सातौ पंवरी लाँघि जो आवा। वेगर-वेगर सातउ भावा ।।

आगु जाइ जो देषइ ताही । तारन मांझ चंद जनु आही ॥
फेरे सरग कचपची आइ । ताल मांझ फुली जलि कोइ ॥

दोहरा

सोने सिघासन उपर, भान वैस मैं देष ।
झार लागी आएस कहु, एक उपरगन पेष ॥७॥

(राजकुमार-मृगावति-मिलन)

चौपाई

मृगावती सिंगार जे ठयऊ । सोलह अभरन पहिरें लयेऊ ॥
घवराहर वहु भांति संवारा । रतन मही दीप उजियारा ॥
अगर चंदन बेना कस्तुरी । मलयागिरी कचोरन्ह भरी ॥
कुंकुम भेद अगरजा करीबा । ठाउ ठाउ वरै वहुतैं दीवा ॥
दीन वर अपने मंदिल सिधारे । सुरज साथ जाइ उघारे ॥

दोहरा

चोवा अगर सीर भरि, भीमसेनी वहु तोल ।
सवइ बासरस वेलसइ, परिमल फूल तबोल ॥२४॥

चौपाई

चन्द्रदोआव रही चहुं फेरी । दाती मयन वरहि वहुतेरी ॥
वासर निसी जाइ नहि परई । कोइ देवस कोइ राती कहई ॥
तेही भीतर लेइ पलंग विछाई । मृगावती तहँ बैसी आई ॥
सषी सहेली कहेसि बोलाइ । कुँअर हंकारहु देहु बोलाइ ॥
जे ठाढी आगे भइ जाइ । सेवा करत साथ भइ आइ ॥

दोहरा

मया करिअै पगु धारिअै, पदुमिनी तुमह बुलाव ।।
उठा तंबोर हाथ लेइ, हंसत मंदिल मँह आव ।।२५।।

चौपाई

रानी देषु कुंअर गा आइ । उतरी सेज सइ परु सोहराइ ।।
परग चारि चलि किहेसि जोहारू । आवहु स्वामी करिउ अहारू ।।
तहिआ भुगुतीन दीन्हेउ तोही । सेज बैसि अब भोगतहु मोही ।।
हम लागी मरन जग सहा । मैं कस न मानउ तोरा कहा ।।
जो कोइ काहु लागी दुष देषै । मीलइ सोइ अगनित सुष पेषै ।।

दोहरा

राजपाट जहां लगी, अरु हौं दासी तुम्हारि ।
चलहु सेजपर बैसहु, तुम्ह पुरुष मैं नारि ।।२६।।

चौपाई

दुऔ सेजपर बैसे जाई । मृगावती पुनि बात चलाई ।।
आपनि विरत कहु मोहि आगे । आयेहु तौ चित के रिस त्यागे ।।
आवत आएहु भा पछतावा । बैसेहु जीवन रह बौरावा ।।
निसि वासर तोहि संवरत रहऊ । षिनु न बिसारौं अब फुर कहऊ ।।
तोर गुन हम असिकै छावा । चित्र लिषे पुनि उतरिन आवा ।।

(अंत)

चौपाई

रुकुमिनि पुनि वैसहि मरि गई । कुलवंती सतसों सति भई ।।
बाहर वह भीतर वह होई । घर बाहर को रहै न जोई ।।

विधिकर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि बिरानू।
गंग तीर लेकं सर रचा। पूजी अवध कही जो बचा॥
राजा संग जरी रानी चौरासी। ते सब के गये इंद्र कविलासी॥

दोहरा

मिरगावति औ रुकमिनि लेकं, जरी कुंअर के साथ।
भसम भइ जर तिल येक, चिन्ह न रहा गात॥

२—मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचना 'पदुमावति' में वतलाया है कि उन्होंने उसे जायस में आकर लिखा था। परन्तु किस अन्य स्थानसे वे वहां पर आये थे इसकी ओर वे कोई संकेत कहीं पर देते हुए नहीं जान पड़ते। जायस को उस स्थल पर उन्होंने 'धर्मस्थान' भी कहा है। परन्तु अपनी 'आखिरी कलाम' नाम की रचना में उन्होंने जायस को अपना निजी स्थान भी वतलाया है और उसका आदि नाम 'उदयान' का उल्लेख कर उसके पूर्व इतिहास का परिचय देनेकी भी चेष्टा की है। इस प्रकार उस नगर के प्रति उनके आकर्षण एवं उनके नाम मलिक 'मुहम्मद' के आगे जुड़े हुए 'जायसी' शब्द से भी उनका उसके साथ घनिष्ठ संबंध जान पड़ता है। उनकी पंक्तियां ये हैं—

जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू।
(पदुमावति)

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नांव आदि उदयानू।
(आखिरी कलाम)

जायसी ने अपनी 'पदुमावति' में उसके प्रारंभिक वचनों के लिखने का समय हिजरी ९२७ दिया है जो सं० १५७८ वि० में पड़ता है। परन्तु

इस रचना के शेष अंश कब लिखे गए इस बात की चर्चा करते हुए वे नहीं दीख पड़ते। उन्होंने उस ग्रंथ में 'शाहेवक़्त' के रूप में शेरशाह का नाम लेकर उसे तात्कालीन 'देहली सुलतानू' भी कहा है। उसके प्रताप, शौर्य एवं दानशीलता की प्रशंसा की है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उसकी रचना होने के समय दिल्ली का बादशाह शेरशाह था। इतिहास से पता चलता है कि शेरशाह ने हुमायूं को हराकर सं० १५९७ से लेकर सं० १६०२ तक राज्य किया था और यह काल उक्त सं० १५७८से आगे चला आता है। अतएव कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि 'पद्मावति' की प्रारंभिक बातें लिखकर उन्होंने छोड़ दिया था और बहुत पीछे उसे पूरा किया। एक अन्य प्रकार की कल्पना यह भी की जाती है कि जायसी की पंक्ति में 'सन नव सै सत्ताइस अहा' नहीं, अपितु 'सन नव सैं सैंतालिस अहा' है और हिजरी सन ९४७ वह समय अर्थात् सं० १५९७ भी पड़ जाता है जब शेरशाह सूरी का राज्यकाल आरंभ हुआ था। परन्तु इस बात पर विचार करते समय उस पंक्ति के पाठ भेद का प्रश्न उठ खड़ा होता है जिसका समाधान बिना किसी मूल प्रमाणित प्रति के नहीं हो सकता। 'सन नव सैं सत्ताइस' के पक्ष में इतना और कहा जा सकता है कि सं० १७०७ के लगभग वर्त्तमान आलाओल नामक एक बंगला कवि ने भी, 'पद्मावति' का अनुवाद करते समय, इसी पाठ को ठीक माना था और उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था, "शेख महम्मद जति जखन रचिल ग्रन्थ संख्या सप्तविंश नवशत' अर्थात् शेख मुहम्मद ने जिस समय इस ग्रन्थ 'पद्मावति' की रचना की थी उसकी संख्या हिजरी सन् के अनुसार 'सप्तविंश नवशत' वा ९२७ है। 'पद्मावति' की उपर्युक्त पंक्तियां इस प्रकार हैं:—

सन नवसैं सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।

तथा,

सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू।

ओही छाज छात औ पाटा। सब राजै भुईं धरा ललाटा।
जाति सूर औ खांडे सूरा। औ बुधिवंत सबै गुन पूरा।

* * *

सेरसाहि सरि पूजन कोऊ। समुद सुमेर भँडारी दोऊ।

इत्यादि।

जायसी ने अपनी रचना 'आख़िरी कलाम' का निर्माण-काल हि० सन् ९३६ दिया है जो सं० १५८६ पड़ता है। उस समय बादशाह बाबर (रा० का० सं० १५८३-१५८७) का राज्य था और कवि ने उसके पराक्रम की भी चर्चा, उसका नामोल्लेख करके की है। जान पड़ता है कि जायसी ने, 'पदुमावति' की रचना आरंभ करके छोड़ देने पर, 'आखिरी कलाम' लिखा था और आगे चलकर उस अधूरी रचना को भी पूरा कर दिया था। उनकी उपर्युक्त पंक्ति 'जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू' के 'तहां आइ' से पता चलता है कि वे कहीं बाहर भी गए थे। संभव है कि उन्होंने 'आखिरी कलाम' की रचना कहीं अन्यत्र की हो और इसी कारण उसमें 'मोर अस्थानू' अर्थात् 'मेरा निवासस्थान' जायसनगर है कहकर अपना परिचय दिया हो और उसके अनन्तर जायस लौटकर उन्होंने 'पदुमावति' की रचना समाप्त की हो। 'पदुमावति' की रचना समाप्त करते समय तक जायसी बहुत वृद्ध भी हो गए थे जैसा कि उन्होंने उसके अन्त में स्वयं भी बहुत स्पष्ट कह दिया है। परन्तु 'आखिरी कलाम' के अन्तर्गत उन्होंने अपने जन्मकाल के समय होने वाले 'भूकंप' आदि का ही उल्लेख किया है।

नौसै बरस छतीस जो भए। तब एहि कथाक आखर कहे।

* * *

बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहं विधि छाजा।

—आखिरी कलाम

मुहमद विरिध वैस जो भई। जोबन हुत सो अवस्था गई।

* * *

विरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ॥३॥

'आखिरी कलाम' के अन्तर्गत वे अपने जन्म के समयादि के विषय में इस प्रकार कहते हैं:—

भा औतार मोर नव सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी।
आवत उधत-चार विधि ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना।

* * *

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नांव आदि उदयानू।
तहां दिवस दस पहुने आएउं। भा वैराग बहुत सुख पाएउं।

अर्थात् मेरा जन्म नवीं शताब्दी में हुआ था और मैंने काव्य रचना का आरंभ तीस वर्ष का हो जाने पर किया था। मेरे जन्म के समय उपद्रव हुआ था और एक ऐसा भूकंप आया था जिसके कारण संसार भयभीत हो गया था। मेरा स्थान जायस नगर है जिसका आदि नाम 'उदयान' था। जहां पर मैं कुछ दिनों के लिए अतिथि रूप में आया। वैराग्य हो जाने पर मुझे बड़ा सुख मिला। उपर्युक्त 'नवसदी' का अर्थ लोग हिजरी ९०० लगाते हैं और कहते हैं कि तदनुसार वे सन् १४९४ ई० = सं० १५५१ में जन्मे थे। परन्तु जहां तक पता चलता है 'सदी' एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ 'सौ वर्षों का समूह' अथवा 'शताब्दी' ही हुआ करता है। इस प्रकार 'नव सदी' से अभिप्राय भी, प्रचलित गणना पद्धति के अनुसार हि० सन् ९०० के पहले का समय होना चाहिए। डा० कुलश्रेष्ठ ने यहां पर 'नव' शब्द का अर्थ नवीन बतलाकर जायसी के जन्मकाल सं० हि० सन् ९०६ निश्चित कर दिया है और वे इसे इस बात से भी प्रमाणित करना चाहते

हैं कि 'आखिरी कलाम' का रचना-काल भी इस प्रकार उनके ३० वें वर्ष में पड़ता है। परन्तु यदि 'पदुमावति' का रचना काल हि० सन् ९२७ में सिद्ध हो जाता है तो उनका यह अनुमान गलत कहलायेगा। 'तीस बरिस ऊपर कवि बदीं' का स्वाभाविक अर्थ भी 'तीस वर्ष की अवस्था व्यतीत होने पर' ही हो सकता है। 'आखिरी कलाम' की ही रचना का समय प्रकट करना इन पंक्तियों के लिखने का अभिप्राय नहीं जान पड़ता। 'या औतार मोर नवसदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी' एक महत्वपूर्ण पंक्ति है जिसका वास्तविक रहस्य जायसी की अन्य रचनाओं के प्रकाश में आने पर, कदाचित् प्रकट हो सके।

जायसी ने अपने चार दोस्तों के भी नाम अपनी 'पदुमावति' में लिये हैं और उन्हें यूसुफ़ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियां और बड़े शेख कहा है। ये चारों ही जायस नगर के रहने वाले बतलाये जाते हैं। इनमें से दो एक के वंशज भी वहां अभी तक हैं। स्वयं जायसी के किसी वंशज का पता नहीं चलता। कहा जाता है कि इनके जो पुत्र थे वे किसी मकान से दबकर मर गये थे। इस घटना ने ही उन्हें कदाचित् और भी विरक्त बना दिया और वे अपने जीवन के अंतिम दिनों में गृहस्थी छोड़कर पूरे फ़क़ीर बन गए। कहा जाता है कि कुछ दिनों तक वे अमेठी से कुछ दूरी पर वर्त्तमान एक जंगल में भी रहने लगे थे जहां पर उनका देहांत हो गया। उनकी मृत्यु का संवत् प्रायः १५९९ बतलाया जाता है जो "रिज्जब सन् ९४९ हिजरी" के रूप में किसी क़ाज़ी नसरुद्दीन हुसैन जायसी की 'याददाश्त' में दर्ज है और जो, इसी कारण बहुत कुछ प्रामाणिक भी समझा जा सकता है। कवि जायसी, अवस्था में, अत्यंत वृद्ध होकर मरे होंगे और यह संवत्, उनके जन्म संवत् को १५५१ मान लेने पर, उनकी पूरी आयु का केवल ४८ वर्ष की होना ही सिद्ध करता है। अतएव संभव है कि, वे, 'नवसदी' के अनुसार वस्तुतः 'नवीं शताब्दी में' अर्थात् हि० सन् ९०० के पहले अवश्य

उत्पन्न हुए हों। अपनी काव्यरचनाओं (जिनकी संख्या ५ से भी अधिक बतलायी जाती है) का आरंभ तीस वर्ष पर किये हों और सं० १५९९ में मर गए हों। 'पद्मावति' इस प्रकार उनकी अंतिम रचना ठहरायी जा सकती है। क्योंकि उसकी समाप्ति के समय तक शेरशाह का राज्यकाल सं० १५९७ से आरंभ हो चुका था और वे अपनी वृद्धावस्था के कारण 'मीचु' अर्थात् मृत्यु की चिंता तक करने लग गए थे।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पीर' के संबंध में लिखते हुए कहा है,

सैयद असरफ़ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हियें प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमल हीया॥
—'पद्मावति'

तथा,

मानिक एक पाएउं उजियारा। सैयद असरफ़ पीर पियारा॥
जहांगीर चिश्ती निरमरा। कुल जगमह दीपक विधि धरा॥
—'आख़िरी कलाम'

इन पंक्तियों से पता चलता है कि उन्होंने सैयद अशरफ़ नामक सूफ़ी फ़क़ीर के ज्ञान-प्रकाश में अथवा उससे प्रकाशित उनके किसी वंशद्वारा दीक्षा ली थी और वे लोग चिश्ती संप्रदाय के अनुयायी थे। परन्तु कुछ अन्य पंक्तियों के आधार पर यह भी अनुमान किया जाता है कि वे मुहीउद्दीन नामक किसी अन्य सूफ़ी के भी मुरीद रह चुके होंगे। जैसे,

गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहिकर खेवा॥
—'पद्मावति'

तथा,

पा-पाएउं गुरु मोहिदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा॥
—'अखरावट'

इन दोनों सूफ़ी पीरों में से सैयद अशरफ़ संभवतः जायस के ही निवासी थे। ये उनके वंशज शाह मुबारक बोदले के मुरीद थे तथा मुहीउद्दीन कालपी के रहनेवाले थे। अतएव, हो सकता है कि पहले पहल वे सैयद अशरफ़ के ही 'कुल' में दीक्षित हुए हों और पीछे कालपी जाकर शेख़ मुहीउद्दीन के सत्संग में भी रहने लग गए हों। इस दूसरे पीर को उन्होंने कुछ विस्तृत गुरुपरंपरा भी बतलाई है जिसके आधार पर वे प्रसिद्ध निज़ामुद्दीन औलिया के वंशज ठहरते हैं। निज़ामुद्दीन औलिया (सं० १२९५-१३८१) ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (सं० ११९९-१२९३) के प्रशिष्य बाबा फ़रीद 'शकरगंज' (सं० १२३०-१३२५) के प्रधान शिष्य थे और अमीर ख़ुसरो (सं० १३१२-१३८१) के गुरु भी थे। इस प्रकार जायसी का संबंध अति प्रसिद्ध सूफ़ी घराने से रह चुका था।

मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पदुमावति' सूफ़ी-प्रेमगाथाओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। जायसी के समय तक इसप्रकार के काव्य-साहित्य का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था और इसके आदर्श केवल इने-गिने ही थे। जायसी ने इस नवीन धारा को अपनाकर इसके लिए अपनी एक सुन्दर भेंट प्रस्तुत की। वे इस प्रकार, आगे के ऐसे सूफ़ी कवियों के लिए आदर्श बन गए। जायसी की 'पदुमावती' का कथानक शुद्ध भारतीय पात्रों को लेकर भारतीय वातावरण में ही आगे बढ़ता है। इसके घटनाक्षेत्र अलौकिक पात्रों के क्रियाकलाप, नायक-नायिका के आमोद-प्रमोद वा विरह संताप आदि प्रायः सभी बातें भारतीय हैं। यहां तक कि सिंहल द्वीप में भी जो कुछ घटित होता है वह भारतीय आदर्शों से भिन्न नहीं है।

फिर भी जायसी एक सूफ़ी कवि हैं और अपनी इस रचना को भारतीय सांचे में ढालते समय भी वे अपने मूल उद्देश्य को नहीं भूलते। जहां-कहीं भी अवसर पाते हैं वहां अपने इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयत्न करते हैं। जायसी हिन्दू-धर्म एवं संस्कृति की बातों से भली-

भाँति परिचित हैं और कभी-कभी उनके विवरण तक दे डालते हैं। किन्तु इस रचना को ध्यानपूर्वक पढ़ जाने पर पता चलता है कि इसके लिए उनके ज्ञान की प्रशंसा भले की जाय, उनके प्रति इन्हें श्रद्धा नहीं है। जायसी की यह रचना एक कथारूपक है जिसका अप्रस्तुत बातों के साथ अक्षरशः मेल खाना संभव नहीं है। जायसी ऐसा करने में सफल भी नहीं कहे जा सकते। किन्तु इस प्रकार की त्रुटि उस मूल आदर्श का ही परिणामहै जिसके अनुसार ये सूफ़ी कवि इस ओर अग्रसर होते हैं।

पदुमावति

(प्रेम खंड)

सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानौं लहरि सुरुज कै आई।
प्रेमघाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।
परा सो पेम समुद्र अपारा। लहरहि लहर होइ विसँभारा।
विरह भौंर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई।
खिनहि उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहि उठै निसरै बौराई।
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता। खिनइ चेत खिन होइ अचेता।
कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था। ना जिउ जियै न दसवँ अवस्था।
जनु लेनिहार न लेंहि जिउ, हरहिं तरासहिं ताहि।
एतनै बोल आव मुख, करैं "तराहि तराहि" ॥१॥
जहँ लगि कुटुँब लोग औ नेगी। राजा राय आये सब बेगी।
जावत गुनी गारुडी आए। ओझा बैद समान बोलाए।
चरचहि चेष्टा परिखहि नारी। नियर नाहि ओषद तहँ बारी।
राजहि आहि लखन कै करा। सकति बान मोहा है परा।
नहि सो राम हनिवँत बड़ि दूरी। को लेइ आव संजीवन मूरी।

विनय करहिं जेजे गढ़पती । का जीउ कीन्ह कौन मति मती ।
करहु सो पीर काह पुनि खांगा । समुद सुमेरु आव तुम्ह माँगा ।
धावन तहाँ पठावहु, देहिं लाख दस रोक ।
होइ सो वेलि जेहि वारी, आनहिं सबै वरोक ॥२॥
जब भा चेत उठा बैरागा । बाउर जनो सोइ उठि जागा ।
आवत जग बालक जस रोआ । उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोआ' ।
हौं तो अहा अमर पुर जहां । इहां मरनपुर आएउं कहां ।
केइ उपकार मरन कर कीन्हा । सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा ।
सोवत रहा जहां सुख साखा । कसन तहां सोवत विधि राखा ।
अब जिउ उहां इहां तन सूना । कबलगि रहैं परान विहूना ।
जौं जिउ घटहि काल के हाथा । घट न नीक पै जीउ निसाथा ।
अहुठ हाथ तन सरवर, हिया कँवल तेहि माँह ।
नैनहिं जानहु नीयरे, कर पहुँचत औगाह ॥३॥
सबन्ह कहा मन समुझहु राजा । काल सेंति कै जूझ न छाजा ।
तासौं जूझ जात जो जीता । जानत कृष्ण तजा गोपीता ।
औ न नेह काहूँ सों कीजै । नाँव मिटै, काहे जिउ दीजै ।
पहिले सुख नेहहि जब जोरा । पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा ।
अहुठ हाथ तन जैस सुमेरू । पहुँचि न जाइ परा तस फेरू ।
ज्ञान दिष्टि सौं जाइ पहूँचा । पेम अदिस्ट गगन नें ऊंचा ।
धुवतें ऊंच पेम धुव ऊआ । सिर देइ पांव देइ सो छूआ ।
तुम राजा औ सुखिया, करहु राज सुख भोग ।
एहिरे पंथ सो पहुंचै, सहै जो दुःख वियोग ॥४॥
सुऐ कहा मन बूझहु राजा । करब पिरीत कठिन है काजा ।
तुम राजा जेइँ घर पोई । कँवल न भेंटउ, भेंटउ कोई ।
ज़ानहि भौंर जौ तेहि पथ लूटे । जीउ दीन्ह औ दिएहु न छूटे ।

कठिन आहि सिंघल कर राजू। पाइय नाहिं जूझ कर साजू।
ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती तपा संन्यासी।
भोग किये जौ पावत भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू।
तुम राजा चाहहु सुख पावा। भोगिहि जोग करत नहिं भावा।
साधन्ह सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प।
सो पै जानै बापुरा, करै जो सीस कलप्प ॥५॥
का भा जोग कथनि के कथे। निकसै घिउ न बिना दधि मथे।
जौ लहि आप हेराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई।
पेम पहार कठिन विधि गढा। सो पै चढै जो सिर सौं चढ़ा।
पंथ सूरि कै उठा अंकूरू। चोर चढै की चढ़ मंसूरू।
तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरे घरहिं माँझ दसपंथा।
काम क्रोध तिस्ना मद माया। पाँचौ चोर न छाँडहिं काया।
नवौ सेंध तिन्हकै दिठियारा। घर-मूसहिं निसि की उजियारा।
अबहू जागु अजाना, होत आव निसि भोर।
तब किछु हाथ न लागिहि, मूसि जाहि जब चोर ॥६॥
सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार, पेम चित लागा।
नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूंगा। जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा।
हीयकै जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अंधियारा बूझा।
उलटि दीठि माया सौं रूठी। पलटि न फिरी जानिकै झूठी।
जौ पै नाहीं अहथिर दसा। जग उजार का कीजिय बसा।
गुरू विरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला।
अब करि फनिग भृंग कै करा। भौंर होहुँ जेहि कारन जरा।
फूल फूल फिरि पूछौं, जौ पहुचौं ओहि केत।
तन नेवछावरि कै मिलौं, ज्यों मधुकर जिउ देत ॥७॥
बंधु मीत बहुतै समुझावा। मान न राजा कोउ भुलावा।

उपजी पेमपीर जेहि आई। पर वोधत होइ अधिक सो आई।
अमृत वात कहत विष जाना। पेम क वचन मीठ कै माना।
जो ओहि विषै मारि कै खाई। पूंछेहु तेहि सन पेम मिठाई।
पूंछहु वात भरथरिहि जाई। अमृत राज तजा विष खाई।
औ महेस वड़ सिद्ध कहावा। उनहूँ विषै कंठ पै लावा।
होत आव रवि किरिन विकासा। हनुवँत होइ को देइ सुआसा।
तुम सब सिद्धि मनावहु; होइ गनेस सिधि लेव।
चेला को न चलावै, तुलै गुरू जेहि भेव ॥८॥

(पार्वती-महेश खंड)

ततखन पहुंचे आइ महेसू। वाहन वैल, कुस्टिकर भेसू।
काथरि कया हड़ावरि बांधे। मुंडमाल औ हत्या कांधे।
सेस नाग जाके कंठमाला। तनु भभूति हस्ती कर छाला।
पहुँची रुद्र कँवल कै गटा। ससि माथे औ सुरसरि जटा।
चँवर घंट औ डँवरू हाथा। गौरा पारवती धन साथा।
औ हनुवंत वीर सँग आवा। धरे भेस वाँदर जस छावा।
अव तेहि कहेन्हि न लावहु आगी। तेहि कै सपथ जरहु जेहि लागी।
की तप करै न पारेहु, की रे नसाएहु जोग?
जियत जीउ कस काढ़हु, कहहु सो मोहिं वियोग ॥१॥

कहेसि मोहि वातन्ह विलमावा। हत्या केरि न डर तोहि आवा।
जरै देहु दुःख जरौं अपारा। निस्तर पाइ जाउं एक वारा।
जस भरथरी लागि पिंगला। मोकंह पदमावति सिंघला।
मैं पुनि तजा राज औ भोगू। सुनि सो नाँव लीन्ह तप जोगू।
एहि मढ़ सेएउं आइ निरासा। गइ सो पूजि मन पूजि न आसा।

मैं यह जिउ डाढ़े पर दाधा। आधा निकसि रहा घट आधा।
जो अधजर सों विलँब न लावा। करत विलंब बहुत दुख पावा।
एतना बोल कहत मुख, उठी विरह कै आगि।
जौं महेस न बुझावत, जाति सकल जग लागि ॥२॥
पारवती मन उपजा चाऊ। देखौं कुंवर केर सतभाऊ।
ओहि एहि बीच कि पेमहि पूजा। तन मन एक कि मारग दूजा।
भइ सुरूप जानहुं अपछरा। विहँसि कुँवरकर आँचर धरा।
सुनहु कुँवर मो सौं एक बाता। जस मोहि रंग न औरहि राता।
औ विधि रूप दीन्ह है तोकाँ। उठा सो सबद जाइ सिव लोका।
तब हौं तोपहँ इन्द्र पठाई। गइ पदमिनि, तैं अछरी पाई।
अब तजु जरन मरन तप जोगू। मोसौं मानु जनम भरि भोगू।
हौं अछरी कविलास कै, जेहि सर पूज न कोइ।
मोहि तजि सँवरि जो ओहि मरसि, कौन लाभ तेहि होइ ॥३॥
भलेहि अंग अछरी तोर राता। मोहि दुसरे सौं भाव न बाता।
मोहि ओहि सँवरि मुए तस लाहा। नैन जो देखसि पूछसि काहा।
अबहिं ताहि जिउ देइ न पावा। तोहि असि अछरी ठाढि मनावा।
जौं जिउ देइहौं ओहि कै आसा। न जनौं काह होइ कविलासा।
हौं कविलास काह लै करऊँ। सोइ कविलास लागि जेहि मरऊं।
ओहि के बार जीउ नहिं वारौं। सिर उतारि नेवछावरि सारौं।
ताकरि चाह कहै जो आई। दोउ जगत तेहि देउ बड़ाई।
ओहि न मोरि किछु आसा, हौं ओहि आस कोऊँ।
तेहि निरास पीतम कहं, जिउ न देउं का देउं ॥४॥
गौरइ हंसि महेस सौं कहा। निहचै एहि विरहानल दहा।
निहचै यह ओहि कारन तपा। परिमल पेम न आछै छपा।
निहचै पेमपीर यह जागा। कसे कसौटी कंचन लागा।

बदन पियर जल डभकहिं नैना। परगट दुवौ पेम कै नैना।
यह एहि जनम लागि ओहि सोझा। चहै न औरहि ओही रीझा।
महादेव देवन्ह के पिता। तुम्हरी सरन राम रन जिता।
एहू कहँ तस मया करेहू। पुरवहु आस कि हत्या लेहू।

हत्या दुइ के चढाए, काँधे बहु अपराध।
तीसर यह लेहु माथे। जो लेवै कै साध ॥५॥

सुनि कै महादेव कै भाखा। सिद्ध पुरुष राजै मन लाखा।
सिद्धहि अंग न बैठे माखी। सिद्ध पलक नहिं लावै आँखी।
सिद्धहि अंग होइ नहिं छाया। सिद्धहि होइ भूख नहि माया।
जेहि जग सिद्ध गोसाईं कीन्हा। परगट गुपुत रहै को चीन्हा।
बैल चढ़ा कुस्टी कर भेसू। गिरिजापति सत आहि महेसू।
चीन्है सोइ रहै जो खोजा। जस बिक्रम औ राजा भोजा।
जो ओहि तंत सन्त सौं हेरा। गएउ हेराइ जो ओहि भा मेरा।

बिनु गुरु पंथ न पाइय, भूलै सो जो मेट।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सौं भेंट ॥६॥

ततखन रतनसेन गहबरा। रोउब छांडि पाँव लेइ परा।
मातै पितै जनम कित पाला। जो अस फांद पेम जिउ घाला?
धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ।
पदिक पदारथ करहुँत खोवा। टूटहिं रतन रतन तस रोवा।
गगन मेघ जस बरसै भला। पुहुमी पूरि सलिल बहि चला।
सायर टूट सिखर गा पाटा। सूझ न वार-पार कहुँ घाटा।
पौन पानि होइ-होइ सब गिरई। पेम के फंद कोइ जनि परई।

तस रोवै जस जिउ जरै, गिरै रकत औ माँसु।
रोवँ-रोवँ सब रोवहिं, सूत-सूत भरि आँसु ॥७॥

रोवत बूड़ि उठा संसारू। महादेव तव भएउ मयारू।
कहेन्हि तन रोव, बहुत तैं रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।
जो दुख सहै होइ सुख ओकां। दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोकां।
अब तें सिद्ध भएसि सिधि पाई। दरपन कया छूटि गइ काई।
कहौं बात अब हौं उपदेसी। लागु पंथ भूले परदेसी।
जौ लगि चोर सेंधि नहि देई। राजा केरि न मूसै पेई।
चढे न जाइ बार ओहि खूदी। परै त सेंधि सीस बल मूंदी।

कहौं सो तोहि सिंघल गढ़, है खँड सात चढाव।
फिरा न कोई जियत जिउ, सरग पंथ देइ पाव ॥८॥

गढ तस बांक जैसि तोरि काया। पुरुष देखु ओही के छाया।
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हें। जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहिं पांच कोट वारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढाव वाट सुठि वांका।
भेदै जाइ सोइ यह घाटी। जो लहि भेद चढै होइ चाँटी।
गढ़तर कुंड सुरंग तेहि मांहा। तहं वह पंथ कहौं तोहि पाहाँ।
चोर वैठ जस सेंधि सँवारी। जुआ पैंत जस लाव जुआरी।

जस मरजिया समुद धँस, हाथ आव तव सीप।
ढूंढि लई जो सरग दुआरी, चढै सो सिंघल दीप ॥९॥

दसवँ दुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।
जाइ सो तहां सांस मन बंधी। जस धंसि लीन्ह कान्ह कालिंदी।
तू मन नाथु मारि कै साँसा। जो पै मरहि अबहि करु नासा।
परगट लोक चार कहु बाता। गुपुत लाउ मन जासौं राता।
'हौं हौं' कहत सबै मति खोई। जौ तूं नाहि आहि सब कोई।
जियतहि जुरै मरै एक वारा। पुनि का मीचु, को मारै पारा।
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब औ आपु अकेला।

आपुहि मीच्र जियन पुनि, आपुहि तन मन सोइ ।
आपुहि आप करै जो चाहै, कहां सो दूसर कोइ ॥१०॥

(पद्मावती-नागमती-सती खंड)

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी । चली साथ पिउ के होइ जोरी ।
सूरुज छपा रैनि होइ गई । पूनो ससि सो अमावस भई ।
छोरे केस मोहित लर छूटी । जानहुँ रैनि नखत सब टूटी ।
सेदुंर परा जो सीस उघारा । आगि लागि चट जग अँधियारा ।
यही दिवस हौं चाहति नाहा । चलौ साथ पिउ देइ गलबाहां ।
सारस पंखि न जियै निनारे । हौं तुम बिनु का जिऔं पियारे ।
नेवछावरि कै तन छवरावौं । छार होउँ संग बहुरि न आवौं ।
दीपक प्रीति पतंग जेउं, जनम निवाह करेउँ ।
नेवछांवरि चहुँ पास होइ, कंठ लागि जिउ देउँ ॥१॥
नागमती पदमावति रानी । दुवौ महासत सती बखानी ।
दुवौ सवति चढि खाट बईठीं । औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी ।
बैठौ कोउ राज औ पाटा । अंत सबै बैठे पुनि खाटा ।
चंदन अगर काठ सर साजा । औ गति देई चले लेइ राजा ।
बाजन बाजहिं होइ अगूता । दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता ।
एक जो बाजा भएउ बियाहू । अब दूसरे होइ ओर निबाहूं ।
जियत जो जरै कंत के आसा । मुएं रहसि बैठे एक पासा ।
आजु सूर दिन अथवा । आजु रैनि ससि बूड़ ।
आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़ ॥२॥
सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा । सात बार फिरि भाँवरि लीन्हा ।
एक जो भाँवरि भई बियाही । अब दुसरे होइ गोहन जांही ।

जियत कंत तुम हम्ह गर लाई । मुण्ट कंठ नहिं छोर्डहिं साईं ।
औ जौ गाँठि कंत तुम जोरी । आदि अंत लहि जाइ न छोरी ।
यह जग काह जो अछहि न आथी । हम तुम नाह दुहूँ जग साथी ।
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई । पौढी दुऔ कंत गर लाई ।
लागी कंठ आगि देइ होरी । छार भईं जरि अंग न मोरी ।
राती पिउ के नेह गईं, सरग भएउ रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार ॥३॥
वै सह गवन भईं जब जाई । बादसाह गढ़ छेंका आई ।
तौ लगि सो अवसर होइ बीता । भए अलोप राम औ सीता ।
आइ साह जौ सुना अखारा । होइगा राति दिवस उजियारा ।
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी । दीन्ह उड़ाइ पिरथिमी झूठी ।
सगरिउ कटक उठाई माटी । पुल बाँधा जहँ जहँ गढ़घाटी ।
जौ लहि ऊपर छार न परै । तौ लहि यह तिस्ना नहिं मरै ।
भा धावा भइ जूझ असूझा । बादल आइ पँवरि पर जूझा ।
जौहर भईं सब इस्तिरी, पुरुष भए संग्राम ।
बादसाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम ॥४॥

(उपसंहार)

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा । कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ।
चौदह भुवन जो तर उपराहीं । ते सब मानुष के घट माहीं ।
तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ।
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ।
नागमती यह दुनिया धंधा । बाँचा सोइ न एहि चित बंधा ।

राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू।
प्रेम कथा एहि भांति विचारेहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।

तुरकी, अरवी, हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेमकर, सबै सराहैं ताहि ॥१॥

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुनासो पीर प्रेम कर पावा।
जोरी लाइ रकत कै लेई। गढि प्रीति नयनन्ह जल भेई।
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत मँह चीन्हा।
कहां सो रतनसेन अब राजा। कहां सुआ अस बुधि उपराजा।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू। कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू।
कहँ सुरूप पदमावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी।
धनि सोइ जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।

केइ न जगत जस बेंचा, केइन लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल ॥२॥

मुहमद बिरिध वैस जो भई। जोवन हुत सो अवस्था गई।
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनहिं देइ नीरू।
दसन गए कै पचा कपोला। वैन गए अनरुच देइ बोला।
बुधि जो गई देइ हिय बौराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई।
सरवन गए ऊँच जो सुना। स्याही गई सीस भा धुना।
भँवर गए केसहि देइ भूवा। जोवन गएउ जीति लेइ जूवा।
जौ लहि जीवन जोवन साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा।

बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै देहि रीस।
बूढी आऊ होउ तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ॥३॥

३—मलिक मंझन

'मधुमालति' की अवतक केवल खंडित और अधूरी प्रतियों के ही उपलब्ध होते आने के कारण उसके रचयिता मलिक मंझन वा शेख़ मंझन के संबंध में भी अधिकतर विवादग्रस्त बातें ही सुनी जाती रही हैं। अभीतक रामपुर रियासत के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर केवल दो एक प्रश्नों का ही निपटारा हो पाया है। अब इतना निश्चित हो जाता है कि मलिक मंझन ने उसकी रचना हिजरी सन् ९५२ में की थी, उस समय शाह सलीम का राज्यकाल था और इस कवि के पूज्य पीर शेख़ वदी, शेख़ मुहम्मद आदि कतिपय मुसलिम महात्मा थे जिनकी उस प्रति में केवल प्रशंसा मात्र ही पायी जाती है इस हस्तलिखित प्रति की भी अनेक पंक्तियों का शुद्ध रूप अभीतक प्रकट नहीं हो पाता और उनके कई स्थल वहुत कुछ अस्पष्ट से हैं। परन्तु उपर्युक्त नाम अथवा ग्रन्थ के रचना-काल के संवंध में अब कोई संदेह नहीं रह जाता। सलीम शाह शेरशाह का उत्तराधिकारी था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् सन् १५४५ ई० में राजगद्दी पर वैठा था और यही समय 'मधुमालती' का रचना काल भी ठहरता है। इस प्रति की ऐसे प्रसंगोंवाली कुछ पंक्तियां इस प्रकार दी जा सकती हैं—

साह सलेम जगत चातिहारी। जेहि यह बरनै मंद न मारी।

* * *

सत हरिचन्द दान वलि केरा। धरम युधिष्ठिर कलि अवतेरा।

* * *

शेख वदी जग सिद्ध पिआरा। ग्यांन समुन्द और दतयारा।

* * *

शेख मुहम्मद पीर अमारा। सात समंद नांव कंडहारा।

* * *

सन नवसै वावन जव भये। सनै वरख कुल परिहर गये।
तव हम जी उपजी अभिलाषा। कथा एक वांधौं वस भाषा।

अर्थात् उस समय 'शाहेवक़्त' सलीम शाह था जो कलियुग में सत्य के लिए राजा हरिश्चन्द्र, दान के लिए राजा वलि एवं धर्म के लिए राजा युधिष्ठिर का अवतार था। शेख़ बदी जगत्प्रसिद्ध थे। वे बड़े दयालु एवं ज्ञान के समुद्र थे और शेख़ मुहम्मद भी एक ऐसे वीर थे जिनका नाम तक सातों समुद्र के लिए कर्णधार का काम करता था, हिजरी सन् ९५२ अर्थात् ईस्वी सन् १५४५ = सं० १६०२ के आने पर मेरे हृदय में अभिलाषा जागी कि मैं एक ऐसी कहानी हिन्दी भाषा में लिपिबद्ध करूँ।

इसप्रकार इतनी बातें अब स्पष्ट हो जाती हैं कि 'मधुमालति' की रचना जायसी की 'पदुमावति' के पीछे हुई थी और उसका रचयिता कोई हिन्दू कवि न होकर एक इस्लामधर्म का अनुयायी था जिसने इसका निर्माण, प्रचलित सूफ़ी पद्धति के ही अनुसार किया था। पुस्तक के आरंभ में की गई ईश्वरवन्दना तथा हज़रत मुहम्मद एवं अबूबकर, उमर, उसमान और अली की स्तुतियों से इस बात को और भी पुष्टि मिल जाती है और इन सब के अन्त में की गई निर्गुण की चर्चा के कारण इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता।

फिर भी मलिक मंझन के जन्म स्थानादि का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता और न उनके पिता अथवा मित्रादि की ओर किया गया ऐसा कोई संकेत ही मिलता है जिसके आधार पर उनके सामाजिक जीवन पर भी कुछ प्रकाश पड़ सके। एक स्थल पर, उक्त प्रति में, इस रचना की दो पंक्तियां इस प्रकार दी गई मिलती हैं—

गढ़ अनूप बस नगर. . . ढी। कलजुग मँह लंका सों गाढी।
पुर ब दिसा जाकी वहराई। उतर पछिम लंकागढ़ खाई।

जिनसे केवल इतना ही जान पड़ता है कि, यदि यह कवि के जन्म वा निवासस्थान की ओर संकेत है तो, वह यातो, संभवतः अनूपगढ़ नाम का होगा अथवा उसके नाम के अंत में 'ढी' पड़ता होगा और खाइयों से घिरी सुदृढ़ लंका सा वह दुर्जेय भी रहा होगा।

इसमें संदेह नहीं कि 'मधुमालति' के कारण मंझन का नाम प्रेमगाथा के सूफ़ी कवियों में अमर हो गया है। "इस सरब सार जग पेम" का आदर्श लेकर चलनेवाले कवि ने अपनी रचना में ऐसी सहृदयता दिखलाई है जो अन्यत्र दुर्लभ है। यह अपनी पंक्तियों को बहुधा निजी अनुभूति के आधार पर लिखता हुआ जान पड़ता है। इसका हृदय इतना कोमल है कि यह अपनी प्रेमगाथा का दुःखांत होना नहीं देख सकता और ऐसा करने वाले अपने पूर्ववर्ती कवियों की निंदा भी कर देता है। अपनी रचना को वह अपने स्वभावानुसार सुखांत रूप में ही प्रस्तुत भी करता है। प्रसिद्ध है कि यह कवि बड़ा लोकप्रिय रहा। इसके पीछे इसी के कथानक को लेकर कई उर्दू कवियों ने भी अपनी मसनवियों की रचना की।

इस कवि की एक यह भी विशेषता है कि इसने प्रेमभाव को वस्तुतः प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर जागृत कराया है। यह बात फिर आगे चलकर जानकवि की 'मधुकर मालती' में ही दीख पड़ती है जिसका कथानक इससे भिन्न है। कुंतबन की 'मृगावति' में भी यह बात संभवतः रही होगी किंतु उसकी पूर्ण प्रति न मिलने के कारण इस विषय में अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सकता।

मधुमालति

(कुँअर का प्रेमोद्‌गार)

कहै कुँअर सुन पेम पिआरी। तोहि मोहि पुव्व प्रीत विधि सारी।
एहि जग जीवन मोह ते लाहा। मै जिवदे तोर दुख देसाहा।
मैं न आज तोर दुख दुखारी। तोहि दुख सों मोहि आदि चिन्हारी।
जेहि दिन सिरज्यो अंस विधि मोरा। तिहि दिन मोहि दरस्यो दुख तोरा।
वर कामिन तोहि प्रीत कै नीरू। माहि पानि भा सानि सरीरू।

पुर्व दिनन मो जानहि, तुम्हरो प्रीत कै नीर ।
मोहि मांटी मधु समान कै, तौ यह वोला सरीर ॥१॥
मैं सभ तजि संकरयो दुख तोरा। मोर जिय तोर तोर, जिय मोरा।
प्रान आदि घट होत न आवा। विधि तोर दुख मोहि पुनि दरसावा।
जौरे विलखि कहूँ मैं तोही। तोर दुख अधिक देव विधि मोही।
मैं यह दुःख करे वलिहारी। सहस सुख यह दुख परवारी।
कौन जीभ मैं कहूँ दुख वाता। दुख के रूप सुख निधि दाता।
एक निमिख दुख कीन नहिं, पूजी चारिहु जुगकर स्वाद।
कौन कौन सुख वरस्यो, तेहि दुख के परसाद ॥२॥
दुख मानुस कर आदिक वासा। ब्रह्म कँवल महँ दुख कर वासा।
जेहि दिन सृष्टि दुख समाना। तेहि दिन मैं जिव कै जिव जाना।
मोहि न आज उपज्यौ दुख तोरा। तोर दुख आदि संघाती मोरा।
अवले भवन दुःख के काँवर। दुइ जग दीनों सुख न्योछावर।
मैं अपान दै तोर दुख लिया। मरके अवसो अमृत पिया।
तोर दुख मधुमालती, सुखदायक संसार।
जेहि जिमाही तोर दुख उपजा, धन सो जग औतार ॥३॥
सुन्यों जाहि दिन सृष्टि उपाई। प्रीत परेवा दैव उड़ाई।
तीनो लोग ढूंढ़ कै आवा। आप जोग कहुँ ठांव न पावा।
तव फिर हम जीव पैसो आई। रह्यो लोभाय न किया उड़ाई।
तीन भुवन तन पूंछी वाता। कहुत केहि मानुस सों राता।
कहेसि दुख मानुस कै आसा। जहां दुख तहां मोर निवासा।
जेहि दुख होय जगभीतर, प्रीत होइ पुनि ताहि।
प्रीत वात का जानै वपुरा, जेहि सिर पर दुख नाहि ॥४॥
तैं मैं दोउ सदा संग वासी। औ संतत एक देह निवासी।
औ मैं त्वैं दुइ एक सरीरा। हुइ माटी सानी एक नीरा।

एक बार दुइ वहँ पनारी । एक दीप दुइ घर उजियारी ।
एक जीव दुइ कह संचारा । एक अगिन दुइ ठावें वारा ।
एकै हम दुइ कै औतारी । एक मंदिल दुइ किये दुवारी ।

एक जोति रूप पुनि एकै, एक प्रान एक देह ।
आपहि आप जोरि कोई चाहै, याकर कौन संदेह ॥५॥

तैं जो समुद लहर मैं तोरी । तैं रवि मैं जग किरन अँजोरी ।
मोहि आपुहि जनि जानु निनारा । मैं सरीर तुइ प्रान पिआरा ।
मोहि तोहि को पारी विकराई । एक जोति दुइ भान देखाई ।
सब कि ज्ञान चख देखहि हेरी । हम तुम्ह दुहुँ बरजी कवकेरी ।
अजहु मोहि नहि चीन्हेसि वारी । संवर देख चित आदि चिन्हारी ।

उरझा फांद जो प्रेमकर, अहा धन्य जीवकेर ।
होत आप महँ वरजी, से न नर धरी फेर ॥६॥

अब लहि विन जो जीवन सारा । आज देखि तोहि जीव सँवारा ।
देखतही पहीचानो तोही । यहै रूप जिन छन्दरचो मोही ।
एहै रूप बुत अहै छिपाना । यहै रूप अब सृष्टि समाना ।
यहै रूप सकती औ सीवउ । यहै रूप त्रिभुवन कह जीवउ ।
यहै रूप निरखत वहु भेसा । यहै रूप जग रंक नरेसा ।

यहै रूप त्रिभुवन जग परसै, यहि पताल आकास ।
सोई रूप परगट मैं, देखो कहा हवास ॥७॥

यहै रूप परगट यहु रूपा । यहै रूप जेहि भाव अनूपा ।
यहै रूप सभ नैनन्ह जोती । यहै रूप सभ सागर मोती ।
यहै रूप सभ फूलन्ह वासा । यहै रूप रस भँवर तरासा ।
यहै रूप ससिहै औ सूरा । यहै रूप जग पूरा पूरा ।
यहै रूप अन्त आदि निदाना । यहै रूप सभ सिष्टि समाना ।

यहँ रूप जलधर औ, तेहि भाव, अनेक देखाव।
आप गँवावै जोरे कोइ देखै, सो कुछ देखै पाव ।।८।।

(प्रेमा मधुमालति संवाद)

सुनत उतर मधुमालति केरा। कामिनि मुख पेमँ हँसि हेरा।
कहिसि सौंहि मैं बकतहु बाला। देखौ बोलतिहहु केहि गाला।
सीखति हहु अब नैन धुताई। मोहू सौंहे कपट चलाई।
चतुराईं मोसे बनि नहि आइहि। धाइहि सिंउ कहं पेट लुकाइहि।
दानिहि बात छिदरि पै छाची। संगि सना कि चोरी फावी।
आदि अंत लौं जानौ, मैं सभ बात तोहारि।
पेमकि छिपहि छिपायें, कहु दुख बात उघारि ।।१।।
कहहु बात मोहि सौं सतभावा। परिहरु बहन भीति कर धावा।
बदन पिअर औ पीनु सरीरा। प्रगट तोहि जोअ पेम की पीरा।
कहहु कहा लहि बात बनाये। बौरी पेम की छिपत छिपाये।
तूं मोहि सखी जीअ सौं प्यारी। कसन कहसि मोहि बात उघारी।
जौ नहि मोहि पतीजसि बारी। मांगि देउ सहिदान तुम्हारी।
मुंदरी मांगी कुँअरसों, तब कामिनि कर दीन्ह।
कहेसि कहा इअह छाड़हु, लेहु सो आपन चीन्ह ।।२।।
जबही दिस्टि परी सहिदानी। दुऔ नैन भरि आयो पानी।
चाहेसि बहुतै जतन छिपावै। बरबस चषुजन भरि भरि आवै।
म्रिगमद पेम रहै नहिं गोवा। उअह सुबासु इअह सुमिरि बिछोवा।
राखे पेमु न रहै छपानां। उमड़े नैन जगत सभ जानां।
पेम-रु प्रीतम करे बिछोवा। प्रगट भयेंउ निज रहे न गोवा।

पाछिली प्रीति सीवँरि जिअ में, उपजेउ विरह विकार।
थांभी न सकी लागकें पेमा, रोएसि गाल दुफार ॥३॥
तरकी पेमैं कंठ छोड़ाई। हरखी औ परबोधि बुझाई।
विरह विआकुल उतकंठ वानी। बात कहै चित भरम भुलानी।
पुछिसि कहँसो कुँवर वर नारी। सपन जो गयेउ मोह सौतुष भारी।
जागें सपन जौ देखैं हेरी। सेज मोरि नहि है वोहि केरी।
औ मुंदरी जो इअह करहि जो तोही। लेगा मोरि आपन देइ मोही।
अबलही विरह अगिन जीउ राखेउ, जानि कुटुंब कै कानि।
लाजेहि कहेउ न काहु सैं, गुपुत सहचौं जिअ हानि ॥४॥
कठिन वियोग अधिक जिय पीरा। निलज जीउ जो तजै न सरीरा।
कौन घरी सो आहि सभागी। मोहि वोहि पेम प्रीत जेहि लागी।
मैं न जरौं अकसरि एही आगी। कौन सो जग जेहि जीअ न लागी।
अब लहि गुपुत जरीउ एहि आगी। अब परगट भै दुहुँ दिसि लागी।
गुपुत जरौं कहा लहि चोरी। परगट जरौं दसौ दिस मोरी।
कौन सरूप न जानौ विधने, मोहि देखराएउ आनि।
एक निमिष जेहि देखे, सहौउ जनम जीअ हानि ॥५॥
गएउ विरह दौ मोहि तिअ लाई। दिन दिन सखी दगधि अधिकाई।
कत जनमत मोहि जननी पिआऊ। दूध ठाँव कस विष न पिआऊ।
नाभनार काटेन्हि जेहि वारो। कसन मोहि गिअ दीन्ही टारी।
अब वोहि विनु खिनु जीअन मोही। औ न सकौं जीउ परिहरि वोही।
कौन काल वस मोरे वारा। कैसे होइ मोर निस्तारा।
पेम विछोह नहि सहि सकौं, मरौं तो मरइ न जाइ।
दुहूं दुसर विचसैं परी, दगधि न हिये वुझाइ ॥६॥
तौ पाछिली सब बात जो अही। मधुमालति पेमासों कही।
सुनत सो कामिनी वचन सोहाए। पेमा नैन सजल भरि आए।

यहँ रूप जलधर औ, तेहि भाव, अनेक देखाव।
आप गँवावै जोरे कोइ देखै, सो कुछ देखै पाव ॥८॥

(प्रेमा मधुमालति संवाद)

सुनत उतर मधुमालति केरा। कामिनि मुख पेमैं हँसि हेरा।
कहिसि सौहि मैं वकतहु बाला। देखौ बोलतिहहु केहि गाला।
सीखवति हहु अब नैन धुताई। मोहू सौहे कपट चलाई।
चतुराई मोसे बनि नहि आइहि। धाइहि सिंउ कहं पेट लुकाइहि।
दानिहि वात छिदरि पै छाची। संगि सना कि चोरी फाबी।
आदि अंत लौं जानौ, मैं सभ बात तोहारि।
पेमकि छिपहि छिपायें, कहु दुख बात उघारि ॥१॥
कहहु वात मोहि सौं सतभावा। परिहरु वहन भीति कर धावा।
वदन पिअर औ पीनु सरीरा। प्रगट तोहि जीअ पेम की पीरा।
कहहु कहा लहि वात बनाये। बौरी पेम की छिपत छिपाये।
तूं मोहि सखी जीअ सौं प्यारी। कसन कहसि मोहि वात उघारी।
जौं नहि मोहि पतीजसि वारी। मांगि देउ सहिदान तुम्हारी।
मुंदरी मांगी कुँअरसों, तब कामिनि कर दीन्ह।
कहेसि कहा इअह छाड़हु, लेहु सो आपन चीन्ह ॥२॥
जबही दिस्टि परी सहिदानी। दुऔ नैन भरि आयो पानी।
चाहेसि वहुतै जतन छिपावै। वरवस चषुजन भरि भरि आवै।
म्रिगमद पेम रहै नाहि गोवा। उअह सुवासु इअह सुमिरि विछोवा।
राखे पेमु न रहै छपानां। उमड़े नैन जगत सभ जानां।
पेम-रु प्रीतम करे बिछोवा। प्रगट भयेउ निज रहे न गोवा।

कहेसि प्रीतम लगी दुप जाही । दसगुन सुप फल आगें ताही ।
एक लागि दुप सहसक सहिऔ । सहस दुप एक सुप निरवहिऔ ।
एक फूल कारन सुनु वारी । सींचहि सहस कांट फुलवारी ।
पेम समुंद मा बोरि कै, वाचहि ना सारिअ काउ ।
कै प्रीतम नगु हाथ चढ़ि, कै जीउ जाइ त जाउ ॥७॥

(अंत)

कथा जगत जेती कविआई । पुरुप मारि व्रज सती कराई ।
मैं छोहन्ह येइ मार न पारे । मरिहहि यही जो कलि औतारे ।
संतन्ह सेवा सुनेउ सतभाऊ । जो नरि जीअै सो मरै न काऊ ।
सकती काल निअरे नहि आवै । जो जग पेम संजीवनि पाव ।
पेम अमी अंजनी पाइ वासा । सेसकाल तेहि आवै न पासा ।
जेहि भा पेम अमीरस परचै, काल करै का पार ।
उदधि सहस काल कै, तरिअहि पेम अधार ॥१॥

अमर न कोउ काहू कै पारै । मरी जो जीअै तेहि जमु न मारै ।
पेम की आगी सही जिनि आँच । सो जग जनमी काल से वांच ।
पेम सखी जिनि आयु उधार । सतत मरै न कोहु कर मार ।
येक वेर जो मरि जीउ पावै । काल बहुरि तेहि नेर न आवै ।
जो जीअ आनहु काल भै, पेम सरन कर नेम ।
मिटै दुहु जग क भै, सब सार जग पेम ॥२॥

४—उसमान

उसमान कवि ने अपना परिचय देते समय ग़ाज़ीपुर नगर का प्रशंसात्मक वर्णन किया है और कहा है कि मैं भी वहीं का निवासी हूँ। मैं शेख हुसेन का पुत्र हूँ और पांच भाई हूँ। मेरे चार भाइयों के नाम शेख अज़ीज़, मानुल्लह, शेख फ़ैज़ुल्लह और शेख हसन हैं। इनमें से कवि ने शेख अज़ीज़ को शील का समुद्र बतलाया है। मानुल्लह को 'जोगी' की उपाधि दी है शेख फ़ैज़ुल्लह को पीर कहा है और शेख हसन को संगीतज्ञ ठहराकर यह भी कह डाला है कि हम पाँचों भाई 'पांच मियां' (पंडित) के रूपों में प्रसिद्ध थे। फिर भी उसमान ने अपने को 'अच्छर चारि' का पढ़ा लिखा हुआ ही कहा है और बतलाया है कि मुझे अमर यश पाने का मनोरथ रहा है। इसी बात को कवि ने 'चित्रावली' की रचना का प्रधान कारण भी माना है। उसका कहना है कि इस कहानी का आधार काल्पनिक है। किंतु मैंने इसे अपने 'कलेजे के रक्त को पानी में परिणित करके' रचा है और इसका प्रत्येक 'वचन' मोती के समान है।

कवि ने अपना सांप्रदायिक परिचय देते समय शाह निज़ाम की प्रशंसा की है और उनका स्थान नारनौल में बतलाया है। सूफ़ियों के इतिहास से पता चलता है कि शेख निज़ाम नाम के एक पीर चिश्तिया संप्रदाय के थे जिनका देहांत सं० १६४८ में हुआ था और जिनकी समाधि नारनौल में विद्यमान है। किंतु इतने से यह निश्चित रूप से नहीं जान पड़ता कि दोनों एक थे। उसमान की इस पंक्ति से कि 'कश्ती सकल जहान के, चश्ती साह निज़ाम' यह अवश्य सिद्ध होता है कि शाह निज़ाम भी चिश्ती ही थे। इस कवि ने इस संबंध में बाबाहाजी की भी प्रशंसा की है और उनका वर्णन इस प्रकार किया है जैसे यह उनका गुरुमुख शिष्य था। परन्तु इस बाबा हाजी का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता और न उनके निवासस्थान का ही पता चलता है।

अपने पीर के पहले ही कवि ने 'शाहेवक़्त' की प्रशंसा की है और उससे पता चल जाता है कि वह जहांगीर बादशाह था। इस कवि ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि वह एक बार जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुआ था और उससे अपनी 'ग़रीबी' प्रकट की थी, कवि की इस पंक्ति से

'सन सहस्र बाइस' जब अहे। तब हम बचन चारि एक कहें।

अर्थात् हि० सन् १०२२ (सं० १६७०) में मैंने दो चार बातें कह डालीं यह स्पष्ट हो जाता है कि वही 'चित्रावली' का रचना-काल है। बादशाह जहांगीर का राज्यकाल सं० १६६२ से सं० १६८४ तक रहा इस कारण उसमें संदेह नहीं रह जाता।

उसमान कवि ने 'चित्रावली' के कथानक को पूर्णतः कल्पना प्रसूत कहा है और यह बात इस रचना को पढ़ने से भी सिद्ध हो जाती है। फिर भी उसने अपने काव्यकौशल-द्वारा इसके पात्रों को ऐसे ढंग से चित्रित कर दिया है कि वे प्रायः सभी सजीव बन गए हैं। उनके दुःख में हमें उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने को जी चाहता है और उनके सुख में हम स्वयं भी प्रसन्न हो उठते हैं। इस कवि के द्वारा किया गया पात्रों का नामकरण भी अधिकतर सकारण जान पड़ता है। इसका 'सुजान' वास्तव में, बुद्धिमान, जान पड़ता है क्योंकि 'कौलावति' के साथ विवाह कर लेने पर भी, उसके साथ तब तक संपर्क नहीं रखता जब तक 'चित्रावली' नहीं मिल जाती। 'कौलावति' माया का वह अविद्याजनित रूप है जिसे बिना 'चित्रावलि' के विद्यामय रूप से अपनाये स्वीकार करना खतरनाक है। कवि ने सुजान के दृढ़ प्रेम, परेवा की स्वामिभक्ति और कौलावति के निःस्वार्थभाव का भी अच्छा चित्रण किया है।

कवि ने 'कुँवर ढूंढ़न खंड' के अन्तर्गत कई ऐसे देशों के भी नाम लिये हैं जिनका भौगोलिक परिचय उपलब्ध नहीं है। फिर भी उनमें से जितने

परिचित हैं उनकी सूची भी छोटी नहीं कही जा सकती। का० ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित 'चित्रावली' के संपादक स्व० बाबू जगमोहन वर्मा ने लिखा है "सबसे अचंभे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अंग्रेजों का नाम भी लिखा है और उनके देश और उनके आचार व्यवहार का वर्णन उसने दो चौपाइयों में किया है।" "उस समय अंग्रेजों को आये बहुत थोड़े दिन हुए थे। ईस्ट इण्डिया कंपनी सन् १६०० ई० में लंडन में बनी थी और १६१२ में सूरत में कंपनी ने अपना गुदाम बनवाया था। उसके एक वर्ष बाद १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है।" अतएव यह बात कवि की अच्छी जानकारी सूचित करती है। कवि ने चित्रावली के प्रति जो उपदेश उसकी माता द्वारा दिलवाये हैं वे संस्कृत-ग्रन्थों का स्मरण दिलाते हैं।

चित्रावलि

(परेवा खंड)

जबहि कुँअर जागा जनु सोई। गहिसि पाउं जोगी कर रोई।
सो तुम रूप बखाना देवा। भइ मनसा होइ उडउँ परेवा।
पुनि मन मँह अस होइ गियाना। जाउं कहां जो पंथ न जाना।
कहु सो केहि दिसि नगर अनूपा। जहां बसै वह नारि सुरूपा।
चलौं न करौं बिलंब एक घरी। निहफल जाइ घरी जो रही।
और न मोरे हिये विचारा। सीस मोर औ चरन तुम्हारा।
किंचित रैनि जाइ तहं ताई। चरन लाइ लै चलहु गोसाईं।
लोचन रहे चकोर होइ, हिया सकल उनमाद।
मकु ससि मुख चित्रावली, देखहौं तुअ परसाद ॥२०२॥
कहेसि कुँअर यह पंथ दुहेला। अस जनि जानु हँसी औ खेला।
अगम पहाड़ विषम गढ़ घाटी। पंखिन जाइ चढ़े नहि चाँटी।

खोह घराट जाइ नहिं लांघी । देखि पतार कांप नर जांघी ।
जाइ सोइ जो जिउ परतेजा । सार पांसुली लोह करेजा ।
तें अवही घर आपन बूझा । वार देखि पिछवार न सूझा ।
बैठे देइ सेंघ पिछवारे । मूसहि तसकर घर अँधियारे ।
तैं देवार रहा गहि कूँजी । रही न एकौ घर मँह पूँजी ।

निसिवासर सोवहि परा, जागेसि नहिं पल आव ।
घर न सँभारेसि आपना, का लेवे एहि साथ ॥२०३॥

एहि मगु केर करै जो साधा । चलत निचिंत न होइ पल आधा ।
चाहे चरन चुभै जो कांटा । चलै जाइ मारग नहिं छांटा ।
जौं पल एक कोऊ विलंवावै । साथ जाइ पुनि पंथ न पावै ।
एहि मगु माहि चारि पुनि देसा । जस-जस देस करै तस भेसा ।
चारिहुँ देस नगर है चारी । पंथ जाइ तेहि नगर मंझारी ।*
चारिहुँ नगर चारि पुनि कोटा । रहहि छिपे एक-एक के ओटा ।
जो कोउ जान न चार विचारा । बीचहिं मारि लेहिं बटमारा ।

चारि देस बिच पंथ सो, अब सुनु राजकुमार ।
बेगर-बेगर बरन गुन, जस कछु तहं बेवहार ॥२०४॥

प्रथम भोगपुर नग्र सोहाया । भोग विलास पाउ जहँ काया ।
दुइ दुआर कर कोट सँवारा । आवागमन यही दुइ बारा ।
पुनि दुनिहु दिसि अपुरुब हाटा । अनवन भांति पटन सभ पाटा ।
जो कछु चाहिय सबै विकाई । मिरतक देखि जीव बल पाई ।
कहूँ पंच अमरित जेवनारा । कहूँ सुगंधि करै महंकारा ।
कहूँ नाच कहुँ कथा अनूपा । कहुँ विरहुन अति ससिहर रूपा ।
इन्द्रपुरी जनु चहुँदिसि छाई । जो आवा सो रहै लुभाई ।

---

* पाठांतर—बीचहिं मारिलेहिं बटमारी ।

घर-घर माह न जानही, पंथहि वस कै लेंहि ।
माया-रूप देखाइकै, आगे चलै न देहि ॥२०५॥
बसै सोई ओहि नगर मंझारी । लेखा जानि होइ वैपारी ।
सूधें मारग आवै जाई । माटी लेखें विषें पराई ।
सो देखै जेहि दोष न पावा । सुनै सोई जो पंडित सुनावा ।
खाइ सोई जेहि ऊठै सांसा । फिरै न माथ लेइ सो वासा ।
मिलिकै पांच देहि जेउनारी । भुगतै ताहि सोई वैपारी ।
आपन अंस मांगि कै लेई । राज अंस बिन मांगै देई ।
पांच जूनिकै राज जोहारू । करत रहै जस जग वेवहारू ।
धरै छोंह चित नेहसों, रिस की ठौर रिसाइ ।
ऐसी चलन चलावहि, तेह भल पांच कहाइ ॥२०६॥
पंथी जेहि आगे हो जाना । सो व्यवहार कहौं करु काना ॥
अंध होइ तहं मूंदे नैना । बहिर होइ तस सुनै न बैना ॥
रसना मौन होइ नहिं भाषा । षटरस अमी न पावै चाषा ।
मूंदे नास सांस नहि आवै । काम क्रोध कै छार बहावै ।
दुष्ट के हनत न पाछे टरई । पगु जो उठाइ आगु मन धरई ।
विलंब न लावै मन जग मंदा । निसरै तोरि मीन जिमि फंदा ।
पंथी जो ओहि बार लहु जाई । आपु केवार उघारि कै जाई ।
चित रहसत यह ऊघरत, मिटै नैन अंधियार ।
जैसें बीते स्याम निसि, होइ विमल भिनुसार ॥२०७॥
आगे गोरखपुर भल देसू । निबहै सोइ जो गोरख वेसू ।
जहं तहं मढ़ी गुफा बहु अहही । जोगी जती सनासी रहही ।
चारि ओर जाप नित होई । चरचा आन करै नहि कोई ।
कोउ दोउ दिसि डोलै विकारा । कोउ बैठरह आसन मारा ।
काहू पंच अगिन तप सारा । कोऊ लटकइ रूखन डारा ।

कोऊ बैठि धूम तन डाढे । कोउ विपरीतहि होइ ढाढे ।
फल उठि खांहि पिवहि चलि पानी । जांचहि एक विधाता दानी ।
परम सवद गुरु देइ तहं, जेहि चेला सिर भाग ।
नित जेहि ड्योढ़ी लावई, रहै सो ड्योंढी लाग ॥२०८॥
ताहि देस विच आहि सो पंथा । चलै सोई जो पहिरै कंथा ।
तेल नाहि सिर जटा वरावै । रजक नासि जे वसन रंगावै ।
भसम देह पग पांवरि होई । एहि मग विकट चलै पै सोई ।
मेखलि सिंगी चक्र अधारी । जो गौरा रुद्राच्छ धँधारी ।
भल मंद बसै तहां इक भेसा । होइ विचार न रांक नरेसा ।
एही भेष सिद्ध बहु अहहीं । एही भेष वहुत ठग रहही ।
एही भेष सों बहु ठग आए । एही भेष सो बहुत ठगाए ।
जो भूले एहि भेष जग, खुले न तेहि हिय आछ ।
आगे चलै न तहँ रहैं । वह फिरि आवै पाछ ॥२०९॥
जो कोउ आगे चाहै चला । परगट देह भेष सो रला ।
पै अन्तर सब जानै धंधा । भेष पत्याइ सोइ जग अंधा ।
काया कंथा ध्यान अधारी । सींगी सबद जगत धंधारी ।
लोचन चक्र सुमिरनी सांसा । माया जारि भस्म कै नासा ।
हिय जो गोट मनसा पांवरी । प्रेम व्रार लै फिरि भाँवरी ।
परगट भेश्व तहां दइ डारै । आगे चलै सो पंवरि उघारे ।
रहहि नैन जो जोति बिनु, दीपक पहिल मिलानु ।
पुनि ससिहर सम दूसरे, होहि तीसरे भानु ॥२१०॥
आगे नेह नगर भल देसू । रांक होइ जहँ जाइ नरेसू ।
भूलै देषि देस की सोभा । जहंवहि देखत ही मन लोभा ।
जाइ तहंहि जहं कोउ लैजाई । ऊंच-खाल सभ एक लखाई ।
खाइ सोइ जो कोई खिआवै । विष अमिरित एक स्वाद जनावै ।

भल औ मन्द दोउ एक लेखा। दुइ न जान सब एक कै लेखा।
मारि गारि जिय सरवन कोहू। रहसन होइ किये कछु छोहू।
उतर न देइ जो कोउ किछु कहा। ऐसें रहै तहां सो रहा।
पंथ नाहिं पुनि पंथ सों, ताहि देस निज पंथ।
बिनु गुरु कोउ न जानई, औ पुनि पढ़ै गरंथ ॥२११॥
आगे पंथ चलै पै सोई। जाके संग कछु और न होई।
डारै कंथा चक्र धंधारी। करै मया जिय काया सारी।
ऐसन जिय जेहि लोभ न होई। रूप नगर मगु देखै सोई॥
हेरत तहां पंथ नहिं पावा। हेरन चहै जो आपु हेरावा।
पथिक तहां जो जाइ भुलाना। बिमल पंथ तेही पहिचाना।
आवहि रूपनगर के लोगा। परषत फिरहि कौन तेहि जोगा॥
जो तेहि जोग लर्षाहि जिय माही। आगे होइ नगर ले जाही।
रूप भेष उतहिक सजहि, औ सिषवहि सब भाव।
ऐसन जानहि तेहि कोउ, आन कहूँ तें आव ॥२१२॥
रूप नगर अति आह सोहावा। जेहि फिरि भाग सो देखै पावा।
अतिहि डेरावन अतिहि सो ऊंचा। कोटि माँह कोउ एक पहूँचा।
बहुतन कीन जोगि कर भेसा। चले छाड़ि घर-मन ओहि देसा।
तें सुखिया सुख कौतुक राता। का जानसि दुख पंथकि बाता।
भोजन बिनु मुख जाइ सुखाई। पानी बाजु कँवल कुम्हिलाई।
छीन बसन जेहि अँगन सोहाई। कंथा कैसे सकै उठाई।
सौरि मांहि जिन बनउर टोवा। कुस साथरी सो कैसे सोवा।
बसन अपूरब पहिरि तन, लावहु मोद सुवास।
अहहि नारि अछरी सरस, मानहु भोग बिलास ॥ २१३ ॥

(परेवा आगमन खंड)

सुनि चित्रावलि चितहिं हुलासी । कौंल-कली रवि उदै विगासी ।
रही मांस मन हिय गा दंदू । सुनि कुलीन भा अधिक अनंदू ।
कहेसि परेवा तूं सो कीन्हा । निरख तोर मोहिं जाइ न दीन्हा ।
तैं सो वचन अमिरित अस भाखा । निसरत प्रान फेरि घट राखा ।
मोहि लगि सकति होति जिय हानी । तैं हनु होइ सजीवन आनी ।
दानौ दुख रहा घट पूरी । तैं होइ भिम जमकातरि चूरी ।
का तोरे नेंवछावरि सारौं । लाज न एक जीउ नहिं वारौं ।

तन पंचाल थाल सम, होत जु पूरित प्रान ।
काढ़ि-काढ़ि तुअ चरन पर, वारि देत मन मान ॥२५९॥

पै यहि याहि जगत कर लेखा । अंध पताइ नैन जो देखा ।
सवन सोत सुनि अमिरित बानी । नैनन तपनि दूनि अधिकानी ।
जस सुनि पावा सवन संतोषा । नैन देखाउ जाइ जिय धोखा ।
मोर निकास न एको घरी । परी पाय जो पुनि सांकरी ।
वैठे रहहि वार रखवारा । माह मारु होइ झांकत बारा ।
धावत हटकै दारुन धाई । रहस कूर लइगै लरिकाई ।
कहा आहि दहु सरिवर बारी । सपनेहि नहिं देखौं चितसारी ।

एहि विधि जोवन जाउ जरि, सिसुता होइ अनूप ।
निसरत वरज न कोउ जेहि, देखौं जाइ सरूप ॥२६०॥

अब फिरि जाहु कुंअर जँह आही । कहेहु कहँ तिय दरस उमाही ।
जाहि लागि तुम्ह भएउ भिखारी । तुम्हतें अधिक सो विरह दुखारी ।
तुम्ह दुख रैनि अंधेरि विहाना । करु मन धीर भोर नियराना ।
होछां एक हिये हम पूजी । तुम्ह दरसन भय हौंछा दूजी ।

अलप दिनन्ह आवै सिउराती। नेवत जेवावब जंगम जाती।*
तुम्ह तेन्ह संग बोलावब तहां। बैठहु हेठ झरोखा जहां।
पाछे दहुँ कर करै गोसाईं। नैन मिलाव होइ तेहि ठांईं।
जोबन बेड़ी पग परी, गौनत महा अँदोह।
नाहित बरुनिन आइकै, झारति तुअ पग खेह ॥२६१॥
औ फुनि आपन दरपन दीन्हा। कहेसि दिहेह लै यह मोर चीन्हा।
कहेहु राखु लै हिरदै लाई। मांजत रहब परै नहिं काई।
राखेहु सजग देखि जनि काहू। छाड़ि परेवहि जनि पतियाहू।
नैन लाइ रहु दरपन मांही। पहिले देखु रूप परिछांही।
दरपन चषु ठहराइहि तोरा। बिगसि देखु तब दरसन मोरा।
एकहि बार जो सनमुख देखा। होइ तूर पर मूसक लेखा।
मोरे रूप आहि सो जोती। बारह भान किरन की गोती।
माँजत दरपन जीउ दै, नैनन धरब अकास।
जेहि पूजै देव जग, पूजै हम तुम्ह आस ॥२६२॥
दरपन लइ सो परेवा आवा। कुँअर आइ झरना ढिग पावा।
लोचन मूंदि माल कर जपा। चित्रावलि-चित्रावलि जपा।
कहेसि चेतु जोगी सिधि आई। लेहु सजग होइ गुरू पठाई।
अस लौलीन कुँअर होइ रहा। बचन परेवा मारुत बहा।
तब गहि भुजा कुँअर झकझोरा। उघरे नैन देखि मुख ओरा।
कहेसि कि जोगी बैठु सँभारी। सिद्ध कहत सुनु सकल उघारी।
मैं एक बात गुरू सों कही। औ जत बिरह-बिथा तोर अही।
रहस गुरू चित ऊपजा, सुनि जोगी कर भेस।
मया बोलिऔ बहु असिष, दीन्हो लै आदेस ॥२६३॥

कहेसि कि जो इहवां लहि आए। चिंता करहु न सिधि अब पाए।
आए नांघि समुंद पहारा। अब नैनन यह ठांव तुम्हारा।
जो दुख मोहिं लागि तुम पावा। सो दुख सब मोहिं ऊपर आवा।
जनि जानेसि मैं अकसर दुखी। तुमते दुखी दूज ससिमुखी।
जेते चुभे कांट पग तोरे। पुनि सालै सब हियरे मोरे।
औ छाला जत पायन परा। फूटि पानि मम नैननि ढरा।
औ जत पातल गड़ी अँकोरी। सुनु मम पुतरिन समुंह ददौरी।

आवत मारग और जत, सहा तेज रवि झार।
होइ बैसंदर मोर हिय, जारि कीन्ह सब छार ॥२६४॥

दरसन चाउ अधिक जिय माही। अबहिं उहां मोर आवन नाहीं।
भा दुर्जन जोबन हतियारा। जाते रहहिं संग रखवारा।
अय दहुँ कब आई सिउराती। पूजब सिंभु चढाउब पाती।
जहँ लहु जती सनासी अहही। जोगी जती खपर जे गहही।
मंदिर तर बैठाउब आनी। भरि-भरि देब खपर अनपानी।
तुमहूँ कह पुनि लेंब बोलाई। हेठ झरोखा ठाउ बिठाई।
ओही ठाँउ होइ नैन मिलावा। सिउ परसन होइ हींछ पुरावा।

ऊपर ग्रीषम तेज रवि, हेठ सो चेत गवाँउ।
दीन्ही आपनु मुकुर यह, जेहि महँ दरस मिलाउ ॥२६५॥

यह दरपन तुम्ह लेहु सँभारी। जेहि मँह देखहु दरस पियारी।
एही मुकुर सिद्धन करगहा। मनकी इच्छ इही मधि लहा।
चौदह भुवन रहहि एहि मांही। तिल समान कछु दूसर नाही।
नैन होइ गुरु अंजन आंजा। दरपन होइ नीक करि मांजा।
जहँ लगि धरती सरग पतारू। परै दिष्टि सब बांच न बारू।
अब नहिं लावहु चित बैरागा। मांजत रहब जो मैल न लागा।
औ पुनि मांग देहु जनि काहू। मोहि तजि जनि आनहिं पतियाहू।

तव लहु सहियै विरह-दुख, जब लगि आव सो वार ।
दुःख गए तव सुक्ख है, जानै सब संसार ।।२६६।।
सिउ-सिउ करत बार सो आवा । चित्रावलि जानहु जिउ पावा ।
भोरेहिं नेगिन्ह कहा हँकारी । वेगिहि करहु रसोई सारी ।
आजु आहि सिउ बार सुहावा । घर-घर दंपति सिंभु मनावा ।
हिंछा एक हमारी पूजी । औ हींछा मन आहि न दूजी ।
साजहु अनबन भांति रसोई । जहँ बहु घिउपक जलपक होई ।
जोगी नाउ जहां लहु पावहु । भरि खप्पर बैसाइ जेवावहु ।
होइ न काहु परोसन धोखा । मैं पुनि बैठब बैठि झरोखा ।
वेगि होहु बिलमाहु जनि, आजु सो उत्तिम वार ।
हीछां हरि परसाद हम, पुरवै मकु करतार ।।२६७।।
नेगिन्ह आनी वेगि रसोई । जेहि के खात प्रेमरस होई ।
सव मीठे परकार सलोने । भए न एकौ खटे अलोने ।
घीपक जलपक जैते गने । कटुवा बटुवाते सब बने ।
धौराहर तर ठाउँ सँवारा । जोगिन्ह जहां होइ जेवनारा ।
पाक रसोई सोटिया धाए । जोगी जती ढूंढ़ि ले आए ।
जोगी नांउ जहां लगि पावा । एक-एक कहँ जाइ बोलावा ।
आदर सौं ले आवहिं जोगी । जोगी सेवा करै सो भोगी ।
भोगी-जोगी सेवई, इहै सो भोग अचार ।
जोगी बाचहिं भोग सो, तबहीं पावैं सार ।।२६८।।
चित्रिनि तहां हँकारि परेवा । कहाँ सो जोगि करों जेहि सेवा ।
आइ बैठ सब बार बराती । दूलह कहां जाहि धनि राती ।
धनसो दिवस धन वार सोहावा । धनसो घरी जेहि होइ मिरावा ।
सुनिकै बात परेवा बोला । ए सुन्दरि वह रतन अमोला ।
कंचन वरन मलिन जरि गयऊ । विरह-अगिन जरि कुंदन भयऊ ।

आनि देखावौ रूप सुजाना । कसौ कसौटी दहुं कसमाना ।
अपने जान धोख नहिं लायेउं । बारह बान संपूरन पायेउं ।

वह पिउ रतन अमोल नग, तू धनि कुंदन हेम ।
जो विधि जोरी है लिखी, जरै सो जरिभा प्रेम ॥२६९॥

चला परेवा कहि यह बाता । आवा जँह जोगी रँगराता ।
कहेसि कुँअर दुख रैनि बिहानी । उठि चलु अब सुख घरी तुलानी ।
तोहि मया कै गुरू हँकारा । सिद्धि देत अब लाग न बारा ।
आजु दरस जेहि लागि बियोगी । आजु सिद्धि जेहि कारन जोगी ।
आजु सो औषध जेहि लगि पीरा । आजु प्रान फिर मिलिहि सरीरा ।
आजु सो भोजन जेहि लगि भूखा । आजु सो पान अधर जेहि सूखा ।
आजु सो कौल-भौंर जेहि रंगू । आजु दीप जेहि लागि पतंगू ।

आजु सेवाती घन बरिस, चातक हसि जेहि लागि ।
आजु उदधि जल ऊमड़ेउ, बुझै हिये की आगि ॥२७०॥

दरस नांउ सुनि कुंअर हुलासा । जनु पंकज रवि सूर प्रकासा ।
रहसा बदन पेम कर गहा । भा मजीठ केसर जो रहा ।
कहेसि लीन सो बासर आजू । दरसन मिलै होइ सिध काजू ।
दाहिन भयो भाग हम आई । भयो भोर दुख रैनि बिहाई ।
मोहिन करम केरि परतीता । दीरघ दुःख होइ लहु बीता ।
कहहि बहुरि मन मान न मोरा । जिउ देनिहार बचन है तोरा ।
तैं अब लहु जिउ घट मँहराखा । नाहित जात सुआ तजि साखा ।

कहेसि आजु है सोइ दिन, अंत होइ दुख तोर ।
सरग उए ससिहर किरन, पीयै पहुमि चकोर ॥२७१॥

५ जान कवि

'जान कवि,' कवि का मुख्य नाम नहीं, अपितु उसका केवल उपनाम मात्र है जिस कारण उसके सम्वन्ध में कुछ भ्रम उत्पन्न हो गया है। स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने इसे फतहपुर (जयपुर) के नवाव अलफ़ ख़ाँ का उपनाम समझा था तथा उसे बादशाह शाहजहाँ का 'वहुत ही कृपापात्र व सम्वन्धी' भी वतलाया था। कुछ अन्य लोगों ने उसे उक्त बादशाह का साला होना तक मान लिया था। परन्तु श्री अगरचंदजी नाहटा की खोजों द्वारा इधर पता चला है कि यह उपनाम उक्त नवाव अलफ़ ख़ाँ का न हो कर, वस्तुत:, उसके पुत्र न्यामत खाँ का है जिसने अपने पिता अलफ़ ख़ाँ की मृत्यु आदि के संबंध में भी चर्चा की है। न्यामत खाँ अलफ़ ख़ाँ के चार पुत्रों में संभवत: दूसरे थे और 'जान-कवि' के उपनाम से उन्होंने अपनी सर्व प्रथम रचना सं० १६६७ में की थी। पं० झाबरमल्ल शर्मा का अनुमान है कि प्रसिद्ध 'ताज' नवाव अलफ़ ख़ाँ के पितामह की सहोदरा भगिनी थी। किंतु इस विषय में अभी तक पूरी खोज नहीं हो सकी है। न्यामत खाँ आशु कवि थे और ये अपनी रचनाएँ कभी-कभी दो-तीन दिनों अथवा दो-ढ़ाई प्रहरों तक में पूरी कर डालते थे। इनकी इधर ७० ऐसी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें से २१ की गणना प्रेमाख्यानों के अंतर्गत की जा सकती है। ये रचनाएँ इस समय उत्तरप्रदेश की 'हिंदुस्तानी एकेडेमी' के प्रयागवाले संग्रहालय में सुरक्षित हैं जहाँ से, निकट भविष्य में, इनके प्रकाशित होने की भी संभावना है।

न्यामत ख़ाँ के पूर्व पुरुष चौहान राजपूतों से धर्मांतरित होकर मुसलमान वने थे और 'क़ायम खानी' भी कहलाते थे। न्यामत ख़ाँ को अपने पूर्व राजपूत-संस्कारों के लिए वड़ा गर्व रहा करता था जिसके वहुत से प्रमाण उनकी कई रचनाओं में भी पाये जाते हैं। अपनी रचना 'छीता'

की प्रारंभिक पंक्तियों में इन्होंने अपने गुरु का नाम शेख़ मुहम्मद बतलाया है और उन्हें हांसी का होना कहा है—

शेख मुहम्मद पीर हमारो । अलह पियारो जग उजियारो ॥
हांसी में उनको बिस्राम । ज्यारत किये सरै सभ काम ॥

उन शेख़ मुहम्मद को इन्होंने अन्यत्र "पीर शेख़ मुहम्मद हैं चिश्ती" और अपने को उनके संप्रदाय का सूफ़ी अनुयायी होना भी माना है। अपनी 'छीता' रचना आरम्भ करते समय इन्होंने "कीन्हीं साहि जहाँ के राज" भी कहा है जिससे ये उक्त बादशाह के समकालीन होते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपनी प्रायः सभी रचनाओं में उनका निर्माणकाल भी बतला दिया है। इनकी अंतिम रचना सं० १७२१ की है जिसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि इस कवि का जीवनकाल किसी समय, विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में समाप्त हुआ होगा इनके जन्म संवत् का भी कुछ अनुमान इनकी सर्वप्रथम रचना 'रसकोष' के निर्माण-काल अर्थात् उपर्युक्त सं० १६६७ के अनुसार किया जा सकता है और उसे कम से कम विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अथवा उसके कुछ पहले भी मान लिया जा सकता है।

जान कवि, इस प्रकार, बादशाह जहाँगीर के भी समसामयिक थे और 'कथा कनकावती' की रचना इन्होंने उसी के समय में की थी। ये उसके अंत में कहते हैं

सोलहसै पचहत्तरै, जहांगीर कै राज ।
तीन द्यौसमें जान कहि, यहु साज्यौ सब साज ॥

अर्थात् जहाँगीर के राज्यकाल के अंतर्गत जान कवि ने इस कथा को सं० १६७५ में, केवल तीन दिनों के ही भीतर, सजधज के साथ कह दिया।

'कामलता' की रचना इसके तीन साल पीछे सं० १६७८ में हुई जैसा कि उसके निम्नलिखित अंतिम दोहे से प्रकट होता है—

सोलह सै अठहंत्तर , कथाकथी कवि जान ।
षोरविषोरहु भूलि जिन, अनबन बाचहु बांन ।।

इसी प्रकार 'मधुकर मालती' का रचनाकाल कवि ने सं० १६९१ दिया है। ये उसमें उसकी रचना की तिथि एवं मास भी बतला देते हैं और कहते हैं कि मैंने उसका निर्माण, 'ज्ञान' एवं 'विवेक' के आधार पर किया। जैसे,

सोलह सै इक्यानुवौ, ही फागुन बदि येक ।
जानि कावि कीनी कथा, करिकै ग्यांन विवेक ।।

तिथि एवं मास की चर्चा इन्होंने 'छीता' के अंत में भी कर दी है, जैसे

सोरह सै जु तिरानुवै कथा कथी यहु जान ।
कातिग सुद छठ पूरन, छीताराम वषान ।।

अर्थात् 'छीता' की कथा सं० १६९३ की कार्तिक सुदि ६ को समाप्त हुई। 'रतनावति' में भी जान कवि ने 'साहि जहाँ है जगपति नाहि' कह कर बादशाह शाहजहाँ को 'शाहेवक्त' बतलाया है और अंत में कहा है—

सोरैसै ईकांनवे बरष । रतनावति बांधी मैं हरष ।
अगहन वदि सातै कैह जान । कथा संपूरन करी वषान ।
कथा पुरातन कीनी नई । नौ दिन में संपूरन भई ।
सन् सहंस चार चालीस । जानि वषानी बीसवा बीस ।

जिसका अभिप्राय है कि मैंने पुरानी कथा को नया रूप देकर अगहन बदि ७ सं० १६९१ (हि० सन् १०४४) को ९ दिनों में समाप्त किया।

जानकवि, कदाचित्, कवि पहले थे और सूफ़ी उसके अनंतर कहे जा सकते थे। इनकी जो प्रेमगाथाएँ सूफ़ी प्रेमगाथाओं के अंतर्गत किसी प्रकार आ सकती हैं। उनमें कुछ साधारण लक्षणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ये 'करता' की स्तुति करते हैं, मुहम्मद के गुन गाते हैं और कभी-कभी उनके चार साथियों की भी चर्चा कर देते हैं। इसी प्रकार ये शाहेवक्त का नामोल्लेख कर देते हैं और अपने पीर का परिचय भी दे देते हैं। अपने तथा अपनी रचना के विषय में कुछ कह देते हैं। इनमें से कोई भी बात नियमित रूप से सर्वत्र नहीं पायी जाती, न इनके किसी कथारूपक का कहीं कोई स्पष्टीकरण लक्षित होता है अथवा कोई सूफ़ी उपदेश आता है।

इस कवि की विशेषता इसकी रचनाओं की पंक्तियों की द्रुतगामिता में देखी जा सकती है। जान पड़ता है कि इसकी प्रत्येक पंक्ति तत्क्षण अपने आप बनती चली गई है; न तो इसे उसके लिए कुछ सोचना पड़ा है और न कोई परिश्रम ही करना पड़ता है। कथानक की रूपरेखा इस कवि के केवल संकेत मात्र से ही भरती चली जाती है और कुछ काल में एक प्रेमगाथा प्रस्तुत हो जाती है। फिर भी इसकी रचनाएँ कोरी तुकबंदियाँ नहीं कही जा सकतीं। उनके बीच-बीच में कुछ ऐसी सरस पंक्तियाँ आ जाती हैं जो किसी भी प्रौढ़ एवं सुन्दर काव्य का अंग बन सकती हैं और उनकी संख्या किसी प्रकार कम भी नहीं कही जा सकती।

इस कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा घटना विधान में भी कभी-कभी अपना काव्य-कौशल दिखलाया है और कोई न कोई नवीनता ला दी है। इसकी 'छीता' में आये हुए ऐतिहासिक सुल्तान अलाउद्दीन को हम 'पदुमावति' का परिचित अलाउद्दीन समझ कर आगे बढ़ते हैं। वह सब कुछ ठीक-ठीक अपने विदित स्वभाव के ही अनुकूल करता चला जाता है। किंतु, अंत में, जब वह अपनी अभीष्ट छीता को उसके प्रेमी के हवाले कर अपनी पुत्री की भाँति विदा करने लगता है तो हम उसकी

यह अपरिचित सहृदयता देख कर दंग रह जाते हैं। सराय में रात को एक ही साथ, भिन्न-भिन्न ओर से आकर सोने वाले, मधुकर एवं मालती का एक दूसरे को न पहचान पाना और उसी के विरह में सदा पीड़ित रहना तथा सुल्तान हारूं रशीद की उदारता द्वारा उनका एक विचित्र ढंग से ही मिला दिया जाना, इसी प्रकार घटनाओं की विचित्रता है।

कवि को अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं, शीघ्रता के कारण, उनकी कतिपय घटनाओं को संकुचित कर देना पड़ा है जिससे उनमें कुछ हल्कापन आ गया है और किसी-किसी स्थल पर कवि का हस्तलाघव उचित गंभीरता के अभाव का कारण बन गया दीख पड़ता है। प्रेमतत्व का निरूपण करने वाली रचना में ऐसी बातों का पाया जाना अवश्य खटक सकता है, किंतु मनमौजी जान कवि पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं है।

१—कनकावति

(अंत)

दोहा

जुरी जुराई फिरि जुरी, जोरी है जगदीस ।
परफुलित भई जान कही, जोरी बिस्वाबीस ॥१॥

चौपाई

नगन जटित कंचन को धाम। पौढाये दोऊ नर वाम।
बिथा पाछली सबै बखानी। जो बितई सो रसना आनी।
बिरधाई सो हौ तन पूर। ते पुर आये भेंटन मूर।
चित चटपटी सबै भजानी। बिधना बनी बनाई लानी।
काम कलोल करत निस गौनी। पीति रीति बाढी भई चौनी।

दोहा

अंग ही अंग उमंग है, संग भयो भरतार ।
अंग अनंग तरंग सों, भले रंग करडार ॥२॥

चौपाई

कनकावति बोली सुनि प्रानी । मैं यह गति पहिले ही जानी ।
जब सूती तव सपुनौ पायौ । प्यारो मिलिहै जिय हरिषायौ ।
नातर नाम सुनत ही व्याह । पाडत जीव परत उर दाह ।
परगट भयौ जु देषत सपुनौ । मनतन पोषन पायौ अपुनौ ।
यहै एक चिंता अति भारी । दहुवन पित भरै दुष भारी ।

दोहा

देइ जु राजा चलित मोहि, उलटि देउ सभ भेज ।
दहुवन पिता न छूटि है, हाथ न छुऊं दहेज ॥३॥

चौपाई

देन दहेज लग्यौ जब राव । रूसि रह्यौ करि कुंवर उपाव ।
कह्यौं राइ जौ हमसौ जोरहु । तौ वधुवा सगरे तुम छोरहु ।
जगपति वंधुवा सभै छिड़ाये । छूटि-छूटि अपने घर आये ।
अनगन दयो दहेज अपार । लष्यौ न जाइ लषै करतार ।
कनकावति लैकै घर आयौ । रौम-रौम आनन्द सौं छायौ ।

दोहा

तन मन में सुख उपजिहै, पायो प्रान अधार ।
दीप धरें ज्यों देहरी, घर आंगन उजियार ॥४॥

चौपाई

कुवंर दोइ मानस दौराये। भरथ सिंघ कौ भेद लषाये।
पवन गवन ते चंचल धाये। मिलिबे काज हुलासन आये।
सनमुष चढयौ कुंवर आनंदन। सुसर पिता कौ कीनौ वंदन।
लैंकै जौ तन पिता मिलाये। उठि जगराइ जुगल गर लाये।
जगपति यहु गीत सुनि भरमान्यो। महा संतोष चहुनि मिलि ठान्यो।

सोरठा

जगपति औ जगुराव, भरथराइ पुनि राजि सिंघ।
रह्यौ चहुनि अनुराव, जौ लहु जीये जगत में ॥५॥

चौपाई

सोई ह्वै ज करैं अविनासी। कहा ग्रव लाछिमी विसासी।
जोई जगपति बहुत रिसायौ। महा विरोध क्रोध करि धायौ।
सिंघ पुरी सगरी संघारी। भरथनेर भारथ किरो भारी।
गढ़ उड़ाइ कै डारचौ कंटट। भरथ सिंघ दीने दोट संकट।
फिर तिनहि जगपति धी दीनी। करि विवाह वाही कौ दीनी।

दोहा

पोषन कौ जिय धर वहै, पोषन लाग्यौ ताहि।
देषो धौं कवि जान कहि, कहा दई गति आहि ॥६॥

२—कामलता

(चित्र दर्शन)

चौपई

फिरि-फिरि चित्रहि चितवत नारी। पैमु आइ वियुरचौ तन भारी।
बावर भई सदन में डोलत। चाहत चित्र नैकु नाँहि बोलत।

नैंक नैंन करि मैंन जनावहु । दै दै लाई कहा जरावहु ।
जो तुम पग वारैं धर मेरैं । खेलहु हंसहु नैंकु ह्वै मेरैं ।
कामलता नित करत विलाप । जारत तनहि पैंमुकी ताप ।

दोहा

जोई जाकैं मन बसैं, वहु वाकैं मनमांहि ।
यौंन होत जौ जगत मैं, विरही वांचत नांहि ॥१॥

चौपई

सोचत नारि जांव किह ठांव । जानत नांहि जुयाही गांव ।
गुर बिन नाहि मिलत भौतारन । निकट आहि पैं विकट विहारन ।
प्रान अबूझ-अबूझ न बूझैं । नैंन असूझ-असूझ न सुझैं ।
चित्रकार टेरचौ गुर जान । जिन वहु करैं जमनिका हान ।
सावधान ह्वै गुर करि धाऊँ । जागै भाग लाभ जिन पाऊं ।

दोहा

चित्रकार चितमैं हरिष, कीनौ जाइ जुहार ।
पैंमु तई लज्या गई, निकट वुलायौ नार ॥२॥

चौपई

हरनी हरन राय मृग छौना । चितरचौ चित्र कियौ किधौं टोना ।
भूष प्यास पुनि नींद विसारी । हौं इन चित्र-चित्र करि डारी ।
चित्र न आहि-आहि चित चोर । चितवत नांहि अथाऊं बोर ।
चित्र्यौ चित्र पीव चितु मांहि । निकसि-निकसि आंसू ढरि जाही ।
इंह डर अंसुवा देत गिराई । जिन घट रहैं चित्र गिरि जाई ।

दोहा

घमड़ि उमड़ि छतियां जलद, नैन बूंदि वरषाहि ।
पानिप पिय छाई चषिन, अँसुआ कहां समाहिं ॥३॥

३—मधुकर मालति

(अंतिम मिलन)

चौपई

जंगी अलिपर बहुत दयाये । लै बगदाद माहि पहुँचाए ।
जिहि मसीत सोवत ही प्यारी । सूतौ आइ मधुप उहि वारी ।
मालति मधुकर जान्यो नाहीं । नाम लेति सुधि अलि मनमांहीं ।
संग रहे ना भयो मिलाप । औषद पाये गई न ताप ।
निकट रहत पै दरस न देत । तातें अंग जरावत हेत ।
सगरी निस रोवत ही गई । निकटि रहै पै सांति न भई ।
पाछिलि राति चली उठि नारी । गई पौरि पाई न उघारी ।
पकरि पौरिया लैकैं गये । पातसाह जू कै ढिग भये ।
पातसाह हांरून रसीद । वोर मालती कीजत दीद ।
पूछ्यो कोहै तू सति भाषि । वाति दुरी मन माहि न राषि ।
सकल भेद मालति तव कह्यौ । सुनि हांरून अचंभै रह्यौ ।
लग्यौ वहुरि लेन पतियार । छलके वचन कहे उच्चार ।
तोहि आपने सुत कौं व्याहूं । हौं तेरे जिय को सुष चाहूं ।
मालति ऐसैं वोली रोइ । मोते ऐसी वात न होइ ।
मधुकर बिनु सब राम दुहाई । हौं जानत हौं मेरे भाई ।
बोल्यौ पातसाह तव ऐसैं । हौं करिहौं तुम भाषति ऐसैं ।
तूं तौ मैं बेटी करि जानी । और वात जिन मन में आनी ।
यौं कहि घर में दई पठाइ । हितु कीनौ छत्रपति की भाइ ।
मधुकर चल्यौ भयौ जव भोर । आयौ जबै पौरि की वोर ।
पकरि पौरिया लैकैं गये । पातिसाहि जूकौं लैदये ।

पातसाहि पूछत है बात । कौन आहि तूं कितकौ जात ।
मधुकर अपनौ सब दुप गायौ । पातसाह मन सुप उपजायौ ।

दोहा

पातसाह जीय हॉस ही, इनकौं देउ मिलाइ ।
आनि दये करतार ही, फूल्यौ अंग न समाइ ॥१॥

पवंगम छंद

वहु मानस ना जामैं दया न पाइयैं ।
मानस सोइ जो पर-पीर पिराइयैं ।
वन में लागी है आगि सु दौरि वुझाइयैं ।
मरत रहै विन निंतसु पकरि मिलाइयैं ॥

* * *

चौपई

पातसाह लै गरें लगायौ । मधुकर मन वहु भांति मनायौ ।
कह्यौ अवध तोकौं पहुंचाऊं । मालति जिहि तिहि भाँति मिलाऊं ।
भोजन मधुकर आनि षुवायौ । पुनि मद देकैं वहुत छकायौ ।

* * *

पातसाह अति कीनौ प्यार । भांति-भांति कीनी ज्यौनार ।
छलकरि मालति सुरा पिवाई । वेसुधि कीनी वहुत छकाइ ।
लै मधुकर कै स्वाई संग । मिले दुहूं मीतन के अंग ।
पै दुहुवन कौ कछु सुधि नांहि । सूते रहे नींदही मांहि ।
देषै दुरयौ दुरयौ पतिसाह । कौतिक कौ मन मांहि उमाह ।
थोरी आइ रही जव रैन । लागी मालति सूरति मैन ।
संग सोवतौ मधुकर पायौ । सुपनौं जानि जीव भरमायौ ।
ऐसो प्रबल भयो तन हेत । कबहूँ चेतन कभूं अचेत ।

ताही में मधुकर हू जाग्यौ। देषि मालती कौं अनुराग्यौ।
प्रान मांहि निस प्रबलि जाहीं। प्यारी पायो सुपणै मांहि।
आज दई जिन करहुं विहांन। संग रहै ज्यों पोषन प्रान।
मालति कहा प्रगट तुम आये। कै सुपनें ही दरस दिषाये।
बोले तब उपज्यौ सुष गात। जान्यौ यह परगट है बात।
गरें लागि कै रोये दोइ। बहुरि हंसे आनंद में होइ।
पातिसाह कौं दई असीस। करता ज्यावहु कोट बरीस।
सगरी अपनी बात बषानी। ज्यों-ज्यों उन पर होइ बिहानी।
भार भयौ हित सौं पतिसाह। इन दहुवन कौ कीनौ व्याह।
किरपा बहुत दहुनि सौं कीनी। अमित लच्छिम इनकौं दीनी।
भलीभांति सौं मान वढाइ। अवध मांहि दीने पहुँचाइ।
माता के पग परसे जाइ। अति फूली तन में न समाइ।
निस वासुर में करहिं कलोल। गहरी पीति भई रंग चोल।
जौलौं जीये या जगमांहि। मधुकर मालति बिछुरै नांहि।

दोहा

सोरहसौ इक्यानुवौ, ही फागन वदि येक।
जानि कवि कीनी कथा, करिकै ग्यान विवेक।

४—रतनावति

(रतनावति-पदमिनि संवाद)

दोहा

तेरें दुष पदमावती, हमहि भयौ सुष नांहि।
तुमां निसदिन हिरदै रहै, ज्यों उसास उरमांहि ॥१२३॥

चौपाई

मेरे पिता दौरि बहु कीनो। तेरी सुरति न काहू दीनी ॥
चार लाष संग लैकै जोधा। तेरे लयेचढ्यो करि क्रोधा ॥
पै वा ठौर सक्यो ना जाइ। लाग्यौ पर वल अपछराराइ ॥
मेरं मनु यहु अचरज आवै। अैसो कौन जो तोहि छिड़ावै ॥
सांचो भषहु आपनी वात। वातै छूटै किह छल घात ॥
येक मनुष हौं आनि छिड़ाई। झूठ कहौं तो राम दुहाई ॥
रतन कह्यौ पति आवति नाहीं। इतौ न ह्वै वल मानस मांही ॥
पदमनि भाष्यौ करौं वषांन। जो तुम सुनिहौ देकै कान ॥
रतन सुनन लागी दै कान। पदमनि लागी करन वषान ॥
जिती विपति महि मोहन सही। रतनावति आगै सव कही ॥

दोहा

चित्र देषि चित लगि गयौ, चल्यौ छांड़ि घर बार।
विथा विहांनी कुंवर पर, कह्यौ सु सव व्यौहार ॥१२४॥

चौपाई

बोल वचन लै वासौ कीनौ। तौ उन मोहि दान ज्यौ दीनौ ॥
यहै करयौ तुहि आंनि मिलाऊ। जतन-जतन करि रतन दिषाऊ ॥
बहु मैं आनि विठायौ बाग। चलि ज्यो वाके जागहि भाग ॥
हा-हा वाको मरत उवारहु। जौन चलहु तौ हमकौं मारहु ॥
रतनावति वोली सुनि प्यारी। हौं तौ पर जैहौं बलिहारी ॥
काहि न वोलहि बचन विचार। मनुष अपछरा कैसो प्यार ॥
वाकौं दूरि षरे डिठ करिहौं। पै हौ वाकी डिसट न परिहौं ॥
पदमिनी कौं लैके संग धाई। देषि कुंवर मुरछा गति आई ॥

पदमिनि सेती पीत दुराई । रंचक वाकौं नाहिं लषाई ॥
प्रीति लगी पै प्रगट न करिहै । सतर सहंस अछिरा तें डरिहै ॥

दोहा

चाहत बसतर फारिहूँ, करिहौं आहि पुकार ।
विरहु-नाग नागिनि डसी, परी होइ विकरार ॥१२५॥

(रतनावति दर्शन)

चौपाई

पदमिन कहै कहा भयौ भेद । नैन सजल तन आवत स्वेद ॥
रतन कह्यौ मो सीस पिरात । प्रगट न करत पैम् की बात ॥
पदमनि कह्यौ सुनहु रतनावति । जौंलौ मेरी पौरि न पावति ॥
तौंलौं तेरी पौरि न जाइ । मेरी पौरि चढ़ी सिर आइ ॥
रतन कह्यौ सुनि पदमनि रानी । हौं तो मोहन हाथ बिकानी ॥
तें मुहि दीनौ कुंवर दिषाइ । किधौं दई तें चेटक लाइ ॥
पदमनि कौ भाये ये बैन । कह्यौ चलहु देषहु भरि नैन ॥
रतन कह्यौ अछिरा सब जागै । चल्यौ न जै देषत इन आगै ॥
अरध निसा अछिरा गई सोइ । पदमनि रतन चली ये दोइ ॥
आगै बैठो हौ यहि मोहन । लग्यौ दूरहू तें अति सोहन ॥

दोहा

चलहु निकट पदमनि कहै, रतन निकट नहिं जाइ ॥
देषत-देषत दूर तें, परी-परी मुरछाइ ॥१२६॥

चौपाई

पदमनि बांह गही तब जाइ । जागत नाहिन रही जगाइ ॥
पदमनि मद दीनौं हो प्यारी । रीझि छकी अरु मतिवारी ॥

पदमनि कह्यौ कुंवर सौं जाइ । कौतिगु येक निहारहु आइ ॥
आइ कुँवर जौ भलै निहारी । बिन देषै पहिचानी प्यारी ॥
चित्रमांहि देषी ही भांति । अैन मैन निरषी वहु क्रांति ॥
वानिक वरनी नाहिन जाति । जो कोउ वरनैं वहु भांति ॥
चंद ललाटी नैन कुरंग । दर दारचौ सुठि अवर सुरंग ॥
घूंघट यारे कारे वार । वदन कवल ऊपर अति मार ॥
गिय कपोत कुंच श्रीफल दोइ । कटि अति छीन न पावै कोइ ॥
कर पग देषि रह्यो भरमाइ । अंग-अंग छवि कहो न जाइ ॥

दोहा

जैसी कुमिलानी लता, परी भौंम पर नार ।
देषी कंचन रेषसी, आयौ कुंवर सँवार ॥१२७॥

५—छीता

(छीता-सौंदर्य)

चौपई

राजें हेरचौ अदभुत रूप । चेरो होइ रह्यो हे भूप ।
लघु द्योंसनमें दीरघ नैन । बोलत भोरे-भोरे बैन ।
काचो कंचन जैसो अंग । तपौ न अजहूं अगिन अनंग ।
नैन झरोषै मैन न आयौ । भोरी चितवन चित्त चुरायौ ।
अजहूँ मन ना जन्या मनोज । उरमैं जामै नाहि उरोज ।
बिनही काम कामनी सोहै । आयो काम कहा तब हो है ।
ललित लता लागै नहिं फूल । रहत तऊ मन मधुकर भूल ।
दै रंग स्याम न छोले दंत । बिना घटा दामिनि दमकंत ।

अजहूं कली फूल न भई । रूप वास तौऊ जग छई ।
सादे वसन सेत ही अंग । तामैं वदन कँवल मधि गंग ।

दोहा

सेत वसन उज्जल वदन, देषत बढ़त अनंद ।
कहत जान सोहत सुभग, मनहु चांदनी चंद ॥१॥

चौपई

जोवन बिना सुमन अति लागै । तरनी भयें कहांको भागै ।
विन् तरुनी हरनी सुत बैन । वरनी जात न कापै नैन ।
हावभाव नहि जानत भोरी । कभूं न चितवै चितवनि चोरी ।
जब कटाछ नैनन मैं वरिहै । मानस कहा देव वस करिहै ।
चंचल चरन फिरति है धावत । ज्यों चल मलयागिर है आवत ।
वैठी जोत देहुरैं मांहि । सोधी रही देवकौ नाहि ।
छीता देखी भरिभरि नैन । थकित भयो मुष सकत न वैन ।
सब जानहि मूरत निरजीत । वोल न सकै यहै उह रीत ।
यहु अचरज मेरैं ज्यो मांहि । जीव पाइ यहु वोल्यौ नांहिं ।
होत कभूं मूरत को जीय । तो फिर पूजत छीता तीय ।

दोहा

जो मूरत के नैन में, होती नैकहु जोत ।
तौ छीताकौं देपिकैं, फिर पूजारौ होत ॥२॥

६—क़ासिमशाह

क़ासिम शाह ने अपना परिचय बहुत कम दिया है। किंतु फिर भी उसमें उनके संबंध की मुख्य-मुख्य बातें आ जाती हैं। वे कहते हैं कि,

मुहम्मद शाह देहली सुलतानू ।
है लखनऊ अवध मंझियारा । दरियाबाद नगर उजियारा ॥
दरियाबाद मांझ मम ठाऊं । इमानुल्लाह् पिताकर नाऊं ॥
तहँवा मोहि जनम विधि दीन्हा । क़ासिम नाम जाति का हीना ॥

* * *

ग्यारह सै उनचास जो आजा । तव यह प्रेमकथा कवि साजा ॥

अर्थात् अवध सूवे के अंतर्गत लखनऊ के आसपास दरियाबाद नाम का जो प्रसिद्ध नगर है वह मेरा जन्मस्थान है। मेरे पिता का नाम इमानुल्लाह है और मेरा नाम क़ासिम है। मैं अपनी जाति से उच्च नहीं, अपितु निम्न श्रेणी का हूँ। मैंने इस प्रेमकथा को हिजरी सन् ११४९ में तैयार किया जिस समय दिल्ली में मुहम्मदशाह का राज्य था। इस प्रकार 'हंस जवाहर' का रचना-काल सं० १७९३ ठहरता है जो मुहम्मदशाह के राज्यकाल सं० १७७६-१८०५ के अंतर्गत पड़ जाता है। कवि के जीवन-काल के विषय में यह अनुमान किया जा सकता है कि वह विक्रम की १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर उसकी १९ वीं के पूर्वार्द्ध तक रहा होगा। कवि ने अपने पीर आदि का कोई विशेष परिचय नहीं दिया है जिसके आधार पर उसे सूफ़ी संप्रदाय के किसी प्रमुख वंश के अंतर्गत गिना जा सके। 'मिश्र-बंधु विनोद' के तृतीय भाग में क़ासिमशाह के हंस जवाहिर का रचना-काल 'लगभग सं० १९००' वतलाया गया है (पृ० १०३५) जो ठीक नहीं। निवासस्थान के विषय में लिखा है कि "आप दरियाबाद जिला वारावंकी के निवासी थे।"

क़ासिम शाह ने अपनी रचना 'हंस जवाहर' की घटनाओं के लिए जो क्षेत्र चुने हैं वे सभी अभारतीय हैं, किन्तु उनपर इनका कोई विशेष प्रभाव नहीं। पात्रों की रहनसहन और उनके रीतिरिवाज अधिकतर भारतीय ही जान पड़ते हैं। क्षेत्र परिवर्त्तन, कदाचित् कौतूहल वृद्धि के लिए

किया गया है। 'हंस जवाहर' में सूफ़ी प्रेमगाथा की प्रायः सभी विशेषताएँ अपने पुराने ढंग से ही लायी गई हैं। घटना क्रम की प्रगति, कथा में पूरी रोचकता लाने के लिए, बहुत कुछ धीमी कर दी गई जान पड़ती है। यह बात भी कवि के प्राचीनता-प्रेम को ही सूचित करती है। फिर भी यह प्रेमगाथा ऐसी सर्वप्रसिद्ध रचनाओं में अन्यतम समझी जाती है जिसका कारण इसकी कथा की विचित्रता हो सकती है।

हंस जवाहिर

(जवाहिर स्वप्न)

यक निस रोई बैठ अकेली। सोय गई चहुँ ओर सहेली।
तन मन रटन वहै धुनिलागी। सुलग-सुलग दगधै तन आगी।
सुमिरै कन्त नाँव हिय मांही। चितवै बार-बार कोउ नाही।
सुमिरि-सुमिरि मन करै अंदेसा। कत वह देस कंत जेहि देसा।
कँह करतार करै यक ठांउ। कंह मोर भाग जो टेकौं पांउ।
कँह अब शब्द जाय वहि पासा। कँह पिय मिलै जो पूजै आसा।
पन्थ अपार जान वह हारी। रोवत मुर्छि परी वह वारी।
मुर्छि परी धन विरहिनी, रहत नांव ले माय।
सो सपने धुनि शब्द भय, दृष्टि परी जो नाय ॥१॥
जो सुमिरत सोई मन मांहा। तूं वै खोज रहो पुनि तांहा।
सपने महँ जो देखै नारी। आयो कन्त मांझ सो नारी।
जैसे शब्दसें सुवा बखानौ। तैसें आ मग माजे समानौ।
कर मन मोह छकित बलिहारी। दीपक पर पतंग भयो वारी।
हरषित धाय पड़ी लै पांऊ। अंचर टेकि ठाढ़ि भय ठांऊ।

पूछे सकुच नांव औ देसू । तुम सुलतान कि अहौ नरेसू ।
तुम अपना सब भेद बतावहु । जरत अगिन सो बरत बुझावहु ।

कहो नांव तुम आपनो, कहो बसो ज्यहि देस ।
सुमिरन करौं सो हिये मंह, पठवों तहां संदेस ।।२।।

सुन धन नांव को हंस हमारा । जन्मभूमि से बलख बुखारा ।
अब में रहौं रूम के मांहा । खोजं मोहि सो पावै तांहा ।
तुम धन कहो सो भेद अपाना । केहि गुण करौ सो व्याकुल प्राना ।
कौन बिथा बीती हिय तोरे । जेहि ते खोज पड्यो तुम मोरे ।
नांव ठांव पूछौ सब गोरी । और कहो जौ इच्छा तोरी ।
जो तुम कहौ करौं मैं सोई । जेहितें मन आनंदित होई ।
केहि गुन अहौ जु हिये उदासा । मैं अब ठाढ अहौं तुअ पासा ।

कहो भेद धन आपनो, जो मन करौ उदास ।
सो तुम सुमिरौ हिये महं, अहौ ठाढ़ तुम पास ।।३।।

तब धन बिहसि कहा फिर भेंटा । आपन काज कीन्ह तोय भेंटा ।
नांव तुम्हार सुनत मन मोही । जीवतें अधिक मैं पायो तोही ।
इच्छा यही यहै मन मोरे । पांवर भई रहूँ सँग तोरे ।
चरनन घाल कन्त मोहि राखौ । औ दासी मुख अपने भाखौ ।
औ मम कन्त गहौ तुम बांहा । तब यह प्राण रहै घट माँहा ।
करौ न पगतें अब मोहि न्यारी । राखौ संग जनु दासी बारी ।
देखत रहौं नित्य मैं तोही । छुट यह शब्द और नहिं मोही ।।

दरश हेरान्यो तनमँह, प्रान अहै तुम हाथ ।
मारौ चहै बिछोह दै, चहौ लगावहु साथ ।।४।।

तुम धन जस चाहै ब मोही । तेहिते अधिक चहौं मैं तोही ।
जस तुम लागि रहौ मम आसा । तस मैं रहौं सदा तुम पासा ।
जस तुम ध्यान धरौ हिय मांही । तस मैं तोहि बिसारौं नांही ।

पै जो प्रीति चहौ धन मोरी। दूज पुरुष देख्यो जनि गोरी।
दूजे का जनि दरस दिखावो। दूजे केर सेज जनि जावो।
दूजे के जनि बैठो पासा। दूजे तैं जनि किहो हुलासा।
दूजे का जनि बात सुनायो। दूजे सँग जनि रंग रलायो।

दूजा बास न देखियो, आयस चहौ जो मोर।
तब आउब हम पास तुम, प्रीति गांठ पुनि जोर ॥५॥

सुन मम कन्त मैं दासी तोरी। छुट तो नेह और नहिं मोरी।
आप मैं खोय मिलौं तुम पांही। दूसर कौन लखै परछांही।
तुम ते नेह कन्त मम लागा। और मिल्यो जस कनक सोहागा।
मिलौं तुम्हें समुद्र होइ मोती। मोती प्राण कन्त तुम जोती।
तुम सरवर हम कँवल की गोई। तुम बिनु प्राण और कित होई।
तुम जग भानु चन्द्र होय वारी। तुमही जोति रहै उजियारी।
हौं धन फूल बास तुम पीऊ। तुम विन नारि होय विन जीऊ।

मन मोरा कंचन विमल, और मिला तुम मांह।
सो मोहि कसौ कसौटि पर, खेय लिह्यो अब नांह ॥६॥

सुनि यह वचन लीन हिय लाई। भय धुनि शब्द प्रशन यह पाई।
और कर टेक सेज बैठारी। तब लौं जाग पड़ी वह नारी।
पड़ी चौंक सेज उपराहीं। देखै कन्त सेज पर नांही।
खुलिगे नैन बिछुड़िगे पीऊ। लखि वह रूप लोप भा जीऊ।
उठि बैठी लागी पछिताई। मन मानिक कित गयो हेराई।
अबही कंत कंठ मोहि लाई। मैं पापिन रस पर्ग न पाई।
कहां सो होय सफल फिर राती। कँह पिउ मिलै फेरि वहि भांती।

कहँ गइ रैनि सोहावनी, भोर भयो केहि काज।
मैं पापिन कस जागहूं, बिछुड़ि गयो सरताज ॥७॥

पूछे सकुच नांव औ देसू । तुम सुलतान कि अहौ नरेसू ।
तुम अपना सब भेद बतावहु । जरत अगिन सो बरत बुझावहु ।
कहो नांव तुम आपनो, कहो बसो ज्यहि देस ।
सुमिरन करौं सो हिये मंह, पठवों तहां संदेस ॥२॥
सुन धन नांव को हंस हमारा । जन्मभूमि से बलख बुखारा ।
अब मैं रहौं रूम के मांहा । खोजै मोहि सो पावै तांहा ।
तुम धन कहो सो भेद अपाना । केहि गुण करौ सो व्याकुल प्राना ।
कौन बिथा बीती हिय तोरे । जेहि ते खोज पड्यो तुम मोरे ।
नांव ठांव पूछौ सब गोरी । और कहो जौ इच्छा तोरी ।
जो तुम कहौ करौं मैं सोई । जेहितें मन आनंदित होई ।
केहि गुन अहौ जु हिये उदासा । मैं अब ठाढ अहौं तुअ पासा ।
कहो भेद धन आपनो, जो मन करौ उदास ।
सो तुम सुमिरौ हिये महं, अहौ ठाढ़ तुम पास ॥३॥
तब धन बिहंसि कहा फिर भेंटा । आपन काज कीन्ह तोय भेंटा ।
नांव तुम्हार सुनत मन मोही । जीवतें अधिक मैं पायो तोही ।
इच्छा यही यहै मन मोरे । पांवर भई रहूँ सँग तोरे ।
चरनन घाल कन्त मोहि राखौ । औ दासी मुख अपने भाखौ ।
औ मम कन्त गहौ तुम बांहा । तब यह प्राण रहै घट माँहा ।
करौ न पगतें अब मोहि न्यारी । राखौ संग जनु दासी बारी ।
देखत रहौं नित्य मैं तोही । छुट यह शब्द और नहिं मोही ।
दरश हेरान्यो तनमँह, प्रान अहै तुम हाथ ।
मारौ चहै बिछोह दै, चहौ लगावहु साथ ॥४॥
तुम धन जस चाहै व मोही । तेहिते अधिक चहौं मैं तोहीं ।
जस तुम लागि रहौ मम आसा । तस मैं रहौं सदा तुम पासा ।
जस तुम ध्यान धरौ हिय मांही । तस मैं तोहि बिसारौ नांही ।

पै जो प्रीति चहौ धन मोरी। दूज पुरुष देख्यो जनि गोरी।
दूजे का जनि दरस दिखावो। दूजे केर सेज जनि जावो।
दूजे के जनि बैठो पासा। दूजे तँ जनि किहो हुलासा।
दूजे का जनि बात सुनायो। दूजे सँग जनि रंग रलायो।

दूजा वास न देखियो, आयस चहौ जो मोर।
तब आउब हम पास तुम, प्रीति गांठ पुनि जोर ॥५॥

सुन मम कन्त मैं दासी तोरी। छुट तो नेह और नहिं मोरी।
आप मैं खोय सिलौं तुम पांही। दूसर कौन लखै परछांही।
तुम ते नेह कन्त मम लागा। और मिल्यो जस कनक सोहागा।
मिलौं तुम्हें समुद्र होइ मोती। मोती प्राण कन्त तुम जोती।
तुम सरवर हम कँवल की गोई। तुम बिनु प्राण और कित होई।
तुम जग भानु चन्द्र होय वारी। तुमही जोति रहै उजियारी।
हौं धन फूल वास तुम पीऊ। तुम बिन नारि होय बिन जीऊ।

मन मोरा कंचन विमल, और मिला तुम मांह।
सो मोहि कसौ कसौटि पर, खेय लिह्यो अब नांह ॥६॥

सुनि यह वचन लीन हिय लाई। भय धुनि शब्द प्रशन यह पाई।
और कर टेक सेज बैठारी। तब लौं जाग पड़ी वह नारी।
पड़ी चौंक सेज उपराहीं। देखै कन्त सेज पर नांही।
खुलिगे नैन बिछुड़िगे पीऊ। लखि वह रूप लोप भा जीऊ।
उठि बैठी लागी पछिताई। मन मानिक कित गयो हेराई।
अबही कंत कंठ मोहि लाई। मैं पापिन रस पगै न पाई।
कहाँ सो होय सफल फिर राती। कँह पिउ मिलै फेरि वहि भांती।

कहँ गइ रैनि सोहावनी, भोर भयो केहि काज।
मैं पापिन कस जागहूं, बिछुड़ि गयो सरताज ॥७॥

भा अति सोच विरह धुनि केरी। निरखे रूप मिलै नहिं हेरी।
पिय आपुहि मां अहैं समाना। औहट भयो आग दै प्राना।
सपने कंठ कंत के लागी। बावर भई सोय जब जागी।
हेरै रूप दृष्टि नहिं आवै। तौ लौ लागि सो आप हेरावै।
सुमिर रूप मुख अमृत बोला। तोड़ै हार औ आपन चोला।
व्याकुल भई थरथर हो कांपी। लहर चढै कोउ लेय न चापी।
गिरी अचेत भई तन छारा। छिटकी मांग छिटकि गयो बारा।

डसै काल धन विरहिनी, पिय वियोग मत खोय।
धाय सखी सब चहुँ दिसा, मरम न चरचै कोय ॥८॥

(अंत)

क़ासिम कथा जो प्रेम बखानी। बूझै सोइ जो प्रेमी ज्ञानी।
कौन जवाहिर रूप सोहाई। कौन शब्द जो करत बड़ाई।
कौन हंस जो दरशन लोभा। कौन देस जोह ऊंचे सोभा।
कौन पंथ जो कठिन अपारा। कौन शब्द जो उतरै पारा।
कौन मीत जिन सँग जिव दीना। कौन सो दुर्जन अति छलकीना।
को ज्ञानी जो बरनि सुनावा। कौन पुरुष जो सुनि चित लावा।
कौन दुष्ट जेहि दरशन जूझा। कौन भेद जेहि शब्दहि बूझा।

जांच कथा पोथी जुपढ़, परसन तेहि जगदीस।
हमहि बोलि सुमिरै सोई, क़ासिम देइ असीस ॥

७—नूरमुहम्मद

कवि नूर मुहम्मद ने अपनी रचना 'इन्द्रावति' के अंतर्गत बतलाया है कि जिस नगर को उसने अपना निवासस्थान बनाया था वह 'सवरहद' था। सवरहद में वह अपने जन्म का होना नहीं कहता और न किसी अन्य स्थान को अपनी जन्मभूमि मानता हुआ ही जान पड़ता है। वह कहता है—

कवि अस्थान कीन्ह जेहि ठांऊ। सो वह ठांउ सवरहद नाऊ॥
पूरब दिस कइलास समाना। अहै नसीरुद्दी को थाना॥

इस सवरहद का पता इस समय जौनपुर जिले की शाहगंज तहसील के सवरहद गाँव के नाम से दिया जाता है। परंतु वहाँ पर इस बात के लिए भी किया गया कोई संकेत नहीं पाया जाता कि इस स्थान पर किसी नसीरुद्दीन का कोई ऊँचा सा गढ़ भी वर्त्तमान है वा नहीं। 'अनुराग बाँसुरी' के संपादक की 'बीती बात' से इतना और भी पता चलता है कि कवि नूर मुहम्मद अपने "अन्तिम दिनों में भादों (फूलपुर, आज़मगढ़) में रहने लगे थे॥ यहीं आपकी ससुराल थी। फ़ारसी में "कामयाब" नाम से कविता करते थे और लगभग सन् १७८० ई० तक विराजमान थे।" इस सन् का आधार संपादक ने, अपनी स्मृति के अनुसार, कवि के किसी फ़ारसी दीवान में लिखे हि० सन ११९३ (सन् १७७९ ई०) को माना है। कवि ने अपने उपनाम 'कामयाब' का उपयोग 'अनुराग बाँसुरी' के भी कई स्थलों पर किया है।

कवि नूरमुहम्मद ने अपनी 'इन्द्रावति' में यह भी कहा है कि

है कवि समय नई तरुनाई। छूट न अबही कवि लरिकाई॥
बिनवत कविजन कँह करजोरी। है थोरी बुधि पूंजिय मोरी॥
हौं में लरिकाई को चेला। कहौं न पोथी खेलहुँ खेला॥

सन् ग्यारह सौ रहेउ, सत्तावन उपनाह।
कहँ लगउ पोथी तबै, पाय तपीकर बांह॥

जिससे स्पष्ट है कि उसकी रचना के समय अर्थात् सन् ११५७ हि० (सं० १८०१) में वह केवल नवयुवक मात्र था और वह उसकी प्रारंभिक रचना भी कही जा सकती है। कवि की 'अनुराग बाँसुरी' से यह भी विदित होता है कि 'इन्द्रावति' के अनंतर उसने 'नलदमन' नाम की कहानी भी लिखी थी। जैसे,

आगे हिंदी समुद्र तिराना। भाखा इन्द्रावति जो जाना॥
फेर कहा नलदमन कहानी। कौन गनावै दूसरि बानी॥

और फिर,

यह इग्गारह सै अठहत्तर। फेर सुनाएउ बचन मनोहर॥

से जान पड़ता है कि 'अनुराग बाँसुरी' की रचना सन् ११७८ हि० अर्थात् सं० १८२१ में हुई थी। इस प्रकार यदि उसके फ़ारसी दीवान का रचनाकाल उपर्युक्त हि० सन् ११९३ ठीक है तो नूरमुहम्मद का कविता-काल कम से कम हि० सन् ११५७-११९३ (सं० १८०१-१८३६) ठहरता है। 'इन्द्रावति' में कवि ने

करौं मुहम्मद शाह बखानू। है सूरज दिल्ली सुलतानू॥
सब काहू पर दाया करई। धरमसहित सुलतानी करई॥

भी कहा है जिससे उसकी रचना के समय दिल्ली के सिंहासन पर मुहम्मद-शाह (रा० का० सं० १७७६-१८०५) का वर्त्तमान रहना सिद्ध होता है। किंतु 'अनुराग बाँसुरी' में 'शाहेवक़्त' का वर्णन नहीं आता।

नूरमुहम्मद फ़ारसी भाषा में 'कामयाब' के रूप में कविता किया करते थे और उस भाषा के माधुर्य के प्रशंसक भी थे। किंतु जान पड़ता है कि

हिंदी में काव्य-रचना करना भी वे कुछ कम महत्त्व की बात नहीं मानते थे। वे इस भाषा को अपने मत-प्रचार का साधन समझते थे। इसीलिए उन्होंने 'इन्द्रावति' की कहानी लिखी थी और उसके अपनी युवावस्था की की कृति होने पर भी, अपनी सफलता पर उन्हें इतना संतोप हुआ कि वे क्रमशः 'नलदमन' और 'अनुराग बाँसुरी' की रचना पर भी आरूढ़ हो गए। फिर भी उन्हें अपने भीतर सदा इस बात का भय बना रहा कि मेरे हिंदी भाषा के अपनाने से मुझे कोई काफिर न समझ ले और इसीलिए 'अनुराग बाँसुरी' में उन्हें यहाँ तक सफाई देनी पड़ गई कि,

जानत है वह सिरजन हारा। जो किछु है मन मरम हमारा ॥
हिंदू मग पर पांव न राखेउं। काजौं बहुतै हिंदी भाखेउं ॥
मन इसलाम मसलकै मांजेउं। दीन जेवरी करकस भाजेउं ॥

अर्थात् मेरे हृदय की बातें परमेश्वर जानता है। मैं ऐसा कर हिंदुओं के मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहा हूँ। मैंने अपने मन को 'मजहवे इसलाम' के मसलके पर मांज कर उज्वल और चमकदार बना लिया है और अपने उस दीन को रस्सी की भाँति भाँज कर अत्यन्त दृढ़ भी बना रखा है। मेरी धार्मिक मनोवृत्ति पर इस प्रकार हिंदी भाषा को उसके प्रचार का साधन मात्र बनाने से कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ सकता।

नूरमुहम्मद एक पक्के मुसलमान, कुशल कवि और योग्य पंडित जान पड़ते हैं। इन्हें पंडिताऊ ज्ञान जायसी से कम नहीं। पंडिताऊ भाषा के प्रयोग में ये उनसे कहीं अधिक सफल हैं। ये जान कवि की भाँति रचना-चातुर्य भी प्रकट किया करते हैं। यमक और अनुप्रास के बाहुल्य में ये दोनों लगभग समान हैं। इन्द्रावती की कथा अभी अधूरी ही प्रकाश में आ सकी है। उसका उत्तरार्द्ध संभवतः उससे भी अच्छा हो सकता है। इस कवि की प्रमुख विशेषता अपने पात्रों के नामकरण में पायी जाती है जिसके उदाहरण

'अनुराग बाँसुरी' के अंतर्गत पर्याप्त रूप में मिलते हैं। नूरमुहम्मद ने युवावस्था में लिखते समय भी विनयशीलता प्रकट की है।

१—इंद्रावति

(जिव कहानी खंड)

सुनहु मित्र अब जीव कहानी। जो लिखि गई सहचरी ज्ञानी।
जीउ एक राजा को नांऊ। सो सरीरपुर पायेउ ठांऊ।
रह वह जिउ के एक नरेसू। सो दीन्हा जिउ को वह देसू।
जब ठाकुरसों आयेसु पावा। तब जिउ राय सीरहि आवा।
साथी बहुत साथ जिउ लीन्हा। तब सरीरपुर आपन कीन्हा।
आइ पाट पर बैठा, भा सरीर को राय।
देखि नगर की सोभा, रहसा परमद पाय ॥१॥
आधी नगर सरीर मझारा। दुर्जन नाम निर्प बरियारा।
बूझ बुद्ध सों बोला राजा। एक नगर दुइ निर्प न छाजा।
यह राजा दुर्जन है दुसरा। माया मोह भरम में परा।
हमसों अंत करै सतुराई। कहां सत्रुसों होइ भलाई।
है यह कांट बाट मों मोही। पगमों धँसत न दाया बोई।
यह बनाव कैसे बनै, एक नगर दुइ राज।
राज करै नहिं पावऊं, दुर्जन करै अकाज ॥२॥
बुद्ध सयाना मंत्री रहा। राजा साथ बात अस कहा।
राज करहु होइ निडर भुवारा। दुर्जन सरवर करइ न पारा।
जबसों आएउ राजा पाऊ। बसा सरीर पूर हो राऊ।

बुद्ध बूझ जिउ कँह समुझावा। तब जिउ ध्यान राज पर लावा।
भा बरियार राज के कीएं। दुर्जन डरा बूझिकै हीएं।
छल संचर पगु राखा, आपन छाड़ेउ राज।
दुर्जन भा जिउ सेवक, कीन्हा सेवन राज ॥३॥
रहा जीउ एक पुत्र पियारा। रहा नाम मन रहा दुलारा।
मन चाहै रूपवंती नारी। पै न मिली कोउ प्रेम पियारी।
मन यह नित-नित व्याकुल रहई। जिउकों जिउता नित दुख सहई।
दुर्जन कँह दिन एक हँकराएउ। तासों मन की विथा सुनाएउ।
कहा करहु कछु एक उपाई। जासों मन जिउ को दुख जाई।
मनको यह प्रकीर्त है, देखि सरूप लोभाइ।
पैं न मिली रूपमंती,-जो तेहि स्वांत समाइ ॥४॥
वोला दुर्जन आज्ञा पाऊं। तो राजहि एक बात सुनाऊं।
आज्ञा दीन्हा दुर्जन बोला। मन द्वारा को ताला खोला।
कायापुर है दरसन राजा। राज गगन पर सूर विराजा।
तेहि राजा कर एक सुता है। रूप नाम सब रूप सरा है।
एक समय में रूपहि देखा। देखत रीझा जीउ सरेखा।
जो मन पावै रूप को, मानै बहुत अनन्द।
मन परभाकर जोगै, है वह रानी चन्द ॥५॥
दुर्जन रूपहि बहुत बखाना। सुनि राजा जिउ को मन माना।
वासो कहा जतन कस कीजे। रूप मेलाय पुत्र को दीजे।
कहेउ उपाय आन है कहां। दिष्ट बसीठहि भेजउ तहां।
गयेउ दिष्ट कायापुर देसू। कायापति सों कहेउ संदेसू।
सुनि दरसन मन चिन्ता कीन्हा। जिउ कंह बलि संजोगी चीन्हा।
कहा निर्प कन्या सों, जीउ संदेसा जाइ।
मन कारन तोहि चाहत, प्रीत सँदेस पठाइ ॥६॥

सुनिकै रूप पितहि समझावा। जिउ राजा एक मनुज पठावा।
जो राजा मन पुत्र पियारा। है हमार वह चाहन हारा।
काहें एक वसीठ पठायेउ। काहेन आपुहिं मन चलि आयेउ।
एक मनुज भेजे जो जांऊ। छोटा होइ जगत मों नांऊ।
दिष्ट साथ तव उतर पठावा। मैं कन्या कँह वहुत वुझावा।

कन्या कहा न मानत, है नहि दोष हमार।
मरम हमार जनाइहै, जाइ वसीठ तोहार ॥७॥

जाइ जीव सों दिष्ट सुनायेउ। जिउ के हिएं कोप चढ़ि आयेउ।
वूझै कहा वुद्धि चलि आवें। मोहि संग होइ कयापुर धावैं।
तव लग दुर्जन छल कै भला। जिउ कँह कायापुर लै चला।
कोपवंत वह जीउ सयाना। कायापूर जाइ नियराना।
रूप भेद पावै के कारन। भेजा वुद्ध वसीठ विचच्छन।

वूझ भेद लै आयेउ, राजहिं दीन्ह सुनाइ।
रूप रहै सै पट मों, तहां न पवन समाइ ॥८॥

कवहूं-कवहूं रूप पियारी। आवत जहँ निर्मल फुलवारी।
फुलवारी द्वारें दुइ वीरा। काढे खडग रहैं रनधीरा।
वुद्ध चतुर पहुँचा तव तांई। कहा विनय कर सेवक नांई।
आप रूप मद पन्थ न लीन्हा। मान सखी तेहि मानिनि कीन्हा।
मोहि अस मन लोचन सों सूझा। आवहि जांहि दिष्ट औ वूझा।

जिउ राजा कहँ फेरा, वुद्ध गेयानी नाहिं।
दिष्ट वूझ आवागमन, करहिं कयापुर मांहि ॥७॥

चेरी एक रूप के ठाऊं। रहिउ कटाछ रहेउ तेहि नांऊ।
कहा रूप सों भेजहु चेरी। लखि आवै मूरति मनकेरी।
वात पियारी के मन भायेउ। चेरी चितवन जाय पठायेउ।

चितवन मन-मन देखि लोभाना। रूपवन्ति सो जाइ बखाना।
प्रेम बढेउ तब मन के हियरें। भेजा निलज बुद्ध के नियरें।
बुद्ध पठायेउ लाजकों, मनहि बुझायेउ आय।
दिन दुइ मन धीरज धरा, पुनि अधीर भा राय ॥१०॥
दुर्जन आपन बन्धु पठावा। आइ मनहि अभिलाष बढ़ावा।
बिनु जिउ अज्ञा मन गा तहां। रहा देस कायापुर जहां।
साहस सेवक मनको रहा। मन के साथ बात अस कहा।
भेंट करें चितवन सों चाही। आपन बिथा सुनावहु ताही।
रूपगली निस कँह मन आयेउ। बूझै चितवन पास पठायेउ।
चितवन आयेउ मन नियर, मन की बातहि पाइ।
जहां रूप बैठी रही, तहां सुनायेउ जाइ ॥११॥
सुनि मन बात रूप अभिमानी। चितवन ऊपर अधिक रिसानी।
कहा मन पास फेर जिन जाहू। मनसों दूर करहु यह चाहू।
मन सेवक दरसन ढिग आई। मन के नेह की बात सुनाई।
दरसन बात सुता पर थापा। छाड़ेउ आप सो आपन आपा।
औ मन राय आस धैं हियरें। भेजा प्रीत रूप के नियरें।
प्रीत पियारी नारि, गई रूप के ठांउ।
आपन बास बतायेउ, निर्मलतापुर गांउ ॥१२॥
चेरी समा रही होइ नारी। भइल प्रीत रूप की प्यारी।
रही पियत धन सुरा सुवासा। मन तेहि गली गयेउ तजि त्रासा।
चितवन कँह तब प्रीत देखावा। चितवन रानी कहँ निरखावा।
देखि रूप मन रूप लोभानी। मन औ जिउ सो रीझी रानी।
मन सनेह दुख जेतो पावा। प्रीत रूप मन पाइ सुनावा।
सुना रूप मन को दुख, दाया संचर लीन्ह।
आयसु आवागमन को, चितवन कँह तब दीन्ह ॥१३॥

चितवन अपने सदन मँझारा। मन राजा कँह आनि उतारा।
देवस चारि पर रूपहि आना। मन कहँ भेटो मन-मन माना।
पिता कि लाज रही तेहि हियरें। आवँ दूरि-दूरि मन नियरें।
नार एक विभिचारिन रही। रूप की बात पिता सों कही।
पिता रूप मन साथ वियाहा। भा दोउ हाथ मिलन को लाहा।

मन की इच्छा पूजी, भये दोउ एक ठांउ।
रूप सहित मन आयेउ, पुनि सरीरपुर गांउ ॥१४॥

दिन-दिन अधिक बढ़ी परभूता। जनमे मन घर सुत औ सुता।
चिन्ता गँ परमद बउसाऊ। चन्द्र सुरज उतरे घर ठांउ।
जिउ रीझा दोउ बालक ऊपर। राजकाज सब छोड़िउ भूपर।
राज सँउपि दुर्जन कँह दीन्हा। आप प्रेम को संचर लीन्हा।
जिउ के सेवक निर्बल भए। दुर्जन दास वली होइ गए।

जिउ कँह बुद्ध बुझायेउ, जिउ न पुजायेउ आस।
बुद्ध बटाऊँ होइ गयेउ, साहस जोगी पास ॥१५॥

साहस तें जिउ मरम सुनावा। सुनिकै तपी उपाय बतावा।
प्रीतपूर हैं निर्मल ठांऊ। तहां महीपत ऋीपा नांऊ।
चलहु-चलहु ऋीपा के ओरा। होइ संवारै कारज तोरा।
गये दोऊ ऋीपा के पासा। जिनको राज बहोरै आसा।
ऋीपा आदर बहुतै कीन्हा। ठांउ परम मंदिर में दीन्हा।

ऋीपा के राजा रहा, सुखदाता तेहि नांउ।
जीउ मनोरथ कारने, गयेउ महीपति ठांउ ॥१६॥

सुखदाता ऋीपहिं वै दीन्हा। कह सोई जो चाहस कीन्हा।
विवि लोने बुद्धि संग लगावा। बुद्धि जिउ निकट तिन्है लै आवा।
दूनउ रूप भूलाना राजा। मन मों प्रेम दमामा बाजा।

वे दोऊ जिउ कँह लै. आए। झीपा नियरें भेंट कराए।
प्रेम प्रेममद प्याला दीन्हा। तव जिउ सुख दाता कँह चीन्हा।

होइ दयाल सुखदाता, चार देस तेहि दीन्ह।
जीऊ महाराजा भयेउ, पुनि सरीरपुर लीन्ह ॥१७॥

कहेउ संपूरन जीउ कहानी। बूझे जो मानुष है ज्ञानी।
जीउ कहानी खंड मंझारा। चित्र मनोरम कविन सँवारा।
जो चाहत तो करत गरन्था। पै कवि चला कुंअर के पन्था।
होइ-हैं जो कोउ भाषन हारा। सो करिहै तिनकर विस्तारा।
दीन्हेउ मैं एक भीत उठाई। कोउ कवि चित्र सँवारै भाई।

अरे मित्र मन बूझिकै, मन राजा को प्रेम।
झारु रूप के सीस पर, मधुर बचन को हेम ॥१८॥

२—अनुराग-बाँसुरी

(कवि का वक्तव्य)

यह बांसुरी सुनैं सो कोई। हिरदयस्रोत खुला जेहि होई।
निसरत नाद वारुनी साथा। सुनि सुधि चेत रहै केहि हाथा।
सुनतै जौं यह शब्द मनोहर। होत अचेत कृष्ण मुरलीधर।
यह मुहम्मदी जन की बोली। जामों कंद नवातें घोली।
बहुत देवता को चित हरैं। बहु मूरति औंधी होइ परैं।
बहुत देवहरा ढाहि गिरावै। संख नाद की रीति मिटावैं।

जहं इसलामी मुखस, निसरी बात।
तहां सकल सुख मंगल, कष्ट नसात ॥७॥

मन जिय मोर दीन के चेरे। वरसै आंसु गोर पर मेरे।
हूर फूल मोहि ऊपर झारैं। स्वर्ग वारुनी प्यालैं ढारैं।
जो कोउ विद्या लागि मनावै। अलख दयासों विद्या पावै।
दुखी मनावै सुख तेहि होई। मिथ्या वचन न बूझै कोई।
दिए मिठाई देउं मिठाई। अलखायसुतैं करौं सहाई।
हो करतार तोहारि दयासों। राखत हौं यह आस हियामों।

मेरे सकल गुनाहैं, डारहु धोइ।
जो किछु ऊपर भाखेउं, सोई होइ ॥८॥

एतो 'कामयाव' गुमराही। वढिकै वात न भाखा चाही।
केहि करनी पर आँसु वरीसै। धरती जौ गेहूँ सम पीसै।
कौन धरम कारज तैं कीन्हें। जेहि भरोस ऊपर चित दीन्हें।
दुइ वसीठ जव पूछै आवैं। सुधि न रहै तेहि त्रास दिखावैं।
वात न आवै चेत हेराई। करैं रसूल अल्लाह सहाई।
जौं किरपालु होइ करतारा। तौ तेहि गोर होइ उजियारा।

सुख दायक उम्मत के, आप रसूल।
वै फल और पयम्मर, दल औ फूल ॥९॥

जानत है वह सिरजनहारा। जो किछु है मन मरम हमारा।
हिंदू मग पर पांव न राखेउ। का जौं वहुतै हिंदी भाखेऊं।
मन इसलाम मसल कैमांजेउं। दीन जेंवरी करकस भांजेउ।
जहां रसूल अल्लाह पियारा। उम्मत को मुक्तावनहारा।
तहां दूसरो कैसे भावै। जच्छ असुर-सुर काज न आवैं।
जहं हसनैन वतूल सनेहा। तहां समाइ न दूसरि देहा।

जहां अली हैदर हैं, असदुल्लाह।
तहां कहां कोउ राछस, पावै राह ॥१०॥

यह बाँसुरी बजावन हारा । करै बहुत जनकँह मतवारा ।
कृष्ण बाँसुरी मोही गोपी । अब वह वंसी गई अलोपी ।
यह बाँसुरी सबद सुनि मोहै । पंडित सिद्ध जगतमों जो है ।
'कामयाम' बाँसुरी बजावै । माधव जीव सुनै नित आवै ।
वेधि वेध वंसी उर भएऊ । पावक लक्ष्य पाइ तचि गएऊ ।
औ बिछुरान बाँस को थाना । दूर परा सब लोग अपाना ।

यातैं कुक भरत हौं, बंसी प्रान
धनि संजोगी लोगैं, धनि सुखमान ॥११॥

अब एहि समै वचनके देसू । 'कामयाव' है महानरेसू ।
जो धरती आकाश सँवारा । सकल जगत को सिरजन हारा ।
वचन देस तेहि दीन्हा सोई । ताकी दया सुखी सब कोई ।
सो दुइमन अनुराग उपावै । दैवियोग, संयोग मिलावै ।
सो दुइ करन नैन दुइ दीन्हा । लोता दिष्टा हम कँह कीन्हा ।
होत अनुराग सुनै औ देखैं । चतुर होइ बाउर के लेखैं ।

सुनि बखान उपजत है, मन अनुराग ।
औ दरसन तें लागत, देह दबाग ॥१२॥

(साक्षात खंड)

बनो पंथ दोऊ मन माही । मान लीनता आवै नाहीं ।
आवै जाइ सुवा उपदेसी । दोऊ दिसिते बनो सँदेसी ।
दुइ मन मिले नीच जो होई । सो व्यवहार न जानै कोई ।
नित पलुहाइ नेह की बेली । फूलै लागि प्रीति कै कली ।
हित प्रगटावै ऊभी साँसू । वदन गोरता चख के आँसू ।
कैसें छुपै नेह दुख भारी । जहां आँसु ऐसो व्यभिचारी ।

नेह न छिपे छिपाएं, जिमि मृगसार
चहुँ दिसि लै पहुँचावै, वचन वयार ॥१॥

गोरे रंग भई वह गोरी । गौरी सी वह राजकिसोरी ।
पीतल भएउ वदन को सोना । गेंदा भएउ गुलाब सलोना ।
वह सुकुवाँर देह सुकुमारी । पाएउ भार नेह को भारी ।
केहरि लंकी, फिर तन छेहर । लांघि न सकै मंदिर की देहर ।
सूखन लगी न भूखन भावै । दूखन चीर पटीरहिं लावै ।
राते चीरहिं जानै पावक । पावक लगै लगाएं जावक ।

निसिमों नींद न आवै, ना दिन चैन ।
प्रेम दग्धतें रहै विकल, दिन रैन ॥२॥

वह वेली पलुहाइ न सींचें । छवि तें रहै भारके नीचें ।
नीकें लगें आँसु के मोती । नहि भावै माला ससिगोती ॥
लाल चुनै चिनगारी ऐसो । कहि न जात जो कष्ट सहै सो ॥
कोइल कुहुक सुनत अहकारी । घायल होइ गिरि परै पियारी ॥
पलुहे विरिछ दिस्टि जब आवै । प्यारी मन अभिलाष बढावै ।
किंसुक तन अंगार लगावै । केहरि नख अनुहार दीखावै ॥

पान फूलकी चाहत, रहै न ताहि ।
दग्ध होइ सुखदायक, पीरा जाहि ॥३॥

आपहुँ अंतःकरन सयाना । होइ अभिलाखी मन अकुलाना ।
परा कुंवर उदवेग मझारा । भा मन मनहुँ आगि पर पारा ॥
बौरा अंब देखि वह बौरा । भएउ वियाकुल तेहि दिसि दौरा ।
कहा अरे बौरे का बागू । तोहि न दहा मोर अनुरागू ? ॥
मैं अनुराग आगि सों जरा । तें निरदय फूला औ फरा ।
मेरो देह हरिद्रा रंगू । तेरो हरित रंग सब अंगू ॥

परदेसी के दुखतें, तोहि दुख नाहिं ।
अंत एक दिन तेरेउ, फल पियराहिं ॥४॥

देखेउ ब्रह्मद्रुम को फूला । गा तेहि प्रेम को भूला ।
बोला 'अरे पलास पियारे । मोहि सम लागे तोहि अँगारे ।
सुलगि-सुलगि यह आगि तिहारी । तेरी काया चाहै जारी ॥
आगि उपरहिं कोइला तरें । बाचैं कहां देह बिनु जरें ?।
अपने तुल्य तोहि मैं पाएउ । मैं तुव दिसि एहि कारन धाएउँ ।
कहुरे ब्रह्मद्रुम अनुरागी । केहि अनुराग आगि तोहि लागी ।

तेरो आगि देखिकै, आपन आगि ।
भूलि गएउं अब केहि दिसि, बांचौं भागि ॥५॥

गएउ तहां सो हित-रंग बोरा । सरब मंगला माडिहि ओरा ।
आपु अकेल गएउ तेहि तरें । दरसन कै आसा मन धरें ॥
सरब मंगला आप सभागी । नेहि फल आइ झरोखें लागि ।
कुंवर ओर तें तेहि नाहीं । ऐसी बहुत होनि होइ जाही ॥
दोऊ नयन दरस होइ गएऊ । कुंवर सनेही मुरछित भएऊ ।
भएउ दिस्टि के मद मतवारा । भा अचेत बिनु चेत सँभारा ॥

बीजु चमकि कै मारा, आपु छपान ।
कुंवरें कछू न सूझै, रहेउ न जान ॥६॥

आपु पियारी कंचन काया । सुनहिं झरोखें आनि लगाया ।
राजकुमारहिं चीन्हा सुवा । लखा परस्पर दरसन हुआ ॥
उपदेसी मृदु वचन निसारी । इहै चकोर तोरहै प्यारी ।
इहै प्रेमरस भा मतवारा । इहै तिहारो चाहन हारा ॥
इहै नवेला भएउ सनेही । तोहि नित राज तजाहै एहि ।
इहै जीव राजा को प्यारा । भा परदेसी तजि घर बारा । ।

अवही अहै नवलतन, अति सुकुमार ।
मनहुँ लीन्ह धरतीपर, ससि अवतार ।।७।।

नरगिस औ गुलावके फूलें । जेहि सुगंध पर सुमनस भूलें ।
थाल बीच धरि उर ससि गोती । जेहि लखि सुक्र जोति मन होती ।।
दासी हाथ कुंवरि अनुरागें । भेजा कूंवर सनेही आगें ।
कहा धरहु वैरागी हाथाँ । औ आयसु भाखौ तेहि साथाँ ।।
की यह स्वामी जोग न होई । अपनी सकति देत सब कोई ।
मोर अवस्था विदित करैगो । गलक फूलसों जान परैगो ।।

लै दासी पहुँचाएउ, प्रेमी पास ।
लीन्ह सनेही फूल, वास की आस ।।८।।

जाना भेजो प्रेम पियारी । होइ अभिलाखी आँसू ढारी ।
जाना पाएउं दरसन ताको । समुभि चित्र में मूल सुभाकों ।
चित्त नैन मों रहेउ समाई । ओहि सुन्दर की सुंदरताई ।
छाई रहै दुरी जनु छाया । तुम मनहरनी घट यों छाया ।
नैन चढ़े चित वरुनी चुभी । वरुनी चुभत गई गड़ि खुभी ।
खुभी चुभत वेसरि गड़ि गई । । वेसरि गडत गलक मनु लई ।

तन औ मन मां, औरै भाव ।
एक चाव मिलवे को है सै चाव ।।९।।

चित्त चढ़ेउ मुख झलक सलोना । वह कजरारे लोचन कोना ।
झलक चढ़त चित चढ़ि मुद रहेऊ । लज्या सहित तुरत छइ छएऊ ।
चढ़त डरपिएउ हिरदएँ माहीं । छाइ रही सुन्दर परिछाही ।
नरगिस तें वह कुँवर समाना । नैन प्रियतमा कै पहिचाना ।
औ गुलाब तें मरम समूझा । ओहि कपोल रानी कौ बूझा ।
समुझा आंसु बिन्दु मुकतासों । ढरै गुलाब उपर माया सों ।

चख नरगिस तें आंसू, गलक समान।
तेहि कपोल के ऊपर, ढरैं निदान ॥१०॥

यह सब समुझि सनेही रोवा। गुंजा रकत आंसु तें बोवा।
अस्थल ऊपर जाइ थिराना। आन रंग साथिन पहिचाना॥
दरसन रंग नैन मों पाया। कहेन कहाँ अति बेर लगाया।
नैन मिरग तेरो है प्रानू। देखा मनहुँ अहेरी बानू॥
है बैराग रूप अधिकाई। कतहूँ दरसन तुम पाई।
कंठी सों औरैं किछु सोभा। सोभा मनु मुख के रंग लोभा॥

समाचार जो बीते, दरसनरंग।
कहा कुँवर अनुरागी, साथिन संग ॥११॥

उहां पाइ दरसन वह प्यारी। रही भुलाइ भई मतवारी।
नैन सुमाइ रहे मनमाहीं। वरुनी पलक-पलक गड़ि जाहीं॥
वह वैरागी रूप नवेला। रहा समाइ जीव भा चेला।
चित्र बीच कंठी चढ़ि गएऊ। कंठमाल फांसी सम भएऊ॥
ओहि वैराग तिलक जब सँवरा। मोर भँवर भूला जिय भँवरा।
आपुहि हेरैं पावैं नाही। झलकैं प्रीतम घट परिछाहीं॥

ध्यान बीच वह मूरति, रही समाइ।
सब मूरति आपाको, गएउ हेराइ ॥१२॥

नैन-नैन मिलि औरै भएऊ। वह तिरछी चितवन हरि गएऊ।
औरैं भएउ वदन को रंगू। प्रियतम दरसन आगेउ संगू॥
चित चंचल अंचल न संभारैं। लागि झरोखैं पंथ निहारैं॥
रही जहां लगि मरमी अली। कोऊ फूली कोऊ कली॥
कहें बरन है और तिहारो। दिस्टि परा कहुँ प्रेम पियारो।
दरसन भाव रंग मुख सोहै। रंग देन हारो तोहि सो है।

और भयो है लोचन, दरसन पाइ।
दरसन को अभिलाख, हिएं लखि जाइ ॥१३॥

कहा जाइ मैं लगी झरोखें। दरसन भएउ परस्पर धोखें।
दिस्टि परेउ वैरागी मूरति। चित्त हरेउ अनुरागी सूरति।
सुवा कहा वह कुँवर सनेही है वैराग भेस मों एही।
सुन्दर दरसन चित्त समाना। भएउ सुखी तुम रंग पहिचाना।
आपुहि हेरत हौं घटमाहीं। तेहि पावत हौं, आपुहि नाहीं।
आपु हेराइ गई मैं कैसे। जलके वीच वतासा जैसे॥

जीव होइ रहा चंचल, हिरदयनाथ।
गएउ हिरद अनुरागी, ताके साथ ॥१४॥

सखिन कहा दरसन तुम पाया। छाइ रही दरसन घट छाया।
धनि भए नैन तिहारे वाला। जिन अंचवा दरसन को हाला॥
दरसन तें जो नैन जुड़ाने। सो दृग भले न जाहि वखाने।
सोई जगत वीच मन रंजन। वारि डारिए तिन पर खंजन॥
अव तिरछी चितवन तोहि छाजै। नैन वीच दरसन छविराजै।
अव प्रीतम विनु दूसर कोई। जौं न समाइ नैन भल सोई॥

दरसन रंगी लोचन, कहां छिपाहिं।
छाजै मान करै जौ, औ इतराहिं ॥१५॥

८—शेख़ निसार

शेख़ निसार ने आतम-परिचय देते समय अपनी रचना 'यूसुफ़ जुलेखा' की प्रारंभिक पंक्तियों में कहा है कि,

शेखपूर अति गाँव सुहावा। शेख निसार जनम तहँ पावा।
शेख हबीबुल्लाह सोहाए। शेखपुर जिन्ह आय बसाए।
पातसाह अकबर सुलताना। तेहि के राजकर जगत बखाना।
अवध देस सूबा होइ आए। बीस बरस लहि रहे सोहाए।
तेहि के शेख मुहम्मद वारा। रूपवंत भू पर अवतारा।
तासुत गुलाम मुहम्मद नाऊं। सो हम पिता सो ताकर गाऊं।

* * *

वंस जलालुद्दीन के, शेख हबीबुल्लाह।
जेहिक मसनवी जगत महँ, अगम निगम अवगाह।

* * *

अँबिली बिरिछ न जाइ बखाना। द्वारे पर जस तँबुआ ताना।

अर्थात् प्रसिद्ध ग्रंथ 'मसनवी' के रचयिता मौलाना जलालुद्दीन रूम के वंशज शेख़ हबीबुल्लाह ने, बादशाह अकबर के समय में, दिल्ली की ओर से आकर अवध में शेख़पूर नामक नगर बसाया था जहाँ पर कवि शेख़ गुलाम निसार का जन्म हुआ था। शेख हबीबुल्लाह वहाँ पर बीस वर्षों तक रहे थे और उनके लड़के का नाम शेख़ मुहम्मद था। शेख़ मुहम्मद के लड़के शेख़ गुलाम मुहम्मद थे जो शेख़ निसार के पिता थे और जिनके द्वार पर एक इमली का सुन्दर वृक्ष तंबू की भाँति विस्तृत खड़ा था। परन्तु ये इससे अधिक परिचय इस विषय में उस रचना के अंतर्गत देते हुए नहीं जान पड़ते।

श्री सत्यजीवन वर्मा ने, किसी डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर के आधार पर, उक्त शेखपूर को रायबरेली जिले का शेखपुरा कस्बा मान लिया है जो उस जिले की महारजगंज तहसील के बडरावाँ परगने में पड़ता है और इस बात को वे वहाँ के शेख़ों की बड़ी बस्ती से भी प्रमाणित करते हैं। किंतु श्री गोपालचन्द्र जी (जुडिशल सर्विस) ने अपनी इधर की खोजों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि शेखपूर वस्तुतः फ़ैज़ाबाद के जिले में है। उसकी

स्थिति उस जिले की किसी तहसील के मंगलसी नामक परगने में है और उसका नाम इस समय 'शेख़पुर जाफ़र' हो गया है। वह एक छोटा सा गांव है जो फैजाबाद-लखनऊ रोड पर, फैजाबाद से १० वें मील के दक्षिण और ई० आई० आर० के सोहावल स्टेशन के निकट, स्थित है। वह अयोध्या तथा बाराबंकी जिले के रुदौली स्थान के बीचोंबीच पड़ता है और कदाचित् इसीलिए कवि निसार ने 'मेहर निगार' में कहा भी है कि,

अवध रुदौली के मझठांवा। सेखपूर अति सुंदर गांवा।

शेख़ निसार को शेख़पुर जाफर के लोग जानते भी हैं और एक इमली का पुराना वृक्ष भी उस गाँव में उन घरों के ही निकट वर्त्तमान है जिनके निवासी उन्हें अपना पूर्वज बतलाया करते हैं। 'निसार' वस्तुतः कवि का एक उपनाम मात्र था और उनका वास्तविक नाम ग़ुलाम अशरफ़ था। उनके तीन भाइयों के नाम ग़ुलाम सादिक़, ग़ुलाम रसूल और ग़ुलाम ग़ौस थे।

शेख़ निसार ने अपनी उपर्युक्त रचना के प्रारंभ-काल में वर्त्तमान दिल्ली के सुल्तान की भी चर्चा की है और वे लिखते हैं,

आलम शाह हिन्द सुलताना। तेहि के राज यह कथा बखाना।
देहली राज करे ऊ नीता। उमरावन तेहँ कीन्ह अनीता।
कादिर खान सो अधम रुहेला। सो अपराध कीन्ह बड़ पेला।
पातसाह कहँ आँधर कीन्हा। सुत औ नारि सबहिं दुख दीन्हा।
कीन्ह अपत तैमूर घराना। राज प्रताप अधम नहिं जाना।

* * *

चहुँ दिस अंधधुंध सब छावा। अवध देस कहँ दइब बचावा।
येहिमा खान आस फुद्दौला। जासु सहाय रहै नित मौला।
हिन्दू सचिव वह बली नरेसा। तेहि के धरम सुखी सब देसा।
तेहि की राजनीति जग छाई। लवा सचान न सकै संताई।

अर्थात् उस समय सुल्तान शाहआलम का राज्यकाल था जो स्वयं नीतिज्ञ था। किंतु उसके उमरा अनीति किया करते थे। कादिर खाँ नाम के रुहेले ने बादशाह की आँखें फोड़ उसे अंधा बना डाला और उसकी बेगमों एवं शाहजादों को भी कष्ट पहुँचाया। उस अधम के इस क्रूर कृत्य के कारण तैमूर के प्रसिद्ध घराने की प्रतिष्ठा जाती रही और चारों ओर अंधाधुंध मच गया। फिर भी उस समय अवध का सूबा ऐसे अत्याचारों से बचा हुआ था। क्योंकि यहाँ पर नवाब आसफ़ुद्दौला का शासन था। उसका हिंदू सचिव भी धर्मशील था। उसकी सारी प्रजा सुखपूर्वक रहा करती थी। सुरक्षा इतनी थी कि बाज जैसा पक्षी भी एक लवा के ऊपर आक्रमण नहीं कर सकता था।

शेख़ निसार ने अपनी योग्यता एवं काव्य-कुशलता की ओर भी कुछ संकेत किया है। वे अपनी नम्रता प्रदर्शित करते हुए भी कह जाते हैं कि मैंने सात अनुपम ग्रंथों की रचना की है जो हिंदी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत एवं अरबी भाषाओं में लिखे गए हैं और कुछ के उन्होंने नाम भी दिये हैं। वे कहते हैं कि ये सभी प्रेमरसपूर्ण हैं और अपने समय में हंस जवाहिर की प्रेम-कहानी तथा इंशा अल्ला खाँ की भी रचनाएँ वर्त्तमान हैं। किंतु इस प्रकार की रचनाएँ अधिकतर काल्पनिक कथाओं से ही भरी पड़ी हैं। इसी कारण मैं यह सच्ची कहानी कहने जा रहा हूँ। मैं इसे भाषा में इसलिए कहने जा रहा हूँ कि आज तक किसी ने भी इस महत्वपूर्ण घटना का वर्णन इस प्रकार से नहीं किया है।

शेख निसार अपनी इस रचना के निर्माण का एक अन्य कारण भी देते हैं। वे कहते हैं कि जब से मेरा जन्म हुआ तब से मुझे दुःख ही दुःख मिलता गया, सुख मुझे कभी नहीं मिला। नव वर्ष की अवस्था में ही मेरे पिता का देहान्त हो गया और मेरे तीनों भाई भी एक-एक कर के परलोक सिधार गए जिस बात का स्मरण कर मेरी छाती आज भी विदीर्ण होती

जान पड़ती है। परन्तु इन सब से कठोर दुःख का सामना मुझे तब करना पड़ा जब मेरा बाईस वर्ष का लतीफ़ नामक प्रिय पुत्र मुझे छोड़ कर चल बसा। उस समय से मैं विक्षिप्त सा हो गया और मेरे लिए सारा संसार शून्यवत व नीरस प्रतीत होने लगा। मेरे रोम-रोम में विरह ने घर कर लिया। मुझे अपनी ऐसी ही दशा में यह सूझ पड़ा कि मैं यूसुफ़ एवं जुलेखा की प्रेम-कहानी क्यों न लिखूं और उसमें हज़रत याक़ूब के पुत्र विरह का भी वर्णन करूं। शेख निसार इस कथा को सभी प्रकार से अनुपम और अद्वितीय समझते हैं और इसकी रचना द्वारा अपने उद्धार की भी आशा रखते हैं। वे यह भी कहते हैं कि अपनी आयु का सत्तावनवां वर्ष बीत जाने पर मुझे इस कहानी के लिखने की अभिलाषा हो रही है। वे इस कहानी का रचना काल बतलाते समय कहते हैं—

हिजरी सन बारह सै पांचा। बरनेउ पेमकथा यह सांचा।
अट्ठारह सैं सैंतालीसा। संवत् विक्रम सेन नरेसा।
सतरह सै बारह पुनि साका। सतरह सै नव्बे ईसा का।
सत्तावन ब्रख बीते आऊ। तब उपजेउ यह कथा कै चाऊ।
सात दिवस महं कीन्ह समाप्त। दुरमति नाम रह्यो सो सम्मत।

प्रसिद्ध है कि 'यूसुफ़ जुलेखा' की रचना कवि निसार ने सं० १८४७ के पौष मास की पूर्णिमा को आरंभ की थी और यह उनकी अंतिम कृति है।

कवि निसार ने अपने कथानक को शामी भंडार से चुना है और उसे स्वभावतः, विदेशी क्षेत्रों में ही विकसित भी किया है। उसकी रचना के प्रधान पात्र यूसुफ़ और जुलेखा शामी जाति के लिए सुपरिचित व्यक्ति हैं। कवि का दुःख-दलित हृदय उनके आदर्श प्रेम का चित्रण करने के साथ ही उनकी विभिन्न दुरवस्थाओं के भी विवरण दिला देता है जिस कारण प्रेमरस का माधुर्य करुण रस की मर्मान्तिक घटनाओं के द्वारा, कुछ विचित्र ढंग का हो जाता है। कवि की मनोवृत्ति पूर्णतः धार्मिक है। किंतु

वह नूर मुहम्मद की भाँति किसी दूसरे के प्रति कटुभाव प्रदर्शित करना अनुचित समझता है। कवि के कथानक की एक विशेषता यह भी जान पड़ती है कि उसकी कहानी के सभी पात्र पूर्णतः लौकिक नहीं हैं। वे अलौकिक प्रेम के अति निकट हैं।

यूसुफ़ ज़ुलेखा
(स्वप्न दर्शन खंड)

एक राति जो आइ सोहावनि। प्रेम सरूप विरह उपजावनि।
प्रेम भरी रजनी उँजियारी। सखिन साथ सोवै सो नारी।
आधि राति लह जागि कुमारी। प्रेम कै बात सुनै सुखकारी।
आई नींद सुमुखि अलसानी। सोइ गई सब सखी सयानी।
सोवा पहरू औ कोतवारा। सोवा जिया जन्तु संसारा।
सोये दुखी सुखी नरनारी। सोये खग मृग कीट करारी।
सब सोवा कोउ जागत नाही। जागत एक प्रेम जगमांही।
सोवै लागि तेहि समय जुलेखा। यूसुफ़ कहँ सपने महँ देखा।
मीठी नींद जगत सब सोवा। प्रेम तेज हिय जाइन गोवा।

दोहरा

मानुस रूप तहं आयगे, देखि रही टक लाइ।
लीन्ह प्राण तन काढि कै; रूप अनूप दिखाइ ॥१॥

देखत नारि विमोहित भई। निरखि रूप बाउर होइ गई।
नैन बानते वेधेसि हीया। बात न आइ मौन भइ तीया।
छिन यक ठाढ़ रहा रंगराता। पुनि मुसकाइ कीन्हि रसबाता।
हम तुम कहँ चाहहि चित लाई। तुम हिय तें जिनि देहु भुलाई।
कहि यह बात चहा उर लावा। जागि परी कुछ दिष्टि न आवा।

जागत कँ चकचोहट लागा। जस पंछी कर ते उड़ि भागा।
हिरदै लागि पेम कँ गांसी। भयेउ सो ग्यान हानि तन नासी।
सोवत सुख जागत दुख पावा। रोम-रोम तन विरह गलावा।
मूर्ति एक जो दरस देखाई। हिये मांहि पुनि गई समाई।

दोहरा

पेम फंद अरुझानी, गयउ ग्यान मति भूल।
सँवरि रूप अकुलाइ मन, उठै हिये मँह सूल ॥२॥

उठि बैठी मुख सँवरत सोई। नई लगन कहि सकै न रोई।
जब संवरै मुख तब बिलखाई। पै सुलाजतें रोइ न जाई।
विरह बान वेधा यक बारा। रोम-रोम व्याकुल तेहि झारा।
चिनगी विरह आगि कै लागी। सुलगै लागि हिये मँह आगी।
सखी देखि धनं वदन मलीना। मन व्याकुल तन सुध-बुध हीना।
पूछहिं कत तुम चित्त उदासा। कवन सोच कर हिरदै बासा।
तुम सब कर जग प्रान अधारा। काहे लागि भई बिकरारा।
सब सुख तुमहि विधातै दीन्हा। मन मलीन केहि कारन कीन्हा।
पान खाहु नहि सूंघहु फूला। अभरन औ सिंगार सभभूला।

दोहरा

दिन भर मौन गहें रहै, भूख प्यास गै भूल।
पान खाइ न रस पिये, काँट भये सब फूल ॥३॥

भूषन रतन उतारि जो डारा। दुखदायक भै सभै सिंगारा।
मनमँह सोच करै मुरझाई। लैगा प्रान सरूप देखाई।
नांउ ठांउ कछु जानौं नांही। कहां सो खोज करौं जग मांही।
नेरें ठाढि रहे वह मूरति। जेहि बिन तन-मन प्रान विसूरति।
रूप देखाइ सो चेटक लावा। मधुर बचन कहि अधिक लोभावा।

सेज परै जागै फिर सोवै । लखै न रूप उठै फिर रोवै ।
ना वह मूरति औ ना वह ठांऊ । कौन हतेउ औ का तेहि नांऊ ।
छूटै आंसु चलै जस मोती । कहै कि ऐ मनभावन जोती ।
कहां गयउ वह रूप देखाई । जस हिरदय कोउ जात समाई ।

दोहरा

तोहि सपथ वहि दई कै, जेहि कीन्हा तोहि भूप ।
एक बार फिर आवहु, आनि देखावहु रूप ।।४।।

ग्यान हेराइ सो मूर्ति हिरानी । लागत आगि न बरसै पानी ।
जात वेद होइ सेज जरावै । जाम वेद सभ वेद भुलावै ।
पावक झरसै पवन जो लागै । रोम-रोम लै स्रागन दागै ।
खन उठि सेज परै विकरारा । खन उठिकै बैठे बेसम्हारा ।
खन तन डहै सो अगिनि सुवरना । खन बरसहि चख ऊदक झरना ।
खन सो उठहिं तन विरह की ज्वाला । खन मुख सँवरत होइ बेहाला ।
कहै कि ऐ वैरी दुखदेवा । कामैं कीन्ह चूक तोरि सेवा ।
खिन रोवै खिन नैन छिपावै । खिन सोवै पै नींद न आवै ।
विकल सरीर भयउ जस पारा । विरह आगि में सुठि विकरारा ।

दोहरा

खन चख बरसै अगिनि जल, करत न बनै पुकार ।
कल न परै पल ना लगै, सहै दुकूल न भार ।।५।।

* * *

कोटि जतन करि हारी सोई । एक रइनि विधि आनि सँजोई ।
मूंदि चच्छु यह परगट केरा । खोलि विचच्छु हियें कर हेरा ।
सोवै तब जागै वह जीऊ । खुले नेन्त्र जेहि देखै पीऊ ।
जेहि विधि आदि परगटेऊ सोई । आया फेरि न जानै कोई ।

धाए सो नारि पांउ लै परी । हाथ जोरि आगे भइ खरी ।
कहा कि प्रीतम लिन्हेउ न प्राना । दिहेउ विछोह किहेउ तनहाना ।
तोरे दरस परस के आसा । रहेउ आस घट पंजर सांसा ।
तुम अस कन्त भुलायहु मोही । मैं नित जरिउ सयन लखि तोही ।
निसि दिन सीस चढायउ खेहा । भसम किहेउ यह अवुंजदेहा ।

दोहरा

तुम अस निठुर विछोही, बहुरि न लीन्हा चाह ।
मुयेंउ सो विरह विछोह तें, अब कुछ करहु कि नाह ।।६।।

कहा कि मोहि अस उपजेउ सोगू । तुम तें अधिक से विरह पियोगू ।
तुम पर कौन विया अस बीती । हौं जस रखौं सो प्रेम पिरीती ।
तुम्हरे विरह भयउ अग्याना । छांड़ेउ नगर औ देस अपाना ।
सदा मोहि तुम नेह विसेखी । दूजे पुरुष और जिनि देखी ।
जो चाहौं हम दरसन राता । दूजे तें जिमि बोलहु बाता ।
जब सँवरहु तब हौं तुम पासा । तुम मम आस रखौं तोरि आसा ।
तोरे लागि भयेउ परदेसी । मिलै न कोउ प्रेम संदेसी ।
सो तुम मोहि भुलायहु नाहीं । राखेउ प्रीति सदा हियमांही ।
होय विलंब सोच जनिमानहु । प्रेम न कबहुँ अँविरथा जानहु ।

दोहरा

मोहि भूलेहु जिनि प्यारी, औ सँवरहु दिन रैन ।
करहु सदा वैराग जब, तब देखहु भरि नैन ।।७।।

कहि यह बात चहा उर लावा । जागि परी कुछ दिष्टि न आवा ।
वहै सेज औ वह सोवनारी । अधिक भई व्याकुल विकरारी ।
उठि बैठी औ लागी देखै । देखै सबै न ताहि विसेखै ।
कहा कि ऐ पति ! पानिप मोरी । बाझिउ प्रेम फाँस में तोरी ।

दूसर और कहा मन छाया। एक प्रान कर है यह काया।
कब देखै भरि नैन अघाई। केहि दिन हियकै प्यास बुझाई।
कब वह घरी सुफल फिरि आवै। जेहि दिन दरस-परस रस पावै।
मैं बाउरि कुछ सुद्धि न कीन्हा। नांउ ठांउ पिउ पूछि न लीन्हा।
केहिते कहौं सो आपन हारा। पूछहु यह सो अरथ अपारा।

दोहरा

पेम आइ हिय महँ धसा, लसा सो आठौ अंग।
दिन-दिन वह विरहइं रहै, कोउ न चरचै संग ॥८॥

* * *

दिन भर रहै मौन की नांई। रैन जाग औ रोइ विहाई।
परसन भयउ जो सपने मांहीं। नांउ ठांउ कुछ जानेउ नांहीं।
अवकी बेर फेर तोहि पांऊ। वकनी सजल पग संकर नांऊ।
राखौं नैन थानि विलगाई। मूंदौ पलक देंउ नहिं जाई।
आवत लखेउ न गौनत देखा। भयउ मोर बाउर कै लेखा।
कह विधना अस करै सुभागा। मिलौं कनक जस ओट सोहागा।
तोरि जोति मोरे नैन समानी। दूसर और कहा मैं जानी।
पिव आये मैं पापिन छूंछी। नांउ ठांउ कुछ लिहेउ न पूँछी।
जब लग आवागमन करेहूँ। तब लग अधिक विरह दुख देहूँ।

दोहरा

यहि विधि बीती रैनि सभ, भयेउ चराचर रोर।
धाई आई निकट उठि, और सखी चहुँ ओर ॥९॥

* * *

एक रैनि फिर आइ सुलानी। आई नींद सुमुखि अलसानी।
तीसर सपन फेर वैं देखा। वहै रूप जो आदि विसेखा।

जानहु आइ फेरि अस बोला । अमी कुंड अधरन तें खोला ।
मैं तोहि लागि तजेउं घर बारा । परेउं कूप मँह मोहि निसारा ।
मोर तोर प्रीति आदि लिखि राखा । करहु सो अन्त भोग अभिलाखा ।
तव दुख हटै होइ सुख सारा । जब पावौं मैं दरस तुम्हारा ।
यह सुनि नारि भई तव ठाढी । अरुझी बेल प्रेम कै गाढ़ी ।
अब की बार जान नहि देऊं । जबलह नांउ पूंछि नहिं लेऊँ ।
अबलह यह जिउ निकसि न गयऊ । जो फिर दरस परापत भयऊ ।

दोहरा

नांउ ठांउ बतलावहु, पठवौं जहां संदेस ।
होय जोगिन वैरागिन, चलि आवहुं ओहि देस ॥१०॥*

तव मुसुकाइ कहा सुनु प्यारी । मिस्र देस है बाल हमारी ।
मिस्र-साह कै सचिव सोहावा । आवहुं उहँ तो होइ मेरावा ।
सचिव नांव जग विदित सो अहई । और नाउं विरला कोउ कहई ।
मैं अपने बस महँ हौं नाहीं । आवहु वेगि मिसिर कै मांही ।
कुछ दिन सहौ विरह दुख डाहू । बिन दुख पेम न प्रापत काहू ।
जो दुख ते नहि होइ उदासा । अंत होइ सुख भोग विलासा ।
जस चाहौ तुम मोकँह प्यारी । तस तोहि चाहौं अन्त कुंमारी ।
सपने मँह सुनि भई हुलासा । जागि परी कोउ आस न पासा ।
रोइ उठी गहवर अकुलानी । नांउ ठांउ सुनिकै हुलसानी ।

दोहरा

जियौं तो जांऊ मिस्र कँह, मरौं त मारग माँहि ।
छार होउ उड़ि जाँउ अब, बसै जहां मोर नाँह ॥११॥

---

* पाठांतर—कै तोहि लाल बोलायहुँ, कै आवहुँ तोहि देस ।

९—ख़्वाजा अहमद

ख़्वाजा अहमद ने अपना जन्म-काल सन् १८३० ई० अर्थात् सं० १८८७ वि० वतलाया है। इनका जन्मस्थान वावूगंज नाम का गाँव है जो प्रतापगढ़ जिले की प्रतापगढ़ तहसील में ही वर्त्तमान है। इनके वंशवाले अंसारी कहलाते हैं। इनके पिता का नाम लाल मोहम्मद था और इनके दादा कहीं अन्यत्र से आकर वावूगंज में वसे थे। पता चलता है कि ख़्वाजा अहमद ने अपनी 'नूरजहाँ' नामक रचना को अपनी मृत्यु से केवल दो मास पूर्व सन् १९०५ ई० अर्थात् सं० १९६२ वि० में समाप्त किया था। इस प्रकार ये लगभग ७५ वर्ष की आयु पाकर मरे थे और इन्होंने इस वीच में कई अन्य फुटकर रचनाएँ भी प्रस्तुत की थीं।

ख़्वाजा अहमद ने भी 'नूरजहाँ' का आरंभ प्रचलित सूफ़ी-पद्धति के अनुसार ही किया है। प्रारंभिक 'करतार खंड' में इन्होंने सृष्टिकर्ता का गुणगान तथा सृष्टि रचना का संक्षिप्त वर्णन किया है और तत्पश्चात अन्य आवश्यक वातें वतलायी हैं। इनकी कुछ पंक्तियों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती मलिक मुहम्मद जायसी और क़ासिम-शाह दरियावादी को अपना आदर्श माना था और अपने को उनका 'चेला' तक ठहरा कर उनका अनुसरण किया था। जैसे,

> मिलिक मुहम्मद पुरुख सआना। कथा पदुमिनी कीन्ह वखाना।
> गढ़ चितउर औ सिंघल दीपा। लिखेउ वखान सो प्रेम सनीपा।।
> औ क़ासिम जस दरियावादी। लिखेउ हँस कै कथा सो आदी।।
> वलख सो चीन प्रेम रस वोवा। लिखेउ अरथ जनु समुद विलोवा।।
> अहमद तुम येन सब कइ चेला। यन के संघ चरन धै खेला।।

इनका कहना है कि 'नूरजहाँ' की रचना के संवंध में इन्हें प्रेरणा भी अपने उक्त 'संघ' वा संप्रदाय के मित्रों द्वारा ही मिली थी। जैसे,

जहँ लौं मीत संघ कै रहेऊ । वन हिछा कै मिलि सव कहेऊ ॥
लिखौ समुझि किछु प्रेमकिहानी । प्रेम विरिछ कै करहु किसानी ॥

ख्वाजा अहमद ने अपनी रचना में कोई नवीनता नहीं प्रदर्शित की है। फिर भी ये एक अच्छे कवि जान पड़ते हैं। इनकी रचना के नाम से प्रसिद्ध ऐतिहासिक नूरजहां का स्मरण हो आता है। किंतु उसकी प्रेम कहानी से इसका कोई संवंध नहीं। कथा के रहस्य को इन्होंने स्पष्ट भी कर दिया है।

नूरजहाँ

(ख़ुरशेद-परिचय)

सरन दीप अस निर्मल नाऊं । गढ़ ईरान वसै तहँ ठांऊ ॥
मलिक शाह तहवाँ सुलताना । सभै जगत तेहि करै वखाना ॥

* * *

नूरताव रानी एक ताहां । रहै सुवास पाट है जाहां ॥

* * *

दूसर अवर सोच नहिं वाता । पै यक वंस न दीन विधाता ॥
छांड़ि पाट गढ़पति वहिरान । परचौ सोग सव जग बौरान ॥
चला मांझ वन थामेउ वाट । पहुँचेउ जँह सलिता के घाट ॥
आसन जाइ घाट पर लीन्हा । सुमिरन वैठि गुरू कै कीन्हा ॥
पीर तहां चलि आये, दस्तगीर तेहि नांउ ।
तौ गढ़पति लखि देखा, ठाढ़ सो दहिने ठांउ ॥
तवहि गुरू अस वोलेउ बैना । देखु दृष्टि खोलि दोउ नैना ॥
सुनु गढ़पति जिनि छाड़ेसि राज । होइहै अंत सुफल तव काज ॥
वंस सुफल तोहि देहि विधाता । मंदिल अंजोर होइ रंगराता ॥

* * *

भयो सहाय आपु करतारा। सुफल सुवंस लीन्ह अवतारा ॥
औ खुरसेद शाह तेहि नांऊ। वंस सुफल सुत ठाकुर ठांऊ ॥

* * *

सोवत सपन देखिकै, लेखसि भेद निरथाइ।
कंचन पाट सिंघासन, बैठि नारि इक आइ ॥
बाउर भयउ राय लखि, मुरति आइ हिय लागि ॥
भय अलोप दे दरसन, उठा सोइ जब जागि ॥

(नूरजहाँ-परिचय)

खुतन सहर एक निर्मल देसू। खबर साह तहँ बसै नरेसू ॥
सभाजीत रानी कै नाऊ। तेहि घर-पाट बइठ तेहि ठांऊ ॥
तेहि घर एक बारि उजियारी। नूर जहां तेहि नांउ पियारी।
तेहि की जोति मंदिल उजियारी। गगन दुइज जनु जोति पसारी।
तहँवा एक परीकै बारी। आई मंदिल देस उजियारी।
तेहि कर पिता परिन कर राजा। छत्र पाट सुख संपति छाजा ॥
तेहि कै यह बारी उजियारी। नाम सुमति तेहि धरेउ विचारी।
सातौ दीप फिरै दिन माँहा। रैन बसेर पिता घर जाहां ॥

* * *

तब हिय लागि मिली दोउ नारी। जानहु एक पिता कै वारी ॥
कहा सो कँवल सुमति सुनु बाता। जेहि के गुन नैहर नहि भाता ॥
अब लखि बेकल होय मोर जीऊ। होय बियाह मिलै कस पीऊ ॥
फिरहु बहिन तुम सातौ दीपा। देखेहु सब गढ़ दिस्टि समीपा ॥
कवने दीप रूप नर ग्यानी। कवन दीप रस भोग न जानी ॥
कहा सुमति जो हिछा तोरी। अब मैं जाम लखौं सब खोरी ॥

सातों दीप जाय कै, लखों सो ठावहिं ठांव।
वह सँजोह जँह देखहुं, आन बतावहुं नांव॥

(.खुरशेद का मूर्ति दर्शन)

अवसर सुमति तहां अस पावा। हाथ मुरति लै चरन उठावा॥
आई पास पाट सुलताना। देखैं सुचित सो सोवै भाना॥
तब लौं हाथ मुरति धै दीन्हा। थामेउ बाँह सुचित तेहि कीन्हा॥
लखि सो रूप खुरसेद विसेखा। आदि सपन मूरति एक लेखा॥
रेखा रूप लखेउ तेहि केरी। जस वह सपन रूप तस हेरी॥
सीस उठाय सुमति दिसि देखा। कस कामिनि पंखी कै लेखा॥
तबहि सुमति झुकि कीन्ह जोहारा। औ तेहि चरन माथ लै डारा॥
आग्या अब जो पावहुं, कहौं भेद औ नांउ।
करहुं बखान मुरति कै, बसै सो जानेउं ठांउ॥
तब खुरसेद बात सुनि रोवा। इहै सो मुरति प्रेम विख बोवा॥
तबही सुमति लरजि कै बाता। अमृत मेलि खुलेउ मुख राता॥
नाउं सो नूर जहां तेहि केरा। जंगकी जोति हिये तेहि हेरा॥

* * *

भयउ अचेत भान तँह, मुरति हाथ सौं छूटि॥
सुमति सो लीन उठाय वह, उड़ी मेलि मुख घूंटि॥
पल मारत धौराहर आई। लखि अचेत सोगई सुर्झाई॥
बांह थामिकै सुमति जगावा। देखत कँवल जनौ जिउ पावा॥

(ख़ुरशेद की सिद्धि)

दरस नगर एक घाट अँजोरा । बांधेउ घाट नगर चहुं ओरा ॥
तहां नरेस देसपति राजा । तेहिके घाट जगत के काजा ॥
तेहि घर मिले बोहित कर साजू । जावहिं धनी रंक औ राजू ॥
तेहि के घाट चले संसारा । एक परतीत राइ घट वारा ॥
उठा सँवरि विधि नाँव भिखारी । चढ़ि बोहित पर आसन डारी ॥
बोहित धाइ चली जनु आंधी । चली सो धाइ सांस वह वांधी ॥

अंध धुंध जलहल भा, परै गगन नहिं सूझ ।
कांपि उठै वैरागी, करहि कवन मति जूझ ॥

तब पीरान पीर चलि आये । लखि खुरसेद हुलसिकै भाये ॥
तेहि सब हाथ सीस पै फेरा । बचन न भूलेउ सांझ सबेरा ॥
दै असीस गुरु मारग लीन्हा । एक खुरसेद अवर नहिं चीन्हा ॥
लहरि समोख समुंद थिर भयेऊ । दधि सभाव कै सभ छिप गयेऊ ॥
केवट कहेउ भएउ अब पारा । विधि भवसागर खेइ उतारा ॥
आएउ खेइ अगम यह बाटा । बोहित लागि सुफलपुर घाटा ॥
सुनत साह उठि महल सिधारा । हुलसेउ नगर भयेउ उजियारा ॥
लगन धरेउ औ रचेउ बियाहू । नेउता फिरेउ जगत सब काहू ॥
एक बसीठ मंदिल सो आया । प्रीत गांठ दोउ जगत बँधावा ॥

अहमद आसा प्रेम कै, सुफल कीन विधि भेद ।
जेहि कारन तप साधेउ, सिद्ध भएउ खुरसेद ॥

(नूरजहाँ-रहस्य)

हिरदै प्रेम प्रीत उलथानी । प्रेम कथा अब लिखौं कहानी ॥
कवन सो देस बसै जेंह मूरी । जेहि के लखत होइ दुख दूरी ॥

देखेउँ यदि काआ के माहीं । दूसर घाट अवर कहुँ नाहीं ॥
काया मांझ नयनपुर घाटा । देखेउ सरनदीप कै बाटा ॥
रूम खुतन काआके मांझा । काआ मांझ भोर औ सांझा ॥
सब गढ़पति काआके मांही । दूसर ठांउ लखौं कहुँ नाहीं ॥
नूरजहां काआ कै जोती । काआ समुद सीप जँह मोती ॥

१०—शेख़ रहीम

कवि रहीम ने अपनी रचना 'भाषा प्रेम रस' के प्रारंभ में अपना परिचय देते समय कहा है:

नांव रहीम मोर जगजाना । जोवल नगर जनम अस्थाना ।
जाना चाहो जात हमारी । हनफ़ी मता शेख़ अनसारी ।
पितुकर यार मुहम्मद नाऊं । वो नवी शेख़ कहै सब गांऊ ।
पितु के पिता शेख़ रमज़ाना । आगे कंह लग कहौं बखाना ।
पाँच बरस रहिके मम सीसा । पिता हमार सरग मग दीसा ।
कौन पिता जो आपन चाला । नाना ख़ुदा बख़्श मोहि पाला ।
कुल उत्तम सैयद बड़े, अली विलायत नाँउ ।
सोई मोरे हैं गुरू, मैं चरनन बलि जांउ ।

* * *

ठाढ बँहराइच दीन का ठाऊँ । जगमां विदित है जाकर नांऊ ।
सोवे रबके जहां दुलारे । सैयद गाज़ीशाह हमारे ।

अर्थात् मेरा नाम रहीम है, मेरे पिता का यार मुहम्मद हैं और मेरे दादाका शेख़ रमज़ान है। मेरे पूज्य गुरु सैयद विलायत अली हैं। मैं जब केवल पांच बरस का था कि मेरे पिता का देहान्त हो गया और मेरे नाना

खुदा बख्श ने मेरा पालन पोषण किया। मेरा जन्मस्थान जोवल नगर है। वहीं वहँराइच भी वर्त्तमान है जहां परमेश्वर के प्रिय सैयद गाज़ीशाह की समाधि वनी हुई है। जोवल एवं वहरांइच के नाम लेकर कवि नें कदाचित् इस वात की ओर संकेत किया है कि प्रथम नामका नगर दूसरे नामवाले जिले में पड़ता है।

फिर कवि नें अपनी शिक्षा-संबंधी योग्यता एवं पुस्तकाध्ययन आदि का परिचय देते हुए भी वतलाया है,

उर्दू फ़ारसी कुछ-कुछ सीखों। भाषा स्वाद तनिक इस धीखों।
पद्मावत देखों निरथाई। मलिक मुहम्मद केर वनाई।
हंस जवाहिर क़ासिम केरी। पढ़ों सुनों पुस्तक वहुतेरी।
तँह से मोहुं भयो यह जोगा। भाखा भाख कहूं संजोगा।

अर्थात् मैंने उर्दू एवं फ़ारसी की थोड़ी सी शिक्षा पाई है और मैं हिंदी-भाषा का भी कुछ स्वाद ले चुका हूँ। मैंने जव मलिक मुहम्मद जायसी की 'पदुमावति' का अध्ययन किया और क़ासिमशाह की 'हंसजवाहिर' जैसी कई एक अन्य कहानियाँ भी पढ़ी सुनी तो मेरे विचार में यह वात आई कि मैं भी क्यों न एक ऐसी ही प्रेमकथा हिंदी में लिख डालूँ।

कवि ने अपने जीवन-काल की ओर संकेत करते हुए वतलाया है कि उसके समय में (वस्तुतः ग्रंथ रचना के समय तक) सम्राट् सप्तम एडवर्ड का देहान्त हो चुका था और उनके पुत्र पंचम जार्ज का शासनकाल आरंभ हो चुका था। उसने अपनी पुस्तक का रचना-काल ईस्वी सन् १९०० के उपरान्त 'तीन वारह' वा पंद्रह दिया है जो सन् १९१५ ई० अथवा सं० १९७२ वि० पड़ता है। जैसे,

एडवर्ड सतएं जगजाना। भयो सरगमँह जिनकर थाना।
पंचम जार्ज तेहि सुत न्याई। जगमां कीरति जिनकर छाई।

तीन बारह सन् उनइस ईसा। बरनूं कथा सुमिरि जगदीसा।

कवि रहीम इस प्रकार एक आधुनिक प्रेमगाथा-कवि हैं और इन्होंने भी जायसी और क़ासिमशाह को, ख्वाजा अहमद की भाँति, अपना आदर्श मानकर 'प्रेमरस' का आरंभ किया है। 'प्रेमरस' का कथानक काव्यनिक जान पड़ता है। उसे विकसित करते समय कवि ने कई स्थलों पर अलौकिक पात्रों एवं घटनाओं का समावेश कर लिया है। फिर भी प्रधान घटना बहुत कुछ स्वाभाविक ही है। इस रचना के अधिक रोचक स्थलों में प्रेमा एवं चंद्र का मिलन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दोनों प्रेमियों के पारस्परिक मिलन का संयोग जुटाते हुए कवि ने प्रेमसेन (नायक) को नारीवेश दिला कर समस्या हल करने में कौशल दिखलाया है।

नायक प्रेमसेन के जन्मादि का वर्णन करने से पहले नायिका चन्द्रकला का ही विशेष परिचय देना इस रचना की एक अन्य विशेषता है। इसके द्वारा कवि ने, सर्वप्रथम, पाठक का ध्यान स्वभावतः उस ओर ही आकृष्ट करना चाहा है जो इसका मुख्य केन्द्र है। इसकी नायिका चन्द्रकला पहले से निःसंतान माता-पिता के घर उत्पन्न होती है और उनकी अधिक स्नेह-पात्री भी बन जाती है। इसके सिवाय वह एक राजा की लड़की है जहाँ उसका प्रेमी प्रेमसेन उसके पिता के मंत्री का पुत्र है।

राजाओं के महलों में कुछ दे लेकर काम निकालने का ढंग भी इस कवि ने दिखलाया है। इस प्रसंग में मोहिनी मालिन और उसकी माता के चरित्रों का चित्रण कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। कहानी के अंत में कवि ने उसे सुखांत बनाने के लालच में पड़कर कुछ चामत्कारिक बातें ला दी हैं जिसका प्रभाव उसके कलानैपुण्य पर अच्छा नहीं पड़ता।

भाषा प्रेमरस

(प्रेमा-चन्द्र-मिलन)

गई समीप जब मालिन मैया । चन्द्रकला की लेन बलैया ।
चन्द्रकला उठि बिहँसी धाई । बहुत दिनन पर आयो बाई ।
पूछेस षेम कुसल घर केरा । माता कत कीनो तुम फेरा ।
मालिन कहा सुनो मम प्यारी । मोहनी लें तुम्हें सुन्यों दुखारी ।
भा अँदेस देखन कां धायों । तुम्हरे रोग का औषद लायों ।
देख सकूं नहिं तुम्हें मलीना । दुख तुम्हार आपन दुख चीन्हा ।
चन्द्रकला मन मां मुसकानी । मालिन बचन कहा का जानी ।
कहा मात फिर कहो उघारी । कौन बिथा तुम सुन्यो हमारी ।

तब मालिन मुसकाय के, फिर दोहरावा बात ।
जेहि के कारन तुम दुखी, तेहि लै आयों साथ ॥१॥

भेंटों मिलो कहो जो बीती । आपन-आपन थापो नीती ।
तब चन्द्रावलि चीन्हो श्यामा । आये कृष्ण राधिका धामा ।
नार भेष लख नारि लजानी । रूप बिमल सोभा की खानी ।
उठी धाइ चरनन तें लागी । बोली बचन प्रेम रस पागी ।
औ परान तोहिं कंठ लगाऊं । सुघर सरूप के मैं बलि जाऊं ।
जो तुम होत्यो नारि करारी । तीन लोक जाते बहिलारी ।
होयके पुरुष हमें वर आयो । पीत रोग दे लाज नसायो ।
बन के नारि छलन का आयो । धन्य भाग जो दरस दिखायो ।

घूंघट खोलो लाड़ली, चितवो हमरी ओर ।
मुख दिखलौनी मैं करूँ, प्रान निछावर तोर ॥२॥

कह की नार रहो कह ठाऊं । मोहि बतायो आपन नाऊं ।
कौन पुरुष अस सुकरम कीना । जाको हो तुम नार नगीना ।

लंवा घूंघट पैये पांऊ। यह घूंघट के वलि-वलि जाऊं।
घूंघट भीतर कपट कटारी। खूव वन्यो तुम चोलीवारी।
सुन के वचन मोहनी हँसी। आज वेचारी आनके फँसी।
धरो धाम अव जान न पावे। फिर कस जाने जो आपसे आवे।
प्रेमा कहा जान नहिं पायो। जैहो कत जव लाज गंवायो।
निकसि जाय घर से जव नारी। कत वाके फिर घर वैठारी।

आयों घर से में निकस, अपने जिय पर खेल।
विना संग लीने तुम्हें, केहि विधि जांउ अकेल ॥३॥

तीन वार एक पुरख सयाना। कोउ नहीं तँह दूसर आना।
परखो नार भेख घर आवा। चेरी कोउ पहचान न पावा।
चलती तहां वतियां मनभाई। अपनी-अपनी कहिन वुझाई।
मालिन दोउ गई इक ठौरा। प्रेमा-चंद्र लीन्ह गहि कोरा।
चंद्र वाँह प्रेमा गर डारे। वैठन दोउ विरह के मारे।
ढरें आंस मुख वचन न आवै। विरह विथा कुछ कहन न पावै।
कहो प्रान कोइ जतन विचारी। जस निवहै यह वैरिन वारी।

नैन सिरोही मारके, हर लीन्हो मन चैन।
तुम विन जीवन है कठिन, सोच यही दिन रैन ॥४॥

आगे का तुम्हरे मन मांही। प्रीत अँदेस जियव हम नाहीं।
तेहिते ग्यान विचारो कोई। जेहि विधि जगत हँसाव न होई।
नाहिन तुम्हरे कारन प्यारी। इक दिन जैहै प्रान हमारी।
अव नहिं जाय विरह दुख सहा। सहा जहां लों धीरज रहा।
वोली तव चंद्रावलि वारी। कहा पूछो तुम जुगत हमारी।
मति हीनी सभ नारि कहावैं। हमका तुम्हें उपाय वतावें।
वुध ग्यान हर लीन्ह पिरीता। तुमही चेतो कोउ सुभीता।
जस तुम कहौ वैन सिर धरूं। जतन विचार कहो मैं करूं।

चंद्रकला की बात सुन, प्रेमा भयो अनंद।
मनमां बाढ़ो प्रेम सत, छूट गयो भ्रमफंद ॥५॥

कहा प्रान मैं जतन बताऊं। करो वही जो तुम्हें सिखाऊं।
हम तुम तजे मात पित बेसू। चले अनत धर जोगी भेसू।
जिन्ह वैरी सम जिवके गरासा। तहां नहीं जीवन की आसा।
जिन्ह-जिन्ह प्रेम डगर पग दीन्हा। तिनका सब वैरी कर चीन्हा।
वैरी मात-पिता परिवारा। वैरी भाइ बंधु घर बारा।
वैरी नगर देस के लोगू। वैरी राह बाट संजोगू।
वैरी मीत होयं यह बाटा। रगर किंगरी फोर ललाटा।
वैरी रूख छांह जो देहीं। धूप दिखाय छांह तर लेहीं।

जिन पग दीन्हा प्रेम मग, तिनका को सिख दीन।
छोट बड़े बैरी भये, सुख संपति हर लीन ॥६॥

माखी प्रेम सहत सो कीन्हा। सहत छीन तिनका दुख दीन्हा।
अछर प्रेम ज़ो जलसंग जोरा। जलतें काढ़ कीन इक ओरा।
सावज कीन घास संग प्रीती। जानत सब जो ऊपर बीती।
बान चलाये तँह सब मारे। चरे न दिहिन अलान हंकारे।
फिर याकूब जो यूसुफ़ चाहा। भा बिरोग तन-मन सब दाहा।
भै वैरी सब उनके भाई। कूप डार तिहिं दीन छोड़ाई।
चंद्र कहा प्रेमा सुन प्यारे। मोहि सुनाउ यह नीक कथारे।
कौन रहे याकूब सयाने। जो यूसुफ़ पर भये परवाने।

कह प्रेमा सुन लाडली, धरो करेजे हाथ।
हिय फाटे सुन यह कथा, मोसे कही न जात ॥७॥

११—कवि नसीर

कवि नसीर ने अपने जन्मस्थानादि का परिचय देने के पहले ऐनुल अहदी नामक पीर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ये कहते हैं कि 'जोत निरंजन' का प्रकाश उन्होंने किया था और उनके पंडित, हाजी, हाफ़िज़, क़ारी जैसे लोग भी सहस्रों की संख्या में शिष्य थे। उनके प्रवचनों में अमृतसर बरसा करता था और वे दूसरे ख्वाजा ख़िज्र से दीख पड़ते थे। उनके चरणास्पर्श द्वारा सारे पाप कट जाते थे। उनके संबंध में एक आश्चर्य की बात यह भी थी कि जिस पानी को वे फूंक देते थे वह केवड़े का जल हो जाता था। मुझे भी उस जल की एक बूंद प्राप्त हुई थी। उसकी सुगंधि की स्मृति मुझे अब तक बनी हुई है। वे ही मेरे गुरु थे और मैं उनका दास हूँ। वे काशी में सदा रहा करते थे। किंतु, अंत में, उसे छोड़ वे कलकत्ते की चीनी-बाल मसजिद में चले गए जहाँ पर उनका देहान्त हो गया।

अपने जन्मस्थान के विषय में इन्होंने बतलाया है कि वह ग़ाज़ीपुर जिले का जमानियाँ नामक गाँव है। जैसे,

गाजीपूर जिला जिहि ठांऊ। ताहे मांझ जमनिया गांऊ।
भो इन जनमभूम है मोरा। निज बिरतंत कहूं कछु थोरा।

इसके आगे ये अपने जीवन की बातें लिखते-लिखते एक प्रकार दु:खगाथा सी सुनाने लगते हैं। इनका कहना है कि बचपन में ही मेरे पिता का देहान्त हो जाने पर मेरा पालन पोषण मेरी माता द्वारा हुआ। उसने एक मौलवी को रख कर मुझे धार्मिक शिक्षा दिलाई। एक धनी की पुत्री के साथ मेरा ब्याह कराकर वह भी परलोक सिधार गई। इसके उपरांत मुझे तीन सन्तानें हुईं। किंतु तीनों की ही मृत्यु हो गई और उनके शोक में मेरी स्त्री भी चल बसी। फिर मैंने क्रमश: दो और भी विवाह किये, किंतु एक केवल दो मास रह कर मर गई। दूसरी भी दो वर्ष तक जीकर मुझे छोड़ काल-कवलित हो गई। इसके आगे ये कहते हैं,

जस दुखी हूं मैं जगमांही, तस न केहू संसार।
मोरे अस दुख न कदाचित् दियो, काहू के करतार।

ये दुःखों के ही कारण पागल से होकर घूमते-घामते कलकत्ते चले जाते हैं। वहाँ पर सुंदरिया पट्टी की कोठी नं० १०७ में ठहर जाते हैं। वहाँ के निवासी, मुहम्मद शफ़ी नाम के सौदागर ने इनका चित्त सुधारने के लिए इन्हें अनेक प्रेमकथाएँ सुनाईं। इन प्रेम कहानियों में से इन्हें फ़ारसी कवि जामी की 'यूसुफ़ ज़ुलेख़ा' सबसे अच्छी जान पड़ी। इन्हें यह भी पता चला कि फ़िगार नामक शायर ने उसका उर्दू अनुवाद भी किया है। फ़िगार शायर की उस रचना 'इश्क़नामा' के ही आदर्श पर फिर इन्होंने भी अपनी रचना आरंभ कर दी।

अपनी रचना का निर्माण-समय बतलाते हुए ये कहते हैं,

हिजरी तेरह सौं पैंतीसा। था जैकोद मास चौबीसा।
संनत उन्निस सौ चौहत्तर। भादों बदी दुवादस अंतर।
जुमाका दिन जानो तुरकाना। सुक का दिन जानो हिन्दवाना।
करके बहुतही कष्ट कलेसा। यहि दिन कथा कियो मैं सेसा।

अर्थात् इस प्रेमगाथा की समाप्ति मैंने उस दिन की जब हिजरी सन् १३०५ के ज़ैकीद महीने की चौबीसवीं तारीख़ थी। उस दिन सं० १९७४ के भादो महीने के कृष्णपक्ष की द्वादशी तिथि पड़ती थी और दिन शुक्रवार था जो मुसलमानों के अनुसार जुमा कहलाता है।

कवि नसीर की रचना का कथानक नवीन नहीं है। वह परम प्रसिद्ध प्रेम कहानी है और उसे और कवियों ने भी अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। नसीर ने स्वयं भी बतला दिया है कि उसकी रचना में कथानक-संबंधी कोई नवीनता वा विशेषता नहीं। इसके सिवाय इस कवि के अपनी जीवन-संबंधी उल्लेखों से पता चलता है कि इसकी निजी दुःखगाथाएँ

लगभग उसीप्रकार की हैं जिसप्रकार की कवि निसार की इसके पहल थीं और जिनका वर्णन उस कवि ने भी किया है। यह भी एक संयोग की ही बात है कि अपने जीवन में पारिवारिक संकटों के भोगनेवाले दो भिन्न-भिन्न कवियों के हृदयों में इस कहानी विशेष को ही लिखने की ओर प्रवृत्ति जगी और उन दोनों ने उसे हिन्दी के ही माध्यम द्वारा पूरा किया। कवि निसार ने अपनी रचना सं० १८४७ में समाप्त की और कवि नसीर ने सं० १९७४ में लिखी जिसके अनुसार दोनों के बीच कम से कम सवा सौ वर्षों का अंतर पड़ता है।

कवि नसीर का 'प्रेमदर्पण' उर्दू कवि फ़िगार के आदर्श पर लिखा होने पर भी उसका ठीक-ठीक अनुवाद नहीं है। इसमें तथा कवि निसार की रचना 'यूसुफ़ जुलेखा' में भी अंतर है। फिर भी ये कवि कोई वैसी नवीनता नहीं ला पाये हैं जो उल्लेखनीय हो। स्वयं मूल कथानक में ही यह विशेषता है कि प्रेम की पीर उसकी नायिका में अधिक लक्षित होती है, नायक अपेक्षाकृत उदासीन है। इसके सिवाय अन्य कथाओं की भाँति इसमें किसी गुरु, पीर, सुवा, परेवा जैसे मार्ग प्रदर्शकों का भी कोई महत्त्व नहीं।

प्रेम दर्पण

(जुलेखा दृष्टि खंड)

रही जुलेखा एह से भोरा। जाने न पीव यहां आये मोरा।
पै वह मन जानेसि एक नारी। चंचल हिया भये अधिकारी।
एक बार होगइ अस्थीरा। वहु दोउ नैन बहाइस नीरा।
बन की ओर गई घबराई। बहले मन यह मनके बुझाई।
बढ़ी अगिन जनु बन लागी। चंचल मन तहवां से भागी।

लागी तहां जो विरह कटारी । भौन की ओर चली दुख हारी ।
जो सनमुख घर राव के आई । तहां समर यह इक सुन पाई ।

सुनके समर यह बोली जुलेखा, काहँ यह समाचार ।
तिहि में से एक बेकती बोला, सुनो बचन सरकार ॥१॥

आयो दास है इस परकारा । जिहि के जोत से भान है हारा ।
अति सुन्दर वह रूप है पावा । जनु परभू निज ओह में सजावा ।
सनमुख भई यूसुफ़ के सवारी । देखी जुलेखा ओट उघारी ।
परयो चीन्ह होवज के मँझारी । गिरी अचेत आह इक वारी ।
देख अचेत लोग घबराए । दिया तुरत ओके घर पहुँचाई ।
देख दसा ओहकर सब धावा । मुख दै गुलाब ओह के छिड़कावा ।
ग्यानमें जोकि जुलेखा आई । ओहसे दसा सोधायो दाई ।

अचरज मोहे दसा लख तोरी, भइ अग्यान कह लाग ।
दिहिस जुलेखा उत्तर माता, का कहूं मैं वैराग ॥२॥

करूं दसा माता परकासू । जिहि के लोग कहत हैं दासू ।
दास न वह मोर हिया अमासी । वह मोर नाथ मैं ओकर दासी ।
यही मोहे सपन दिखायो प्यारा । यह लूटा मोर मन बटवारा ।
लखभइ रूप भई मधमाती । यही मारा है तीर उराती ।
यही मोर प्रीतम भवां कमाना । यही निठुर मोहे मारा बाना ।
यही का इच्छा रहा मोरे मन । आयों यहां यहींके ढूंढ़न ।
चिंता है यह लगे किहि हाथा । करे रंगराग जाय किहि साथा ।

किहिके केसमें यह उरझावे, किहिके रहे यह साथ ।
अस मोर भाग सुभागो कित हो, जो आवे मोरे हाथ ॥३॥

सुन यह विथा जुलेखा दाई । कहिसि जुलेखा से समझाई ।
करन कदाचित सोच इह दाहा । काटे यह परभू अवगाहा ।

वही ओह के इह नगर में लावा । वही ओहकर तोके दरस देखावा ।
वही ओहके दे तोसे मिलाई । सून भवन मन तोर वसाई ।
दो ओहके जो डाके अवासी । करन कदाचित ओह के निरासी ।
वार विसार न जाय निरंजन । कामना मन एकदिन करे पूरन ।
धीरज बांधे रहो निसदिना । धीरज ही से कटे यह कठीना ।

दाई कहत 'नसीर' मिले पर यों, बांधे रहो टुक धीर ।
देखो वाकी श्याम घटा से, वरसत सेत है नीर ॥४॥

(अंतकथा खंड)

प्रेम कथा यह नसीर वखाना । जेहिकर अरथ करो वढ़वाना ।
कौन रहे याकूव गियानी । कौन रहे यूसुफ़ परधानी ।
यूसुफ़ भ्रात के अरथ लगाई । कहो कि मालिक संपरदाई ।
कौन रहे तैमूसा जानो । कौन जुलेखा रही पहचानो ।
कौन रही दाई छलवंतू । कौन अजीज मिस्र महाकंतू ।
के रय्यान मिस्र का राव । मिस्र नगर का कौन सुभाव ।
यह तो सकल हैं मनुष मंझारा । जानो इह को नहीं नियारा ।

जो मिथ्या यह वचन के जानो, तो यह लो परमान ।
हारे दांव गुपुत की वानी, कहना भया निदान ॥१॥

खनी अतां याकूब के मानो । ओ परमातमा यूसुफ़ जानो ।
घ्रान, स्वाद, इसपर्श करो मन । स्रवन, शब्द नैनन का दर्शन ।
चिंता चेत संदेह परमाना । औ अनुमान, सरन औ ग्याना ।

यही जो ग्यारह हैं येहि गाता। जानूं इन्हें यूसुफ़ का भ्राता।
हस्त और पद्द मालिक के जानो। औ तैमूस के पोषन मानो।
रिपु जुलेखा जानो अंगू। दाई जानो पिशाज संगू।
जानो अज़ीज़ मिस्र रुधीरो। और मिस्र को जानु सरीरो।
जीवन आत्मा मन में जानो, है राजा ग्यान।
अरथ 'नसीर' ग्यान का हीना, कहत यही परमान ॥२॥

(ख) फुटकल सूफ़ी-काव्य

१—अमीर ख़ुसरो

अमीर ख़ुसरो का मूल नाम अबुल हसन था। इनका जन्म सं० १३१२ वि० के अंतर्गत जिला एटा के पटियाली नामक गाँव में हुआ था। ये प्रसिद्ध सूफ़ी पीर निज़ामुद्दीन औलिया के मुरीद थे। दिल्ली तख़्त के ग़ुलाम वंश, ख़िलजी वंश तथा तुग़लक वंश के आश्रित रहे। ये अपनी बारह वर्ष की अवस्था से ही कविता करने लग गए थे। अरबी, फ़ारसी, तुर्की और हिंदी भाषाओं में कुल मिलकर इन्होंने ९९ ग्रंथों की रचना की थी जिनमें से इस समय केवल २२ ही उपलब्ध हैं। उनमें भी इनकी मसनवियों की संख्या अधिक है। इनकी हिंदी रचनाओं के विषय अधिकतर दैनिक अनुभवों से संबंध रखते हैं। उनका बाहरी ढांचा इस समय केवल पहेलियों, मुकरियों, ढकोसलों तथा फुटकल पद्यों एवं गीतों में दीख पड़ता है जिनकी भाषा खड़ी बोली के प्राचीन रूप की ओर संकेत करती है। इनकी मृत्यु सं० १३८१ के अंतर्गत अपने मुरशिद उक्त औलिया साहब के वियोग में हुई थी। ये उन्हीं की क़ब्र के निकट दफ़न भी किये गए थे।

अमीर ख़ुसरो के मुरशिद निजामुद्दीन औलिया के नाम से भी एक निम्नलिखित रचना प्रसिद्ध है—

परबत बाँस मँगाव मेरे बाबुल, नीके मँड़वा छाव रे।
सोना दीन्हा रूपा दीन्हा, बाबुल दिल दरियाव रे।
हाथी दीन्हा घोड़ा दीन्हा, बहुत-बहुत मन चाव रे।
डोलिया फँदाय पिया लै चलिहैं, अब सँग नहिं कोइ आव रे।
गुड़िया खेलन माँके घर रह गई, नहिं खेलन को दाव रे।
'निजामुद्दीन औलिया' बहियाँ पकरि चले, धरिहौं वाके पाँव रे॥

अमीर ख़ुसरो का एक पद—

बहुत रही बाबुल घर दुलहिन, चल, तेरे पी ने बुलाई।
बहुत खेल खेली सखियन सों, अंत करी लरकाई॥
न्हाय धोय के बस्तर पहिरे, सब ही सिंगार बनाई।
बिदा करनको कुटुंब सब आये, सिगरे लोग लुगाई॥
चार कहारन डोली उठाई, संग पुरोहित नाई।
चले ही बनैगी होत कहा है, नैनन नीर बहाई॥
अंत बिदाह‍ै चलिहै दुलहिन, काहू की कछु ना बसाई।
मौज खुसी सब देखत रह गए, मात-पिता औ भाई॥
मोरि कौन सँग लगन धराई, धन-धन तेरि है ख़ुदाई।
बिन मांगे मेरी मँगनी जो दीन्ही, पर घर की जो ठहराई॥
अँगुरी पकरि मोरा पहुँचा भी पकरे, कँगना अँगूठी पहिराई।
नौशा के सँग मोहि कर दीन्हीं, लाज संकोच मिटाई॥
सोना भी दीन्हा रूपा भी दीन्हा, बाबुल दिल दरियाई।
गहेल गहेली डोलति आँगन में, पकर अचानक बैठाई॥

बैठत महीन कपरे पहनाये, केसर तिलक लगाई ।
'खुसरो' चली ससुरारी सजनी, संग नहीं कोई जाई ॥

अमीर खुसरो के दोहे—

ख़ुसरू रैन सोहाग की, जागी पीके संग ।
तन मेरो मन पीउको, दोउ भये एक रंग ॥१॥
गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस ।
चल ख़ुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस ॥२॥
श्याम सेत गोरी लिए, जनमत भई अनीत ।
एक पल में फिर जात हैं, जोगी काके मीत ॥३॥

२—मलिक मुहम्मद जायसी

(परिचय पहले दिया जा चुका है)

१—मानव शरीर

खा-खेलार जस है दुइ करा । उहै रूप आदम अवतरा ॥
दुहूँ भांति तस सिरजा काया । भए दुइ हाथ भए दुइ पाया ॥
भए दुइ नयन स्रवन दुइ भांती । भए दुइ अधर दसन दुइ पांती ॥
माथ सरग धर धरती भएऊ । मिलि तिन्ह जग दूसर होइ गएऊ ॥
माटी मांसु रकत भा नीरू । नसें नदीं हिय समुद गंभीरू ॥
रीढ़ सुमेरु कीन्ह तेहि केरा । हाड़ पहार जुरे चहुँ फेरा ॥
बार बिरछि रोवाँ खर जामा । सूत-सूत निसरे तन चामा ॥

दोहा

सातौ दीप नवौ खँड, आठौ दिसा जो आहिं ।
जो बरह्मंड सो पिंड है, हेरत अंत न जाहिं ॥

सोरठा

आगि, बाउ, जल, धूरि, चारि मेरइ भांडा गढ़ा ।
आपु रहा भरि पूरि, मुहमद आपुहि आपु महँ ॥८॥

गा-गौरहु अब सुनहु गियानी । कहौं ग्यान संसार बखानी ॥
नासिक पुल सरात पथ चला । तेहि कर भौंहैं हैं दुइ पला ॥
चाँद सुरुज दूनौ सुर चलही । सेत लिलार नखत झलमलही ॥
जागत दिन निसि सोवत मांझा । हरष भोर बिसमय होइ सांझा ॥
सुख बैकुंठ भुगुति औ भोगू । दुख है नरक जो उपजै रोगू ॥
बरखा रुदन गरज अति कोहू । बिजुरी हँसी हिवंचल छोहू ॥
घरी पहर बेहर हर सांसा । बीतै छऔ ऋतु बारहमासा ॥

दोहा

जुगजुग बीतै पलहि पल, अवधि घटति निति जाइ ।
मीचु नियर जब आवै, जानहु परलै आइ ॥

सोरठा

जेहि घर ठग हैं पाँच, नवौ बार चहुँदिसि फिरहिं ।
सो घर केहि मिस बांच, मुहमद जौ निसि जागिए ॥९॥

घा-घट जगत बराबर जाना । जेहि महँ धरती सरग समाना ॥
माथ ऊँच मक्का बन ठाऊँ । हिया मदीना नबी क नाऊँ ॥
सरवन आंखि नाक मुख चारी । चारिहु सेवक लेहु बिचारी ॥

भावै चारि फिरिस्ते जानहुँ । भावै चारि यार पहिचानहु ॥
भावै चारिहु मुरसिद कहऊ । भावै चारि किताबै पढ़ऊ ॥
भावै चारि इमाम जे आगे । भावै चारि खंभ जे लागे ॥
भावै चारिहु जुग मति पूरी । भावै आगि, वाउ, जल, धूरी ॥

दोहा

नाभि कंवल तर नारद, लिए पञ्च कोट वार ।
नवौ दुवारि फिरै निति, दसई कर रखवार ॥

सोरठा

पवनहु तें मन चांड, मनतें आसु उतावला ।
कतहुं मेंड न डांड, मुहमद वहुँ विस्तार सो ॥१००॥

ना-नारद तस पाहरु काया । चारा मेलि फांद जग मावा ॥
नाद वेद औ भूत सँचारा । सब अरुझाई रहा ससारा ॥
आपु निपट निरमल होइ रहा । एकहु बार जाइ नहि गहा ॥
जस चौदह खंड तैस सरीर । जहँवै दुख है तहँवै पीरा ॥
जौन देस महँ सँवरे जहवां । तौन देस सो जानहु तहँवां ॥
देखहु मन हिरदय बसि रहा । खन महँ जाइ जहां कोइ चहा ॥
सोवत अंत-अंत महँ डोलै । जब बोलै तब घट महँ बोलै ॥

दोहा

तन तुरंग पर मनुआ, मन मस्तक पर आसु ।
सोई आसु बोलावई, अनहद बाजा पासु ॥

सोरठा

देखहु कौतुक आइ, रूख समाना बीज महँ ।
आपुहि खोदि जमाइ, मुहमद सो फल चाखई ॥११॥

('अखरावट' से)

२—उम्मत के अंतिम दिन

सुनि फ़रमान हरष जिउ बाढ़े । एक पांव से भए उठि ठाढे ॥
भारि उमत लागी तब तारी । जेता सिरजा पुरुष औ नारी ॥
लाग सबन्ह सहुं दरसन होई । ओहि बिनु देखे रहा न कोई ॥
एक चमकार होइ उजिआरा । छपै बीजु तेहिके चमकारा ॥
चाँद सुरुज छपिहैं बहु जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ॥
सो मनि दियें जो कीन्हि थिराई । छपा सो रंग गात पर आई ॥
ओहु रूप निरमल होइ जाई । और रूप ओहि रूप समाई ॥

ना अस कबहूं देखा, नाकेंहु ओहि भांति ।
दरसन देखि मुहम्मद, मोहि परे बहु भांति ॥५१॥

दुइ दिन लहि कोउ सुधि न सँभारे । बिनु सुधि रहे न नैन उघारे ॥
तिसरे दिन जिबरैल जो आए । सब मद माते आनि जगाए ॥
जे हिय भेदि सुदरसन राते । परे-परे लोटें जस माते ॥
सब अस्तुति कै करैं बिसेखा । ऐस रूप हम कतहुं न देखा ॥
अब सब गएउ जलम दुख धोई । जो चाहिय हठि पावा सोई ॥
अब निहचिंत जीउं बिधि कीन्हा । जौ पिय आपन दरसन दीन्हा ॥
मन कै जेति आस सब पूजी । रही न कोइ आस गति दूजी ॥

मरन गँजन औ परिहँस, दुख दलिद्र सब भाग ।
सब सुख देखि मुहम्मद, रहस कूद जिउ लाग ॥५२॥

जिबराइ कँह आयसु होइहि । अछरिन्ह आइ आगे पथ जोइहि ॥
उमत रसूल केर बहिराउब । कै असवार बिहिस्त पहुँचाउब ॥
सात बिहिस्त बिधि नै औतारा । औ आठईं शदाद सँवारा ॥
सो सब देव उमत कँह बाँटी । एक बराबर सब कँह आँटी ॥
एक-एक कँह दीन्ह निवासू । जगत लोक बिरसैं कबिलासू ॥

चालिस-चालिस हुरें सोई । औ सँग लागि वियाही जोई ॥
औ सेवा कर अछरिन्ह केरी । एक-एक जनि कँह सौ-सौ चेरी ॥
ऐसे जतन वियाहें, जस साजै वरियात !
दूलह जतन मुहम्मद, विहिस्त चले विहँसात ॥५३॥
जिवराइल इतात कँह धाए । चोल आनि उम्मत पहिराए ॥
पहिरहु दगल सुरंग रँग राते । करहु सोहाग जनहु मतमाते ॥
ताज कुलह सिर मुहम्मद सोहै । चंद वदन औ काकव मोहै ॥
न्हाइ खोरि अस वनी वराता । नबी तंबोल खात मुख राता ॥
तुम्हरे रुचे उमत सव आनव । औ सँवारि बहु भांति वखानव ॥
खड़े गिरत मदमाते ऐहैं । चढ़ि के घोड़न कँह कुदरैहें ॥
जिन भरि जलम बहुत हिय जारा । बैठि पांव देइ जमै ते पारा ॥
जैसे नवी सँवारे, तैसे वने पुनि साज ।
दूलह जतन मुहम्मद, विहिस्त करैं सुख राज ॥५४॥
तानव छत्र मुहम्मद माथे । औ पहिरैं फूलन्ह विनु गाँथे ॥
दूलह जतन होव असवारा । लिए वरात जैहैं संसारा ॥
रचि-रचि अछरिन्ह कीन्ह सिगारा । वास सुवास उठे मंहकारा ॥
आज रसूल विमाहन ऐहैं । सव दुलहिन दूलह सहुँ नैहैं ॥
आरति करि सव आगे ऐहैं । नंद सरोदन सव भिलि गैहैं ॥
मँदिरन्ह होइहि सेज विछावन । आजु सवहि कँह भिलिहैं रावन ॥
वाजन वाजैं विहिस्त दुवारा । भीतर गीत उठैं झनकारा ॥
वनि वनि वैठी अछरी, वैठि जोहैं कविलास ।
वेगिहि आउ मुहम्मद, पूजै मन कै आस ॥५५॥
जिवरईल पहिले से जैहैं । जाइ रसूल विहिस्त नियरैहैं ॥
खुलिहैं आठौ पँवरि दुवारा । औ पैठे लागे असवारा ॥
सकल लोग जव भीतर जैहैं । पाछे होइ रसूल सिधैहैं ॥

मिलि हूरें नेवछावरि करिहैं । सबके मुखन्ह फूल असझरिहैं ॥
रहसि-रहसि तिन करव किरीड़ा । अगर कुंकुमा भरा सरीरा ॥
बहुत भांति कर नंद सरोदू । बास सुबास उठै परमोदू ॥
अगर, कपूर, बेना, कस्तूरी । मँदिर सुबास रहब भरपूरी ॥

सोवन आजु जो चाहै, साजन मरदन होइ ।
देंहि सोहाग मुहम्मद, सुख बिरसै सब कोइ ॥५६॥

पैठि बिहिस्त जौ नौविधि पैहैं । अपने-अपने मँदिर सिधैहैं ॥
एक-एक मंदिर सात दुवारा । अगर चंदन के लाग केवारा ॥
हरे-हरे बहु खंड सँवारे । बहुत भांति दइ आपु सँवारे ॥
सोनै-रूपै घालि उचांवा । निरमल कुँह-कुँह लाग गिलाव॥ ।
हीरा रतन पदारथ जरे । तेहि क जोति दीपक जस बरे ॥
नदी दूध अतरन कै बहहीं । मानिक मोति परे भुंइ रहहीं ॥
ऊपर गा अब छाँह सोहाई । एक-एक खंड बहा दुनियाई ॥

तात न जूड़ न कुनकुन, दिवस राति नाहिं दुक्ख ।
नींद न भूख मुहम्मद, सब बिरसैं अति सुक्ख ॥५७॥

देखत अछरिन केरि निकाई । रूपतें मोहि रहल मुरछाई ॥
लाल करत मुख जोहब पासा । कीन्ह चहैं किछु भोग बिलासा ॥
हैं आगे बिनवैं सब रानी । और कहैं सब चेरिन्ह आनी ॥
ए सब आवैं मोरे निवासा । तुम आगे लेइ आउ कविलासा ॥
जो अस रूप पाट परधानी । औ सब हिन्ह चेरिन्ह कै रानी ॥
बदन जोति मनि माथे भागू । औ बिधि आगर दीन्ह सोहागू ॥
साहस करैं सिंगार सँवारी । रूप सुरूप पदमिनी नारी ॥

पाट बैठि नित जोहैं, बिरहन्ह जारैं मांस ॥
दीन दयाल मुहम्मद, मानहु भोग बिलास ॥५८॥

सुनहि सुरूप अर्वाहि बहुभाँती । इन्हिं चाहि जो हैं रूपयाँसी ॥
सातौ पँवरि नाघत तिन पेखव । सातइं आए सो कौतुक देखव ॥
चले जाव आगे तेहि आसा । जाइ परव भीतर कविलासा ॥
तखत वैठि सब देखव रानी । जे सब चाहि पाट परधानी ॥
दसन जोति उट्ठ चमकारा । सकल विहिस्त होइ उँजियारा ॥
बारह बानी कर जो सोना । तेहितें चाहि रूप अति लोना ॥
निरमल वदन चंद कै जोती । सबक सरीर दियैं जस मोती ॥
बास सुवास छुवै जेहि, वेधि भँवर कहँ जात ।
वरसो देखि महम्मद, हिरदै महँ न समात ॥५९॥
पैग-पैग जस-जस नियराउब । अधिक सवाद मिलै कर पाउब ॥
नैन समाइ रहै चुप लागे । सब कहँ आइ लेहिं होइ आगे ॥
बिसरहु दूलह जोवन बारी । पाएउ दुलहिन राजकुमारी ॥
एहि महँ सो कर गहि लेइ जैहैं । आधे तखत पै लै वैठे हैं ॥
सब अछूत तुम कहँ भरि राखे । महँ सवाद होइ जो चाखे ॥
नित पिरीत नित नव-नव नेहू । नित उठि चौगुन होइ सनेहू ॥
नित्तइ नित्त जो वारि वियाहैं । वीसौ वीस अधिक ओहि चाहैं ॥
तहाँ न मीचु न नींद दुख, रह न देह महँ रोग ।
सदा अनंद 'मुहम्मद', सब सुख मानै भोग ॥६०॥
('आखिरी कलाम' से)

जायसी के सोरठे—

साईं केरा नावँ, हियापूर काया भरी ।
मुहम्मद रहा न ठावँ, दूसर कोइ न समाय अब ॥१॥

हुता जो एकहि संग, हौं तुम्ह काहे बीछुरा?
अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ किछु ॥२॥
परै प्रेम के झेल, पिउ सहुँ धनि मुख सो करै।
जो सिर सेंती खेल, मुहमद खेल सो प्रेमरस ॥३॥
बुन्दहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं?
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महँ ॥४॥
सुन्न समुद चख माँहि, जल जैसी लहरैं उठहिं।
उठि-उठि मिटि-मिटि जाँहि, मुहमद खोज न पाइये ॥५॥
एकहि ते दुइ होइ, दुइसौं राज न चलि सकै।
बीचु तें आपुहि खोइ, मुहमद एकै होइ रहु ॥६॥
लछिमी सत कै भेरि, लाल करै वहु मुख चहै।
दीठि न देखै फेरि, मुहमद राता प्रेमसों ॥७॥
कटु है पिउ कर खोज, जो पावा सो मरजिया।
तहँ नहि हँसी न रोज, मुहमद ऐसे ठावँ वह ॥८॥
हिया कँवल जस फूल, जिउ तेहि महँ जस बासना।
तन तजि मन महँ भूल, मुहमद तव पहचानिए ॥९॥
अपने कौतुक लागि, उपजाएन्हि बहु भाँति कै।
चीन्हि लेहु सो जागि, मुहमद सोइ न खोइए ॥१०॥

('अखरावट' से)

३—शेख़ फ़रीद

शेख़ फ़रीद प्रसिद्ध बाबा फ़रीद के वंशधर थे जिनको शेख फ़रीदुद्दीन चिश्ती वा शकरगंज (सं० १२३०–१३२२) भी कहा जाता है। इनके

भी कई अन्य नाम जैसे 'फ़रीद सानी', 'शेख ब्रह्म साहब', 'सलीस फ़रीद' 'शेख इब्राहीम' आदि सुने जाते हैं। इनका जन्मस्थान दीपालपुर का निकटवर्ती कोठीवाल नामक गाँव समझा जाता है, किंतु इनके जन्म समय का पता नहीं चलता। डा० मेकालिफ ने 'खोलासातुत्तवारीख' के आधार पर बतलाया है कि इनकी मृत्यु २१ वीं रज्जब हि० ९६० अर्थात् सन् १५५३ ई० (सं० १६१०) में हुई थी। शेख फ़रीद के साथ गुरु नानक देव की भेंट दो बार हुई थी और दोनों बार सत्संग हुआ था। इनके शिष्यों में शेख सलीम चिश्ती फ़तेहपुरी का नाम बहुत प्रसिद्ध है और इनकी रचनाएं 'आदि ग्रंथ' में संगृहीत हैं जिनमें कई 'सलोक' और कुछ पद हैं।

शेख फ़रीद के सलोकों में उनके कोमल हृदय एवं गहरे अनुभव का का अच्छा परिचय मिलता है। कुछ उदाहरण —

सलोक (साखी का दोहे)

जिदु वहूटी मरण बरु, लै जासी परणाइ।
आपण हथी जोलिकै, केगलि लगै धाइ॥१॥
विरहा बिरहा आखीऐ, विरहा तू सुलतानु।
फ़रीदा जितु तनि विरहु न ऊपजै, से तनु जाणु मसाणु॥२॥
फ़रीदा बारि पराइऐ, वैसणां सांई मुझै न देहि।
जे तू ईवै रपसी जीवु सरीरहु लेहु॥३॥
फ़रीदा जो तै मारनि मुकीआं, तिन्हा न मारे घुंमि।
आपन डै घरि जाइऐ, पैर तिन्हा दे चुंमि॥४॥
फरीदा मै जानिआ दुषु मुझकू, दुषु सवाइऐ जगि।
ऊँचे चढ़िकै देषिआ, तां घरिघरि ईहा अगि॥५॥
कागा करंग ढढोलिआ, सगला षाइआ मासु।
ये दुइ नैना मति छुहउ, पिव देषन की आस॥६॥

आपु सवारहि मैं मिलहि, मैं मिलिआ सुखु होइ।
फ़रीदा जे तू मेरा होइ रहहि, सभु जगु तेरा होइ ॥७॥
पाड़ि पटोला धजकरी, कंवलड़ी पहिरेउ।
जिन्ही वेसी सहु मिलै, सोइ वेस करेउ ॥८॥
फ़रीदा पालकु पलक महि, पलक वसै रव मांहि।
मंदा किसनो आपीअै, तिसु विनु कोई नांहि ॥९॥
फ़रीदा जिन लोइण जगु मोहिआ, से लोइण मैं डिटु।
कजल रेख न सहदिआ, से पंखी सुइ बहिठु ॥१०॥
फ़रीदा खाकु न निंदीअै, खाकु जेडु न कोइ।
जीव दिआ पैरा तलै, मुइआ ऊपरि होइ ॥११॥
हंसा देखि तरंदिआ, बगा आइआ चाउ।
डुबि मुए बग बपुड़े, सिरु तलि ऊपरि पाउ ॥१२॥

४—यारी साहब

यारी साहब का मूल नाम यार मुहम्मद था और इनके पूर्वजों का संबंध दिल्ली के किसी शाही घराने के साथ रह चुका था। ये पहले सूफ़ी संप्रदाय के अनुयायी थे। किंतु पीछे बावरी साहिबा के शिष्य बीरू साहब के प्रभाव में आगए। ये संतपरंपरा के अंतर्गत गिने जाने वाले बावरी-पंथ के प्रधान प्रचारकों में अन्यतम हैं। इनकी बहुत सी बानियाँ आज भी लोकप्रिय हैं। इनका जीवन-काल विक्रम की १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पड़ता है और इनकी एक गद्दी दिल्ली में इस समय भी वर्त्तमान है। इनके मुरीदों में केसोदास, सूफ़ीशाह, शेखनशाह, हस्त मुहम्मद और बूला साहब अधिक प्रसिद्ध हैं । इनकी बानियों का एक संग्रह 'रत्नावली'

नाम से प्रयाग के 'बेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित हो चुका है जिसमें इनके चुने हुए भजन, कवित्त, झूलने, साखी और अलिफ़नामा हैं।

भजन वा शब्द

(१) हमारे एक अलह पिय प्यारा है ॥१॥
घट-घट नूर मुहम्मद साहब, जाका सकल पसारा है ॥२॥
चौदह तबक जाकी रुसनाई, झिलमिलि जोति सितारा है ॥३॥
बे नमून बेचून अकेला, हिंदु तुरुक से न्यारा है ॥४॥
सोइ दरवेस दरस जिनपायो, सोई मुसलम सारा है ॥५॥
आवै न जाइ मरै नहिं जीवै, यारी यार हमारा है ॥६॥

(२) सुन्नके मुकाम में बेचुन की निसानी है॥
जिकिर है सोई अनहद बानी है ॥१॥
अगम को गम्म नाहीं, झलक पिसानी है॥
कहै यारी आपा चीन्हें सोई ब्रह्मज्ञानी है ॥२॥

झूलना

(१) बिन बंदगी इस आलम में खाना तुझे हराम है रे।
बंदा करै सोइ बंदगी, खिदमत में आठो जाम है रे॥
यारी मौला बिसारि के, तू क्या लागा बेकाम है रे।
कुछ जीतेजी बंदगी करले, आखिर को गोर मुकाम है रे ॥१॥

(२) आँखी सेती जो देखिये, सो तो आलम फ़ानी है।
कानों सेती जो सुनिये रे, सो तो जैसे कहानी है॥
इस बोलते को उलटि देखै, सोई आरिफ़ सोई ज्ञानी है।
यारी कहै यह बूझि देखा, और सबै नादानी है ॥२॥

(३) सूली के पार मेहर पेखा, मलकूत जवरूत लाहूत तीनो।
लाहूत सेती नासूत है रे, हाहूत के रस में रंग भीनो॥
धुवां होइके ऊपर चढ़ो, मुतलक़ मोतीका नूर चूनो॥
आँखिन चितै के चैठ यारी, माते माते माते वूनो॥३॥

(४) अंधा पूछै आफ़तावको रे, उसे किस मिसाल वतलाइयें जी।
वा नूर समान नहीं औरै, कौने तमसील सुनाइये जी॥
सव अँधरे मिलि दलील करें, बिन दीदा दीदार न पाइये जी।
यारी अंदर यकीन बिना, इलिमसे क्या वतलाइये जी॥४॥

(५) हमतो एक हुबाव हैं रे, साकिन बहरके बीच सदा।
दरियाव के बीच दरियाव कै मौज है, बाहर नाही ग़ैर ख़ुदा॥
उठने में है हुबाब देखो, मिटने में है मुतलक़ सौदा।
हुबाब तो ऐन दरियाव यारी, वोहि नाम धरो है बुदबुदा॥५॥

साखी (दोहे)

आठ पहर निरखत रहौ, सनमुख सदा हजूर।
कह यारी घरही मिलै, काहे जाते दूर॥१॥
दछिन दिसा भोर नइहरी, उत्तर पंथ ससुराल।
मानसरोवर ताल है, (तहं) कामिनि करत सिंगार॥२॥
आतम नारि सोहागिनी, सुन्दर आपु सँवारि।
पिय मिलवे को उठि चली, चौमुख दियना बारि॥३॥
धरती आकास के बाहरे, यारी पिय दीदार।
सेत छत्र तहँ जगमगै, सेत फटिक उजियार॥४॥
तारनहार समर्थ है, अवर न दूजा कोय।
कह यारी सतगुरु मिलै, (तौ) अचल रुअस्मर होय॥५॥

५—पेमी

पेमी वस्तुतः किसी सूफ़ी मुस्लिम कवि का उपनाम है जिसके मूल नाम का कुछ पता नहीं चलता। इस कवि की एक रचना 'पेमपरकाश' नाम की मिली है जिसका विषय सूफ़ीमत के अनुसार वर्णन किया गया ईश्वर-प्रेम प्रतीत होता है। इसमें पहले खुदा एवं रसूल की वंदना और स्तुति की गई है। फिर किसी शाह मुहीउद्दीन की तारीफ़ है जो कवि का अपना पीर जान पड़ता है। हस्तलिखित पुस्तक केवल साठ-बासठ पृष्ठों की ही है। किंतु उसमें कवित्त, छप्पय और दोहों के अतिरिक्त राग-रागिनियों का भी समावेश है और उसका प्रेम-संदेश एक उच्चकोटि के उद्देश्य के साथ दिया गया है। कवि ने उसमें अपना परिचय देते समय केवल इतना ही बतलाया है कि मैं श्रीनगर का निवासी हूँ और 'मारहर' ऐसे नगर में आ बसा हूँ जहाँ न तो 'साह' रहते हैं न 'चोर' ही। वह अपने को 'पूरब' का 'पुरबिया' भी कहता है जिसकी 'जातपांत' कोई नहीं पूछा करता और इस परिचय में कोई आध्यात्मिक संकेत भी हो सकता है। पुस्तक-रचना के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि वह 'औरंगजेब के राज में' निर्मित हुई जो समय सं० १७१५ से सं० १७६४ वि० तक रहा था।

पद

मधुकर जात न ओसन प्यास ॥ टेक ॥
ध्यान ज्ञान कछु काम न आवत, कीनो बहुत अभ्यास ॥१॥
हम चाहक वह रूप मनोहर, तुम क्या जोग बखानो।
आंब छाड़ि के गिने रूख कूं, सोई पुरुष अमानो ॥२॥
जामे सुरत होय ध्यानन की, ताको जाय बताओ।
हम डोरत वौरें बर्रानी, हमे कहा समझाओ ॥३॥

जो तुरंग बनता जन बौरे ताको दीजे आस।
पेमी दरसन हेत को अरनी, बन-बन फिरत उदास॥४॥

दोहे

पेमी हिन्दू तुरक में, हर रंग रहौ समाइ ।
देवल और मसीत में, दीप एक है भाइ॥१॥
मारग सिंध परेम को, जानो चाहे कोय।
मगर मच्छ के बदन में, प्रथम बसेरो होय॥२॥
सुध आवे जब मिन्त की, औ होत सुरत में ऐन।
मोती माला आंस की, नौछावर करैं नैन॥३॥
हौं चकई वा सिंध की, जहां न सूरज चन्द ।
रात दिवस नहि होत है, ना दुख नाहि अनन्द॥४॥
मन पारा तन की खरी, ध्यान ज्ञान रस मोय।
बिरह अगन सू फूंक दै, निरमल कुंदन होय॥५॥
जहां पीत तहं बिरह है, जहां सुख-दुख देख।
जहां फूल तहां कांट है, जहां दरब तहां सेख॥६॥
बीज बिरछ नहि दोइ है, रुई चीर नहि दोय।
दध तरंग नहि दोइ हैं, बूझो ज्ञानी लोय॥७॥
रकत पान पकवान तन, हियो रसोई सार।
बैठो बिरहा रावरी, सदा करत जेवनार॥८॥
पेमी हरदरसन ललित, फूल रही फुलवार।
फिल संवत फिल अर्ज में, देखो आंख पसार॥९॥
तुम सूरज हम दीप निस, अजुगति कहै सुनाय।
बिन देखैं नहि रहि सकूं, देखे रहो न जाय॥१०॥

६—बुल्लेशाह

बुल्लेशाह का जन्म लाहोर ज़िले के पंडोल नामक गाँव में सं० १७३७ में हुआ था और इनके पिता का नाम मुहम्मद दरवेश था। ये सूफ़ी इनायत-शाह को अपना पथ प्रदर्शक पीर स्वीकार करते थे और क़ादिरी शत्तारी संप्रदाय के अनुयायी थे। ये आमरण ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करते रहे और इनकी साधना का मुख्य स्थान कुसूर था जहाँ पर अंत में इनका देहांत भी हो गया। इनकी मृत्यु सं० १८१० में हुई थी और इनकी क़ब्र कुसूर गाँव में इस समय भी वर्त्तमान है। इनकी रचनाओं में 'सीहर्फ़ी,' अठवारा, बारामासा, काफ़ी, दोहरे आदि विशेष रूपमें प्रसिद्ध हैं। उनका एक संग्रह कुसूर से ही प्रकाशित भी हो चुका है। ये बड़े स्पष्टवादी थे। इनकी आलोचनाओं में कबीरसाहब का सा खरापन और चुटीलापन भी दीख पड़ता है। इनकी भाषा में पंजाबीपन पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है और इनकी रचनाओं का विषय अधिकतर चेतावनी से संबंध रखता है।

उदाहरण

पद

(१) टुक बूझ कवन छप आया है ॥ टेक ॥
इक नुक़ते में जो फेर पड़ा, तब ऐन-ग़ैन का नाम धरा।
जब मुर्शिद नुक़ता दूर किया, तब ऐनो ऐन कहाया है ॥१॥
तुसी इल्म कितावां पढ़ देहों, कहे उलटे माने कर देहो।
बेमूजब ऐवें लड़दे हो, केहा उलटा वेद पढ़ाया है ॥२॥
दुइ दूर करो कोइ सोर नहीं, हिंदु तुरक कोई होर नहीं।
सब साधु लखो कोई चोर नहीं, घट-घट में आप समाया है ॥३॥

ना मैं मुल्ला ना मैं क़ाजी, ना मैं सुन्नी ना मैं हाजी।
बुल्ले शाह नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है ॥४॥

(२) माटी खुदी करेंदी यार ॥ टेक ॥
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटीदा असवार ॥१॥
माटी माटीनूं मारन लागी, माटी दे हथियार।
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार ॥२॥
माटी बाग बगीचा माटी, माटी दी गुलज़ार।
माटी-माटी नू देखन आई, है माटीदी बहार।
हंस खेल फिर माटी होई, पौंदी पांव पसार।
बुल्लेशाह बुझारत बूझी, लाह सिरों भों भार ॥४॥

(३) अब तो जाग मुसाफ़िर प्यारे!
रैन घटी लटके सब तारे ॥ टेक ॥
आवा गौन सराई डेरे, साथ तमार मुसाफ़िर तेरे।
अजे न सुनदा कूच नकारे ॥१॥
करले आज करनदी वेला, बहुरि न होसी आवन तेरा।
साथ तेरा चल चल्ल पुकारे ॥२॥
आपो अपने लाहो दौड़ी, क्या सरधन क्या निरधन बौरी।
लाहा नाम तू लेहु सँभारे ॥३॥
बुल्ले सहुदी पैरी परिये, ग़फलत छोड़ हीला कुछ करिये।
मिरग जतन बिन खेत उजारे ॥४॥

(४) कद मिलसी मैं विरह सताई नूं।
आप न आवै न लिखि भेजै, भट्ठि अजेही लाई नूं।
तैं जेहा कोइ होर न जाणा, मैं तनि सूल सवाई नूं ॥१॥
रात दिनें आराम न मैंनू, खावै विरह कसाई नूं।
बुल्लेशाह धृग जीवन मेरा, जौं लग दरस दिखाई नूं ॥२॥

(१) चे- चानणा कुल्ल जाहानादा तूं । तेरे आसरे होइ विवहार सारा ।
वेइ सभण की आंखमों देखदाहै । तुझे सूझता चानणां औ अँध्यारा ।
नित्त सोवणा जागणा खाव तीनो । देख तेरे आगे होए कई वारा ।
वुल्लाशाह परकाश सरूप तेरा । घट वद्ध नहि होत है एक सारा ॥१॥

(२) ज़ाल-ज़राभी शक्क ना रख मनतें, तुहीं होहु वेशक्क खुद खसम साईं ।
जिवें सिंघ भुल्लाय वल आपणे नूं, चरे घास मिल अजामें अजा न्याईं।
पिछे समझ बल गरजियो अजामारी, भयो सिंघ को सिंघ कछु भेद नाही।
तैसे तोहितों तरां कछु अवर धारी । वुल्लाशाह सँभाल तूं आप ताईं ।

(३) शीन-शुवह नाही जरा एक इसमें, सदा आपणा आप सरूप है जी ।
नहीं ज्ञान अज्ञानदी ठौर ओथे, कहां सूरमें छाउं अर धूपहै जी ॥
पड़ा सेज के माहिही सही सोया, कूड सुपन का रंगअर रूप है जी ।
वुल्लाशाह संभाल जब मूल देख्या, ठौर-ठौर में वही अनूप है जी ॥३॥

('सोहर्फ़ी' से)

७—दीन दरवेश

दीन दरवेश गुजरात प्रांत के पालनपुर राज्य के अंतर्गत किसी गांव के रहने वाले एक साधारण लोहार थे। ये कुछ दिनों तक ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना के साथ मिस्त्री का काम करते रहे और गोले से एक हाथ कट जाने के कारण उस नौकरी से अलग हुए। बेकार बनकर भ्रमण करते समय इन्होंने अनेक साधुओं और सूफ़ियों के साथ सत्संग किया जिसके प्रभाव में ये विरक्त हो गए। ये अंत में काशी आकर रहने लगे थे और समय-समय पर उपदेश भरी रचनाएँ किया करते थे। इनकी पंक्तियों में अनुभूति की गंभीरता एवं हृदय की उदारता विशेष रूपसे लक्षित होती

है। इनकी भाषा पर अपने जन्मस्थान की ओर का भी प्रभाव है। दीन दरवेश अपनी फ़क़ीरी की दशा में ही विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध समाप्त होते-होते मर गए थे।

कुंडलिया

(१) गड़े नगारे कूचके, छिनभर छाना नांहि।
कौन आज को काल को, पाव पलक के मांहि॥
पाव पलक के मांहि, समझ ले मनुवां मेरा।
धरा रहै धनमाल, होयगा जंगल डेरा॥
कहै दीन दरवेश, गर्व मत करै गँवारे।
छिन भर छाना नांहि, कूचके गड़े नगारे॥१॥

(२) बंदा बहुत न फूलिए, खुदा खियेगा नंहि।
जोर जुलम कीजै नहीं, मिरतलोक के मांहि॥
मिरतलोक के मांहि, तजुरबा तुरत दिखावै।
जो नर करै गुमान, सोई जग खत्ता खावै॥
कहै दीन दरवेश भूल मत ग़ाफिल गंदा।
मिरतलोक के मांहि, फूलिए बहुत न बंदा॥२॥

(३) माया-माया करत है, खरच्या खाया नांहि।
सो नर ऐसे जाहिंगे, ज्यों बादर की छांहि॥
ज्यों बादर की छांहि जायगा, आया जैसा।
जाना नंहि जगदीश प्रीतिकर जोड़ा पैसा॥
कहै दीन दरवेश नहीं कोइ अम्मर काया।
खरच्या खाया नाहिं करत नर माया-माया॥३॥

(४) हिंदू कहें सो हम बड़े, मुसलमान कहें हम्म।
एक मूंग दो फाड़ हैं, कुण जादा कुण कम्म॥

कुण जादा कुण कम्म, कभी करना नहि कजिया।
एक भगत हो राम, दूजा रहिमान सो रजिया॥
कहँ दीन दरवेश, दोय सरिता मिल सिंधू।
सबका साहब एक, एक मुसलिम, एक हिंदू॥४॥

८—नज़ीर

नज़ीर अथवा नज़ीर अकबराबादी का मूल नाम वली मुहम्मद था। इनके पिता दिल्ली के रहने वाले मुहम्मद फ़ारूक़ थे। ये आगरा अर्थात् अकबराबाद में बाद में आ बसने के कारण अकबराबादी नाम से प्रसिद्ध हुए। ये जीविका के लिए धनियों के लड़के पढ़ाते रहे। ये अरबी एवं फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे और स्वभाव से संतोषी, विनोदप्रिय तथा विचार स्वातंत्र्य के प्रेमी थे। इनमें धार्मिक उदारता भी बहुत थी। ये अपने जीवन के अंतिम दिनों में सूफ़ी विचारधारा के अनुयायी हो गए थे। इनका देहान्त सं० १८८७ के लगभग हुआ। इनकी रचनाएँ बड़ी सजीव हैं और उनमें प्रवाह एवं स्वाभाविकता के गुण अच्छी मात्रा में विद्यमान हैं। इनकी कविताओं में इनके व्यक्तित्व एवं गहरी स्वानुभूति की छाप सर्वत्र लक्षित होती है और इनकी भाषा अपनी सादगी और चुटीलेपन में अद्वितीय है।

उदाहरण

(१) जिस सिम्त नजर कर देखे हैं, उस दिलबर की फुलवारी है।
कहीं सब्ज़ी की हरियाली है, कहीं फूलों की गुलकारी है॥
दिन रात मगन खुश बैठे हैं, और आस उसीकी भारी है।

बस आपही वह दातारी है, और आपही वह भंडारी है ॥
हर आन हँसी हरआन खुशी, हर वक़्त अमीरी है बाबा ।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए, तब क्या दिलगीरी है बाबा ॥१॥

(२) हम चाकर जिसके हुस्न के हैं, वह दिलबर सब से आला है ।
उसने ही हमको जी बख़्शा, उसने ही हमको पाला है ॥
दिल अपना भोला भाला है, और इश्क़ बड़ा मतवाला है ।
क्या कहिए और नजीर आगे, अब कौन समझने वाला है ॥
हर आन हंसी हर आन खुशी, हर वक़्त अमीरी है बाबा ।
जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए, तब क्या दिलगीरी है बाबा ॥२॥

(३) क्या इल्म उन्होंने सीख लिए, जो बिन लेखे को बांचे हैं ।
औ बात नहीं मुंह से निकले, बिन होंठ हिलाए जांचे हैं ॥
दिल उनके तार सितारों के, तन उनके तबल-तमाँचे हैं ।
मुंहचंग जबाँ दिल सारंगी, पा घुंघरू हाथ कमाँचे हैं ॥
हैं राग उन्हीं के रंग भरे, औ भाव उन्हीं के साँचे हैं ।
जो बेगत बेसुर ताल हुए, बिन ताल परवावज नाचे हैं ।

(४) सब होश बदन का दूर हुआ, जब गत पर आ मिरदंग बजी ॥
तन भंग हुआ दिल दंग हुआ, सब आन गई बे आन सजी ॥
यह नाचा कौन नजीर अबमां, औ किसने देखा नाच अजी ।
जब बूंद मिली जा सागर में, इस तान का आखिर निकला जी ॥
हैं राग उन्हीं के रंग भरे, औ भाव उन्हीं के साँचे हैं ।
जो बेगत बेसुरताल हुए, बिन ताल परवावज नाचे हैं ॥२॥

---

(५) जो मरना मरना कहते हैं, वह मरना क्या बतलाए कोई ।
वाँ जो हर बांहें खोल मिले, सब अपनी-अपनी छोड़ दुई ॥

सी डाली आंख दुरंगी की, जब एकरंगी ने मार सुई।
नै मर्दों का गुलशोर रहा, नै औरत का कुछ आह उई॥
माटी की माटी आग अगिन, जल नीर पवन की पवन हुई।
अब किससे पूछिए कौन मुआ, औ किससे कहिए कौन मुई॥१॥

(६) यह बात न समझे और सुनो, जो लकड़ीमें थी आग लगी।
जब बुझकर ठंडी राख हुई, तो उसकी आंच कहा पहुँची॥
याँ एक तरफ़ तो दूल्हा था, औ एक तरफ़ को दुलहन थी।
जब दोनों मिलकर एक हुए, फिर बात रही क्या पर्दे की॥
माटी का माटी आग अगिन, जल नीर पवन की पवन हुई।
अब किससे पूछिए कौन मुआ, औ किससे कहिए कौन मुई॥२॥

(७) यां जिनको जीना मरना है, ऐ यार उन्हीं को डरना है॥
जब दोनों दुख-सुख दूर हुए हैं, फिर जीना है न मरना है।
इस भूल-भुलैया चक्कर में, टुक रस्ता पैदा करना है।
सब छोड़ भरम की बातों को, इस बात उपर दिल धरना है॥
माटी की माटी आग अगिन, जल नीर पवन की पवन हुई
अब किससे पूछिए कौन मुआ, औ किससे कहिए कौन मुई॥३॥

---

(८) यह पेट अजब है दुनिया की, औ क्या-क्या जिन्स इकट्ठी हैं,।
यां माल किसी का मीठा है, औ चीज किसी की खट्टी है॥
कुछ पकता है कुछ भुनता है, पकवान मिठाई पट्टी है।
जब देखा खूब तो आखिर को, नै चूल्हा भाड़ न भट्टी है॥
गुल शोर बबूला आग हवा, औ कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, यह धोके की सी टट्टी है॥१॥

(९) अब किसका रंग बुरा कहिए, औ किसका रूप बुरा कहिए।
एकदम की पैंठ लगी है यह, अंबोह मजा चरचा कहिए ॥
यह सैर तमाशा देख नजीर, अब जा कहिए बेजा कहिए।
कुछ बात नहीं बन आती है, चुपचाप पहेली क्या कहिए ॥
गुलशोर बबूला आग हवा, औ कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को, यह धोके की सी टट्टी है ॥२॥

---

(१०) ले सब्र कनाअत साथ मियां, सब छोड़ ये बातें लोभ भरी।
जो लोभ करे उस लोभी की, नहीं खेती होती हरीभरी ॥
संतोष तवक्कुल हिरनो ने, जब हिर्स की खेती आन चरी।
फिर देख तमाशे क़ुदरत के, औ लूट बहारें हरी भरी ॥
जब आसा-निस्ता दूर हुई, औ आई गत संतोष भरी।
सब चैन हुए आनंद हुए, बम बोलो शंकर हरी-हरी ॥१॥

(११) टुक अपनी हिम्मत देख मियां, तू आप बड़ा दातारी है।
यह हिर्स तमा के करने से, अब तेरा नाम भिखारी है ॥
हर आन मरे है लालच पर, हर साइत लोभ उधारी है।
ऐ लालच मारे लोभ भरे, सब हिर्स हवा की ख़्वारी है ॥
जब आसा-निस्ता दूर हुई, औ आई गत संतोष भरी।
सब चैन हुए आनंद हुए, बम शंकर बोलो हरी-हरी ॥२॥

(१२) इस हिर्स हवा की झोली से है, तेरी शक्ल भिखारी की।
पर तुझको अब तक खबर नहीं, ऐ लोभी अपनी ख़्वारी की ॥
संतोषी साध सरूपी बन, तज मिन्नत नर औ नारी की।
ले नाम कृष्ण मनमोहन का, जै बोल अटल बनवारी की ॥

जब आसा-निस्ता दूर हुई, औ आई गत संतोष भरी।
सब चैन हुए आनंद हुए, बमशंकर बोलो हरी-हरी ॥३॥

---

(१३) जब चलते-चलते रस्ते में, यह गौन तेरी ढल जाएगी।
एक बधिया तेरी मिट्टी पर, फिर घास न चरने आएगी ॥
यह खेप जो तूने लादी है, सब हिस्सों में बँट जाएगी।
घी पूत जमाई बेटा क्या, बंजारन पास न आएगी ॥
सब ठाट पड़ा रह जायगा, जब लाद चलेगा बंजारा ॥१॥

(१४) क्या जीपर बोझ उठाता है, इन गोनों भारी-भारी के।
जब मौत का डेरा आन पड़ा, फिर दोनों हैं ब्योपारी के ॥
क्या साज जड़ाऊ जर जेवर, क्या गोटे थान किनारी के।
क्या घोड़े जीन सुनहरी के, क्या हाथी लाल असारी के ॥
सब ठाट पड़ा रह जाएगा, जब लाद चलेगा बंजारा ॥२॥

९—हाजी वली

हाजी वली के विषय में केवल इतना ही लिखा मिलता है कि वे "कस्बा नूद इलाका ग्वालियर" के निवासी थे। वे कबसे कबतक जीवित रहे और 'प्रेमनामा' के अतिरिक्त उन्होंने अन्य कोई भी रचना की थी वा नहीं इसका कुछ पता नहीं चलता। 'मिश्रबंधु विनोद' (तृतीय भाग, पृ० ११४८) में प्रेमनामा के रचयिता का नाम केवल 'हाजी' मात्र दिया गया है। उनके कविता-कालके संबंध में लिखा गया है कि वह सं० १९१७ के पूर्व रहा होगा। किंतु इसके लिए कोई कारण नहीं बतलाया गया है। लखनऊ के

'नवलकिशोर प्रेस' द्वारा फ़ारसी लिपी में प्रकाशित 'प्रेमनामा' के १७ पृष्ठों में प्रेम का रहस्य प्रधानतः संवादों के आधार पर खोला गया है। कवि ने रचना के आरंभ में ईश्वरादि की स्तुति कर अपने पीर सैयद मुहम्मद अबू सईद तथा अपने मुरशिद शेख अहमद बिन कुतुबुद्दीन के नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया है, परंतु उनका कोई विशेष परिचय नहीं दिया है। पुस्तक की रचना पद्धति और उसके विषय की प्रतिपादन शैली से भी स्पष्ट जान पड़ता है कि कवि सूफ़ी संप्रदाय का अनुयायी रहा होगा। उसके पीर को यदि शाह अबू सईद भी कहा जाता रहा हो तो वे नक़्शबंदिया वर्ग के सूफ़ी थे और उनकी मृत्यु सं० १८९१ के अंतर्गत टोंक में हुई थी।

दोहे

यह कहते हैं नेरें, वह कहते हैं दूर।
या सें यही विचार के हाजी भये हजूर ॥१॥
जरत-जरत जिव जर गया, तब मैं करी पुकार।
उलझा झाड़ प्रेम का, हाजी बेग नेवार ॥२॥
हँसते गोरख ना मिला, जिन पाया तिन रोय।
जो हँसते पिव पाइये, कौन दुहागिन होय ॥३॥
तन लंकामें रावना, सीता धरी छिपाय।
हाजी हनवँत वीर बल, सो देत लूका लगाय ॥४॥
हाजी दफ़्तर धोइ धरा, अपना आप विचार।
यह तो मारग प्रेम का, तिनके ओट पहार ॥५॥
एक कहूं तो एक है, दोय कहूं तो दोय।
हाजी दूजा दूर कर, रहे अकेला होय ॥६॥
गेहूं चने जुवार-जौ, अपना-अपना मोल।
निखरी पकड़ बराबरी, सो हाजी झुकना बोल ॥७॥

कानं सुन रीझे नहीं, औ पूछे उतर न देय ॥
नैन सैन बतायके, हाजी हरिसूं नेह ॥८॥

करना होय सो आज कर, काल्ह परों दे छाड़ ॥
हाजी दुलहिन सासरे सो सास न माने लाड़ ॥९॥

जो चाहे सोई गढ़े, हाजी पेम लोहार ॥
काम पड़े पहचानिये, को लोहा को सार ॥१०॥

जो कुछ गढ़े सो आज गढ़, हाजी लागा दाव ॥
जनम सिराना जात है, लोहे का सा ताव ॥११॥

देखी पी बोली नहीं, हँसी औ साधी मौन ॥
पेम दिखाई दे गया, सो काटे ऊपर लोन ॥१२॥

गुरु जिन्होंके आंधरे, चेला लगे न घाट ॥
आगे-पाछे हो चलें, सो दोऊ बारह बाट ॥१३॥

सबुन साजी सानको, घर-घर प्रेम डुबोय ॥
हाजी ऐसा धोइये, जनम न मैला होय ॥१४॥

मुख दरपन है आरसित, हाजी दरस अलेख ॥
जो तू चाहे आपको, आप आपमें देख ॥१५॥

रैन अंधेरी पीउ दुख, कोकिल करत कलोल ।
विरहिन जरती देख के, सरग हँसो मुख खोल ॥१६॥

१०—अब्दुल समद

इनका पूरा नाम हज़रतशाह साहब क़िबल: मुहम्मद अब्दुल समद साहब उर्फ़ 'रन मस्त' खां साहब दिया मिलता है। इनके भजनों का एक संग्रह प्रकाशित है जिसमें संतो और सूफ़ियों के ढंग पर पदों की रचना की गई

जान पड़ती है। रचयिता ने प्रायः सर्वत्र अपनी धार्मिक उदारता प्रकट करने की चेष्टा की है और कहीं-कहीं पर सांप्रदायिकता द्वारा प्रभावित लोगों को फटकार भी सुनाई है। इस कवि के समय अथवा व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ पता नहीं चलता। 'मस्ता' उपनाम दीख पड़ता है।

भजन

(१) हर-हर करे औ गुर को देखे उसको मिलता प्यारा है ॥टेक॥
नाम निरंजन का मधु पीवे, ध्यान करे मधुवारा है।
पाक रसूल का आशिक़ होवे, वही मुक्ख मतवारा है ॥१॥
अलख लखे औ सब को मेटे, उसने ग्यान सवारा है।
पट भीतर के चित से खोले, फिर क्या साहब न्यारा है ॥२॥
क्या है अचरज देखो साधो, बूंद में समुंद समाया है।
जो उसको पहचाने 'मस्ता', वोही गुरू हमारा है ॥३॥

(२) जो राम रत जाने नहीं, बंभन हुआ तो क्या हुआ ॥टेक॥
पोथी बगल में दाबकर, कहता फिरै हैगा कथा।
अपनी कथा जाने नहीं, पंडित हुआ तो क्या हुआ ॥१॥
जोगी गोसाईं से बड़े, कपड़े रगे हैं गेरुए।
मनको तो रंगते हैं नहीं, कपड़े रंगे तो क्या हुआ ॥२॥
सेली औ अलफी डालके, बन बैठे हैंगे शाह जी।
दिल का कुफ़र तोड़ा नहीं, जो शाह हुआ तो क्या हुआ ॥३॥
भंगे शरावें पीवते, चिलमें उड़ावें चरस की।
पर वह नशा पीया नहीं, संगड़ हुआ तो क्या हुआ ॥४॥
पढ़कर किताबें बहुत सी, कहता फिरा है और को।
हक अल् यक़ीं जाना नहीं, आलिम हुआ तो क्या हुआ ॥५॥

मसजिद में जाकर जाहिदां, सिजदा करै है दमबदम।
औ दिल तो झुकता ही नहीं, जो सर झुका तो क्या हुआ ॥६॥
क़ाजी अदालत बैठ कर, करता अदल है और का।
अपना अदल करता नहीं, आदिल हुआ तो क्या हुआ ॥७॥
बन्दा है कर तूं बन्दगी, जब तक तेरी है जिन्दगी।
गर बन्दगी करता नहीं, बन्दा हुआ तो क्या हुआ ॥८॥
यह 'मस्त' बौरा है बड़ा, कहता यही है हर घड़ी।
औ आप अंधा हो रहा, जो कह गया तो क्या हुआ ॥९॥

(३) साधो क्यों तूं रब का नाम बिसारे।
रब के बिसारे से ऐन बाजी हारे ॥टेक॥
जायके गढ़पर तोप ध्यान धर, ग्यान का गोला डारे।
प्रीत की रंजक देकर साधो, तक तक बैरी को मारे ॥१॥
फ़ौज पाप औ तोप भूल की, गरम का गोला भर के।
माया अगिन से देके फलीता, बैरी गढ़ को जारे ॥२॥
दोनों दल में जुद्ध पड़ा है, बिरहा सूर लड़ा है।
ऐसे सूर के बल जा 'मस्ता', दल बैरी को तारे ॥३॥
काम क्रोध उठाकर बौरा, ग्यान को मारूं आले।
बान बिरह का लेकर 'मस्ता', इन दोनों को मारे ॥४॥

(४) साधो देखो अपने मांही, घर में पड़ी काकी परछाई ॥टेक॥
गुर लखिया से ध्यान न आया,
एक है एक बहुत हम गाया।
आंख खुली जब देखा 'मस्ता',
वह है, वह है साईं ॥१॥

(५) हमको मिलत नहीं मोहन नगरी ॥टेक॥
कैसी करूं अब कहो मोरी सजनी, बीती जात मोरी मैहल सगरी।

पियामिलन के होत शगुन हैं, कागा बोले निसदिन नगरी ॥
'मस्त' सखी जीवें जल विन मछरी, वग खवर लो पीतम हमरी ॥१॥

११—वजहन

वजहन के व्यक्तिगत जीवन के संवंध में कुछ पता नहीं चलता और न उनके जीवन-काल के विषय में ही कहीं कोई संकेत मिलता है। शिवसिंह ने अपने 'सरोज' ग्रंथ में इनका नाम निर्देश करके इनकी रचनाओं के उदाहरण में इनका केवल एक दोहा दे दिया है। वे इतना और भी कहते हैं कि "इनके दोहे चौपाई शांत वेदांत के वहुत अच्छे हैं" (दे० सन् १९२६ संस्करण, पृ० ४९०)। 'मिश्रवंधु विनोद' भा० ३ के पृ० ९८५ पर भी एक वजहन का नाम दिया गया है जिसके नीचे केवल साधारण श्रेणी लिखकर छोड़ दिया गया है। वजहन कवि की एक रचना 'अलिफ़ वाए' नाम से फ़ारसी 'नवलकिशोर प्रेस' द्वारा प्रकाशित एक संग्रह में संगृहीत है और वह फ़ारसी लिपि में है। रचना के पढ़ने से पता चलता है कि उसका रचयिता वजहन सूफ़ी विचार धारा से प्रभावित रहा होगा। उसका पहला दोहा भी जो दो अर्द्धालियों के अनंतर आता है वही है जिसे शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में दिया है। यही क्रम रचना के अंत तक है—

वजहन के दोहे

वजहन कहे तो क्या कहे, कुछ कहने की नहिं बात।
समन्दर समायो बूंद में, अचरज बड़ो दिखात ॥१॥
बिन गुरु वजहन लेत हैं, जो कोउ वसन रँगाय।
यह निजके तुम जानियो, दोनों दरसे ज्ञात ॥२॥

कहां गई थी बुधि तेरी, कहां गया था चेत।
ऐसी माया पाय के, जो हरि से किया न हेत ॥३॥
सभी साज तनमें बजें औ ऐसे मचे हैं राग।
बजहन जाको सुन पड़े, बड़े हैं वाके भाग ॥४॥
लाज का काजर तन बूंड़े सो नहिं डारे धोय।
बजहन कह कैसे तुम्हें, दरसन पिया का होय ॥५॥
पीर नगर को पहुँच के, नबी नगर को जाय।
तब बजहन घटही के अन्दर, हरिका गांव दिखाय ॥६॥
प्रेम की नदी गहरी, जो कोउ उतरे पार॥
आशिक़ औ माशूक़ में, रह्यो कौन विचार ॥७॥
वाका बदला एक है, सुन मैं देउं बताय।
हरि हेरत ही जाय तूं, पहले आप हेराय ॥८॥
जाके हिरदे लगत है, बजहन प्रेम का बान॥
छूट जात हैं सब कुटुम, भूल जात हैं ग्यान ॥९॥
बजहन अच्छर ऐसे कहे हैं, साधन के हथियार।
विरहा के मैदान में, पतके राखनहार ॥१०॥

१२—अज्ञात कवि

'अल्ला नामा' नाम की एक रचना किसी सूफ़ी कवि की मिलती है जिसके नाम का पता नहीं चलता। यह रचना मसनवी के ढंग पर लिखी गई है और इसमें अल्लाह का नाम जपने का उपदेश है। कवि ने इस बात की आवश्यकता कई प्रकार के दृष्टांत देकर बतलायी है। अंत में

सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मानव-जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण मार्ग है।

कहावत पांचवीं

जग फ़ानूस की शक्ल बनाया। आपको चातर होय जताया ॥
हाथी घोड़े वामें बनाये। दीपक बल सब सैर दिखाये ॥
जब दीपक हो वामें आया। वह मंदिर सब जगको भाया ॥
दीपक हो जब आय अंदर। सूझे तारे सूरज अंदर ॥
जब लग दीपक वामें रहे। हंसी खुसी जग वाको कहे ॥
जब दीपक फ़ानूस से जावे। काहू को फ़ानूस न भावे ॥
कहीं बुलबुल कहीं फूल हो आया। कई भांत अपना रूप दिखाया ॥
कहीं लैली कहीं मजनूं हुआ। कहीं कली कहीं मधुवन हुआ ॥
कहीं रोवे कहीं खिलखिल हँसे। वह प्यारा कई रंगमें बसे ॥
कहीं अल्ला कहीं राम कहाया। कहीं बंदा पूजन आया ॥
आपही गंग में नीर बहाया। फिर सेवक हो पूजन आया ॥
आप अनलहक़ आन पुकारा। किया बदनाम मंसूर बेचारा ॥
फिर काज़ी हो क़ायल कीना। औ वाको सूली पर दीना ॥
कौन चढ़ा औ कौन चढ़ाया। आप ही वह कई रूप में आया ॥
ग़ौर करो औ आँख पसारो। है वह महैत हर रंग में यारो ॥
उसका विचार करूं क्या भाई। आपको अपनी छवि दिखलाई ॥
यह बातें मैं क्योंकर विचारूँ। सर फोड़ूं या कपड़े फारूँ ॥
हसूं बहुत या आहें मारूं। काहे सुनाऊं किसे पुकारूं ॥
मस्ताना हो मुंह को खोलूं। हो हुजूर अनलहक़ बोलूं ॥
भला है मोको आप चुप रहना। भेद खुदा का कुफ़्र है कहना ॥

आप करम आं मोपर कीना। तव मैंने वाको ले लीना॥
कुछ सिगार किये नहिं होवे। जा पी चाहे सोहागिन होवे।
ना कुछ तायत मैंने कीनी। आप कृपा उन सोपर कीनी॥
याकी बात है अपरमपारा। क्या लिखूं मैं बारंबारा॥

टिप्पणी

(क) सूफ़ी प्रेमगाथा काव्य

१. शेख क़ुतबन

मृगावति

कथा का सारांश—चंद्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र कंचन-नगर के राजा रूप मुरारि की पुत्री मृगावति के रूप पर मोहित हो गया। वह राजकुमारी उड़ने की विद्या जानती थी। इसलिए, जब अनेक कष्टों को झेलकर राजकुमार उसके पास पहुंचा तो एक दिन वह उसे धोखा देकर उड़ गई। राजकुमार उसकी खोज में योगी बनकर निकल पड़ा। उसने समुद्र से घिरी एक पहाड़ी पर पहुंचकर किसी रुकमिनी नामकी एक सुंदरी को राक्षस के हाथों में पड़ने से बचाया जिससे प्रसन्न होकर उस सुंदरी को राक्षस के पिता ने उसके साथ उसका व्याह कर दिया।

अंत में, फिर वह राजकुमार, उस नगर में किसी प्रकार, पहुंचा जहां पर मृगावती, अपने पिता के मर जाने पर, उसके राज सिंहासन पर बैठी राज्य कर रही थी। वह उस नगर में १२ वर्षों तक ठहरा रहा। इस बात का पता राजा गणपति देव को लगा तो उसने उसे बुलाने के लिए अपना दूत भेजा। राजकुमार अपने पिता का संदेश पाकर मृगावती के साथ चंद्रगिरिकी ओर चल पड़ा और मार्ग में उसने रुकमिनी को भी ले लिया। वह अपने नगर में पहुंच कर बहुत दिनों तक भोग विलास करता रहा। परंतु, अंत में, एक दिन आखेट करते समय हाथी से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई और उसकी दोनों रानियाँ उसके लिए सती हो गई।

'मृगावती-दर्बार' वाला अवतरण उससमय के संबंध में है जब राजकुमार मृगावती को ढूंढ़ता हुआ फिर उसके यहाँ पहुँचा और उसके राज्य सिंहासन पर बैठने का समाचार पाकर उसके दर्बार में प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगा।—चौपाई—'मृगावती...पाई=मृगावती का नाम सुनकर उस राजकुमार को वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसी माधवानल नामक प्रेमी को, अपनी प्रेमपात्री कामकंदला को पाकर हुई थी। विहसि...दामावती=उसने एक बार 'मृगावती' नाम स्वयं भी लिया और उस हर्ष का अनुभव किया जिसे राजा नल ने दमयंती से फिर भेंट होने पर किया था। वैसे...भारी=बड़े-बड़े राजाओं और सेठ की भाँति वहाँ पहुँचूगा। सुरपंवरी=दर्बार की पहली ड्योढ़ी पर (?)। कनक..जरावा=जो कनक-पत्र एवं रत्नों द्वारा जड़ी हुई थी। दोहरा—छत्तीसकुली बनिजारा=छत्तीसों जातियों के व्यापारी अर्थात् सभी जातियों के व्यापारी। मंडप...धौराहर=राजमहल की रचना देखते ही। समभार=सभी, जितने हों वे कुल। चौपाई—अथाई=महल के बाहर का वह स्थान जहाँ पर उसके भीतर प्रवेश करने की प्रतीक्षा में लोग बैठा करते थे। स्रवन पे=केवल कानों से ही। सेइ...गुने=उससे अधिक अथवा उससे बहुगुने ठाठ का। पंडुरपान=पकाया हुआ पीला पान। सबैकेउ=सभी कोई। दोहरा—'आइ...पान' तथा 'प्रतीहारे...जोहार' के पाठ शुद्ध नहीं जान पड़ते। चौपाई—चाह=समाचार, खबर (दे० 'राय रंक जँह लगि सब जाती। सब की चाह लेइ दिन राती'—जायसी)। हमरी...आवही=मुझे कौन पूछेगा। बहुरि...सिरसेती=विरह की व्यथा फिर सिर पर सवार हुई। एती=इसप्रकार। कींगरी=एक प्रकार का बाजा। लिहे=लेकर। सबही...चॉचा=सभी उसके विषय में बातचीत करने लगे। भाइ...डोला=प्रेम का प्रभाव पड़ा और हरि का आसन डोल गया। दोहरा—सिल=होग। भा...ताही=उसके

हृदय पर भी विरह ने प्रभाव डाला। चौपाई—संताप=दाह, ज्वाला। आएसु=ऐसा, इस प्रकार का, जोगी (?)। तीस एक लगभग तीस के अथवा तीसों। आएसु...आई=जोगी को बुलाने के लिए द्वार पर आ-गई। दोहरा—आग्या...धाइ=हम लोग राजाज्ञा पाकर आयी हैं उस बुलाहट पर शीघ्र चलो। रहसा=बहुत प्रसन्न हुआ। पंथा...समाइ=इतना प्रफुल्लित हो गया कि उसका शरीर उसके कंथा वा गूदड़ी में नहीं समा रहा था। चौपाई—सिघ...हँकारा=मेरी साधना की सिद्धि होगई और स्वयं गुरु ने ही बुला भेजा। ससी...सीरावउ=शरद् ऋतु के चंद्रमा के समान मुख को आज देख सकूंगा और इसप्रकार अपने विरह-दग्ध मन एवं सरीर को उसके सामने ठंडा कर लूंगा। वेगर..भावा=सभी सातों ड्योढ़ियां भिन्न-भिन्न प्रकार की जान पड़ीं। ताही=उस मृगावती को। सरग कचपची=आकाश में उगने वाले कृत्तिका नक्षत्र के तारों का समूह। ताल...कोइ=ताल वा सरोवर में मानों जल की कमलिनी खिलीं हो। दोहरा—भान....मैं=सूर्य के रूप में। झार...कहु=जोगी को उसकी आंच लगने लगी (दे० जनहु छाँह मँह धूप दिखाई। तैसे झार लाग जो आई'—जायसी)। एक=प्रथम श्रेणी का। उपरगन=उपरक्षण, पहरा, चौकी।

'राजकुमार-मृगावती-मिलन' वाले अवतरण में दोनों प्रेमियों के संयोग वा मिलन का वर्णन है।—चौपाई—ठयउ–सजाया, रतन....उजियारा=रत्नों के ही प्रकाश द्वारा दीपक का उजेला हो रहा था। वेना=खस, उशीर (दे०, कीन्हेसि अगर कस्तुरी वेना। कीन्हेसि भीमसेनि अरु चेना'।—जायसी)। कचोरन्ह=कटोरों में। कुंकुम=केसर, मेद=कस्तूरी। अगरजा=अरगजा नाम का एक सुगन्धित द्रव्य जो कई अन्य सुगंधित द्रव्यों को मिलाकर बनाया जाता है (दे०—'गली सकल अरगजा सिंचाई। जँह तँह चौकें चारु पुराई'—तुलसी)। करीवा=डाल-

डाल करके। दीवा=दीपक। 'दीनवर....उवारे' का पाठ शुद्ध नहीं जान पड़ता है। दोहरा—चोवा=चोआ नाम का एक सुगंधित द्रव्य जो कई भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगंधित द्रव्यों के संयोग से तैयार किया जाता है। अगर=अगर नामक पेड़ से तय्यार किया गया सुगंधित द्रव्य। सीर=उशीर, खस (?)। भीमसनी=कपूर। वहु तोल=वहुत वज़न में। वेलसइ=विलसता था, अच्छा लग रहा था। तवोल=पान। वास-रस=सुगंधित द्रव्यों के संयोग से। परिमल फूल=फूलों के परिमल स अर्थात् सुगंधि से। चौपाई—'चन्द्र दीआव=चंद्रमा की ज्योति (?)। मयन वाती=मोम की वत्ती। वासर....परई=दिन और रात की पहचान नहीं हो पाती। दोहरा-मया करिँ=कृपा करके। तंवोर=पान। चौपाई—'देपु=देखा। सेजसइ=पलंग से। परु=दूसरे को। सोहराई=सहलाती हुई। उतरी...सोहराई=दूसर किसी पर हाथ का अवलम्ब देकर सेज से उतरी। परग=पग, डग। जोहारू किहसि=अभिवंदन किया। आवहु....उअहारू='आवहु स्वामी' का उच्चारण करक उअहार (?)। तहीआ....ताहीं=उस दिन मैंने तुम्हें भोग विलास करने नहीं दिया था। हम लागी=मेरे कारण। हम....सहा=मेरे कारण आपने मरण तुल्य कष्ट झेले। मीलइ सोइ=उसके मिल जाने पर। दोहरा—जहाँ लगी=जहाँ तक। चौपाई—विरत=वृत्तांत, आपवीती। आपनि....त्यागे=अपना सारा वृत्तांत कह सुनाओ और अपने जी से कोप का भाव दूर कर दो। आवत....पछतावा=इस वात का मुझे बड़ा पछतावा है कि तुम्हें आते अर्थात् अनेक दिनों तक चक्कर लगाते हुए आना पड़ा। वैसेहु....वौरावा=मेरा जी तो वैसे भी पागल हो उठा था। अव फुर कहऊँ=इस समय सच्ची वात कह रही हूँ। तोर....छाजा=तेरे गुणों का मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा है। चित्र....आवा=यह मेरे हृदय पर चित्रवत् खिंच गया है और अव मिट नहीं सकता।

'अंत' वाले अवतरण में राजकुमार की पत्नियों के सती होने का वर्णन है। —चौपाई—रुकुमिनि = राजकुमार की पहले वाली पत्नी। कुलवंती = उच्चकुल की स्त्री। रतसों = पातिव्रत धर्मानुसार। विरानू = दूसरा। सर = चिता। इंद्रकविलासी = इंद्र लोक, स्वर्ग। दोहरा—तिल-येक = तिल भर भी, कुछ भी। चिन्ह. . . .गात = उनके शरीरों का कुछ भी अवशेष नहीं रह गया।

२ मलिक मुहम्मद जायसी

पदुमावति :

कथा सारांश—सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की कन्या का नाम पद्मावती था जो परम सुंदरी थी। उसके योग्य वर कहीं नहीं मिलता था। पद्मावती के पास हीरामन नामका एक तोता था जो बहुत वाचाल और पंडित था। एक दिन जब वह पद्मावती के साथ उसके वर के विषय में बातचीत कर रहा था राजा गंधर्वसेन ने सुन लिया और उसका कोपभाजन बन जाने के भय से वह चुपके से उड़ चला जिससे पद्मावती को बहुत दुःख हुआ। हीरामन उड़ता जा रहा था कि वह किसी बहेलिये के हाथ पड़ गया जिसने उसे बाज़ार में लाकर चित्तौर के एक ब्राह्मण के हाथ बेच दिया। ब्राह्मण के यहाँ से फिर चित्तौर के राजा रतनसेन ने उसे एक लाख देकर ख़रीद लिया और उसे बहुत मानने लगा।

एक दिन जब राजा रतनसेन आखेट को गए थे, हीरामन ने उनकी रूपगर्विणी रानी नागमती से सिंहल की पद्मावती के रूप की बड़ी प्रशंसा की जिसे सुनकर नागमती ने ईर्ष्यावश उसे मरवा डालना चाहा। परन्तु उसकी चेरी ने उसे राजा के भय से अपने घर छिपा रखा। राजा रतनसेन लौट कर सूए के लिए जब अत्यन्त उत्कंठित हुए तो वह उनके सामने लाया

गया और उसने उनसे सारा वृत्तांत कह सुनाया। पद्मावती के रूप और गुण की प्रशंसा सुनते ही राजा रतनसेन उसके लिए अधीर हो उठा और उसे प्राप्त करने की आशा में जोगी का वेश धारण कर निकल पड़ा। राजा के साथ इस यात्रा में सोलह सहस्र अन्य राजकुमार भी सम्मिलित हुए और हीरामन तोता उन सभी का पथ प्रदर्शक बन गया। ये सब लोग कलिंग से जहाजों में सवार होकर सिंहल की ओर चल पड़े जहाँ पर अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पर ही पहुँच सके।

सिंहल द्वीप में पहुँच कर राजा रतनसेन जोगियों के साथ शिव के मंदिर में पद्मावती का ध्यान और नाम-जप करने लगा। हीरामन ने यह सब समाचार उधर पद्मावती से जाकर कह सुनाया। वह राजा के प्रेम से प्रभावित होकर विकल हो गई। श्री पंचमी के दिन पद्मावती शिव पूजन के लिए मंदिर में गई जहाँ उसका रूप देखते ही राजा मूर्च्छित हो गया और उसे भली भांति वह देख भी न सका। जागने पर जब वह अधीर हो रहा था उसे पद्मावती ने कहला भेजा कि दुर्गम सिंहलगढ़ पर चढ़े बिना अब उससे भेंट होना संभव नहीं है। तदनुसार शिव से सिद्धि प्राप्त कर उक्त गढ़ में प्रवेश करने की चेष्टा में ही सबेरे के समय वह पकड़ लिया गया और उसके लिए सूली की आज्ञा हुई। अंत में जोगियों द्वारा गढ़ के घिर जाने पर शिव की सहायता से उस पर विजय हो गई और गंधर्वसेन ने पद्मावती के साथ रतनसेन को बियाह दिया।

राजा रतनसेन पद्मावती को लेकर किसी प्रकार चित्तौर लौटा और वहां सुखपूर्वक रहने लगा। उसके दर्बार में राघव चेतन नामका एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। उसे राजा ने अन्य पंडितों के साथ उसका कलह बढ़ जाने पर अपने यहाँ से निकाल दिया। राघव चेतन राजा से बदला लेने की इच्छा से दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के पास गया। उसे पद्मावती का एक कंगन दिखलाकर उस पर मुग्ध कर

दिया। अलाउद्दीन ने राजा रतनसेन को पद्मावती के लिए पत्र लिख भेजा जिसे पाकर वह क्रुद्ध हो गया और युद्ध की तैयारी होने लगी। अलाउद्दीन जब कई वर्ष घेरा डाल कर भी चित्तौरगढ़ तोड़ न सका तो उसने संधि का प्रस्ताव भेजा जिसे स्वीकार कर राजा ने उसे गढ़ में प्रीतिभोज दिया। राजा के साथ शतरंज खेलते समय अलाउद्दीन ने अपने सामने रखे हुए दर्पण में पद्मावती की एक झलक देख ली और वह मूर्च्छित हो गया। जब राजा उसे पहुँचाने के लिए बाहरी फाटक तक गया तो उसे बादशाह ने छलपूर्वक अपने सैनिकों द्वारा पकड़वा लिया और उसे दिल्ली भेज दिया।

पद्मावती यह समाचार सुनकर अधीर हो उठी और वह अपने पति को छुड़ा लेने के उपाय सोचने लगी। गोरा और बादल नामक दो वीर सरदार ७०० पालकियों में सशस्त्र सैनिक छिपा कर दिल्ली पहुँचे और बादशाह को कहला भेजा कि पद्मावती रतनसेन से पहले मिलकर उसके महल में जायगी। आज्ञा मिलते ही एक ढकी हुई पालकी से निकल कर एक लोहार ने राजा की बेड़ियाँ काट दीं और वे पहले से ही तैयार घोड़े पर बाहर निकल आया। बादशाह की सेना द्वारा उन पर धावा मारने पर गोरा कुछ सिपाहियों के साथ उसे रोकता रहा और बादल राजा को लेकर चित्तौर पहुँच गया। चित्तौर से राजा रतनसेन कुंभलणेर के राजा देवपाल पर चढ़ाई करने गया जहाँ पर युद्ध करते समय उसकी मृत्यु हो गई। रतनसेन का शव चित्तौर लाया गया और उसके साथ पद्मावती एवं नागमती दोनों ही सती हो गईं। बादशाह अलाउद्दीन जब अपनी सेना के साथ चित्तौरगढ़ पहुँचा तो उसे पद्मावती की जगह चिताकी राख मिली जिसे देखकर उसे दुःख हुआ।

'प्रेमखंड' नामक अवतरण में उस समय का वर्णन है जब राजा रतनसेन हीरामन द्वारा पद्मावती की प्रशंसा सुनकर उस पर मोहित हो गया—

चौपाई—जानौं. . . .आई = मानो उसे धूप की लू सी लग गई। लहराहि

....विसँभारा=उसके प्रत्येक झोके में वह अधिकाधिक वेसुध होने लगा। विसँभारा=अचेत, संज्ञाहीन। विरह....लेई=जिसप्रकार समुद्र में पड़ा हुआ मनुष्य उसके जल के चक्करदार घेरे में पड़कर घूमने लगता है और कभी-कभी लहरों में हिलोरें खाने लगता है उसी प्रकार राजा रतनसेन भी प्रेम प्रभावित होकर विरह के चक्कर में पड़ गया और उसके प्राणों की दशा जल की लहरों द्वारा क्रमशः नीचे-ऊपर आने-जाने वाले की भाँति होगई। खिनहि...जाई=कभी-कभी ऊपर की ओर उठने वाली शोक भरी श्वासों में उसके प्राण डूब से जाते थे। दसवँ अवस्था= दशमावस्था अर्थात् अंतिम वा मरणावस्था। (टि०—कामशास्त्रानुसार प्रेमी की दश दशाएँ क्रमशः इस प्रकार हैं—अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण।) दोहा १—लेनिहार=वसूल करने के लिए उपस्थित लोग। हरहिं.... ताहि=उसका सब कुछ हरण करते जा रहे हैं और उसे भिन्न-भिन्न प्रकार के भय भी दिखलाते हैं। एतनं....मुख=उसके मुख से केवल इतना ही शब्द निकलता था। 'तराहि तराहि'=अरे मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। चोपाई—नेगी=राजा पर आश्रित रहने वाले। जावत=यावत्, जितने भी थे वे सभी। गुनी=गुणी, उपाय जानने वाले विशेषज्ञ। गारुड़ी=सर्प-विष को मंत्र के बल दूर करने वाले। ओझा=भूत प्रेत झाड़ने वाले, झाड़ फूंक वाले। समान=चतुर। चरखहिं=भाँपते थे। चेष्टा=शरीर के बाहरी रंग ढंग और क्रिया। परिखहिं नारी=नाड़ी परीक्षा करते थे। बारी=वह स्त्री जिसके विरह में वह व्याकुल था। करा=दशा। राजहिं ....परा=राजा की दशा उस लक्ष्मण की हो गई थी जो मेघनाद की शक्ति के लग जाने के कारण संज्ञाहीन होकर पड़े थे। हनिवँत=हनुमान जो लक्ष्मण को शक्ति लगने पर, राम के कहने पर, सँजीवनी बूटी लाये थे। का....मनी=आपको किस वस्तु की इच्छा है और आप क्या करने

का निश्चय करते हैं। खांगा=घटा है वा कमी पड़ गई है। दोहा २—ऐंक=नकद, द्रव्य। वरोक=सेना के सिपाही। चौपाई—बाउर=पागल। आवत....रोआ=संसार में आते ही अर्थात् अपने मनोराज्य की दशा का त्याग कर जब राजा साधारण स्थिति में आया तो उसने बच्चे की भांति रो दिया। उपकार=यहाँ पर व्यंग रूप में प्रयुक्त अपकार का समानार्थ। हँकारि=बुलाकर, प्रदान करके। साखा=प्रत्यक्ष (?)। घटहि=शरीर में। निसाथा=अकेला, पृथक्। दोहा ३—अहुठ=साढे तीन। आँगाह=कठिन, दुःसाध्य। चौपाई—कालसैंति=काल वा मृत्यु के साथ। छाजा=प्रस्तुत है। जो=यदि। जानत....गोपीता=तो कृष्ण द्वारा त्यक्त गोपियाँ उसे अवश्य जानतीं। ओरा=अंत तक। तस केरु=ऐसा चक्कर काटना। धुव=ध्रुवतारा। ऊआ=उगता है। सिर....देइ=अपना सिर काट कर जो सामने रख देता है और उस परअपने पैर रखकर प्रयत्न करता है। (दे०—'सीस उतारि पगतलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद' —कबीर)। दोहा ४—एहिरे पंथ=इस प्रेम मार्ग द्वारा। चौपाई—सुऐ=हीरामन तोते ने। तुम....पोई=तुम राजा ने आज तक केवल पकी पकाई ही खाई अर्थात् तुम्हें अभी तक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। कँवल....कोई=तुम्हें सरलतापूर्वक उपलब्ध होने वाली वस्तुओं से ही काम रहा अभी तक कष्टों को झेलकर तुम्हें कुछ भी प्राप्त नहीं करना पड़ा। लूटे=लुट जाते हैं। दोहा ५—साधन्ह=केवल अभिलाषा मात्र कर देने से ही। सधै=साधना की जाती है। कलप्प=कलम, काट जडाले। चौपाई—काभा=क्या होता है। सिरसों=सिर के बल। पंथ...अँकूरू=शूर वीरों के मार्ग पर नुकीले काँटे उठे रहते हैं। मंसूरू=हल्लाज नामक प्रसिद्ध सूफ़ी जो बिना किसी दुःख का अनुभव किए ही हँसता-हँसता सूली पर चढ़ गया था। तोरे....पंथा=तुम्हारे शरीर में ही दस मार्ग हैं जो तुम्हें भ्रम में डाल

सकते हैं। दिठियारा=दृष्टि में रहती हैं। निसि की उजियारा=सदा अँधेरे-उजेले में। दोहा ६—अजाना=नासमझ। मूसि जाहिं=चुरा कर चले जायंगे। चौपाई—मोति औ मूंगा=आंसुओं की बूंदें। गूंगा=स्तब्ध। अहथिर=स्थिर। हसा=मनोदशा। दसा=बसे हुए को। अब....करा =अब कीट के ऊपर प्रभाव डालने वाले भृंग के उपायों द्वारा। करा= कला, क्रिया, उपाय। फनिग=पतिंगा, कीट। भौंर होहु=तद्रूप हो जाओ। दोहा ७—कैत=कैत, तरफ़, ओर। चौपाई—विषं=विष को वा विषय को। भरथरिहिं....खाई=राजा भर्तृहरि जिन्होंने, सांसारिक दृष्टि के अनुसार अमृतवत् समझे जाने वाले, अपने राज्य का परित्याग कर दिया और इस विष को खाया। होत....सुआसा=इस समय अवसर निकट आ गया अब तो जिसप्रकार लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान ने संजीवनी ला देने की आशा बँधाई थी उसीप्रकार किसी के आश्वासन देने पर ही काम चल सकेगा। दोहा ८—होइ गनेस=गणेश की भाँति। चेला....भेव=जिस भेद को गुरु जानता है उसे कोई चेला नहीं प्राप्त कर पाता। तुलै=पहुँचता है।

'पार्वती महेश खंड' वाले अवतरण में पार्वती द्वारा राजा रतनसेन की परीक्षा तथा महादेव द्वारा उसे दिये गए उपदेश का वर्णन है।—चौपाई— ततखन=तत्क्षण, उसी समय। कुस्टि=कोढ़ी। काथरि कया=शरीर की गुदड़ी पर। हड़ावरि=हड्डियों की माला। हत्या कांधे=मृत्यु को अपने साथ लिए रुद्र कंवल=रुद्राक्ष। गटा=कलाई में। धन=पत्नी। दोहा १—वियोग=विराग का कारण। चौपाई—निस्तर=निस्तार, छुटकारा। जस....पिंगला=जिस प्रकार राजा भर्तृहरि के लिए उसकी पिंगला नाम की प्रियतमा थी। सो=वह निराशा। डाहै....दाधा= जले पर जलाया। दोहा २—बोल=शब्द। चौपाई—ओहि....पूजा= उस पद्मावती और इस रतनसेन के बीच अभी कुछ अंतर बच गया है अथवा

वह प्रेम के द्वारा पूरा भर चुका है और दोनों अभिन्न हो गए हैं। जस.... राता = जैसा मेरा सौंदर्य है वैसा अन्य किसी का नहीं। राता = सुंदर। तोकां = तुझे। उठा....सिवलोका = इसका पता शिव लोक तक चल चुका है। अछरी = अप्सरा। दोहा ३—सरि = तुलना में। सँवरि = स्मृति में, यादकर के। चौपाई—कविलासा = स्वर्ग में। बार = द्वार पर सामने। वारौं = बचाऊँगा। सारौं = करूँगा। साह = समाचार। दोहा ४—तेहि....कहँ = उस प्रियतमा की ओर से आशा न रहने पर। चौपाई—आछै = रहता है। लागा = जान पड़ा, सिद्ध हुआ। कसे कसौटी = मेरे द्वारा परीक्षा लेने पर। डबकहिं = डबडबा आए हैं, भर गए हैं। लागि ओहि = उस पद्मावती के लिए। सीझा = तप किया है, कष्ट झेला है। दोहा ५—हत्या....अपराध = पहले से ही तुम अपने दोनों कंधों पर दो हत्याएँ लिए फिरते हो और इसके लिए अपराधी के समान हो। (दे० मुंडमाल औ हत्या काँधे)। चौपाई—सुनिकै....लाखा = महादेव की बातें सुनकर राजा रतनसेन ने पहचान लिया कि ये कोई सिद्ध पुरुष हैं। सत = निश्चय ही। तंत = तत्त्व को। ओहि भा मेरा = जो उसमें लीन हो गया। दोहा ६—गोरख = सच्चे गुरु। चौपाई—गहबरा = घबड़ा गया। रोउब = रोना। कित = किसलिए ?। धरती....दोऊ = मुसलमानों की धारणानुसार पृथ्वी और आकाश दोनों पहले एक में लगे हुए थे। पदिक...खोवा = जैसे किसी के हाथसे उसकी सभी आशाओंका आधारस्वरूप कोई यंत्र वा बहुमूल्य पदार्थ निकल जाय। सामर....पारा = समुद्र का बाँध टूट कर उसका पानी इतना बढ़ गया कि उसमें पर्वत की चोटियाँ तक डूब गई। दोहा ७—जस....जरै = जैसे-जैसे उसके जी में जलन होती थी। सूत-सूत = सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थल भी। चौपाई—मयारू = दयार्द्र। ईसर = भले दिन। ओकां = उसे ही। मूसै पेई = मूसने अर्थात् चुराने पाता। चढ़े....खूंदी = उस द्वार पर कूद कर नहीं चढ़ा

जाता। परं....मूंदी=उसके भीतर सेंध लगाकर सिर के बल ही पैठा जाता है। दोहा ८—सरग....पांव=स्वर्ग के मार्ग पर अग्रसर हो कर। चौपाई—बांक=विकट। नौपौरी=नवद्वार। ताका=उसका। भेद जाइ=प्रवेश पाता है। घाटी=दुर्गम स्थल में। चांटी=चींटी (दे० पिपिलिकामार्ग)। सँवारी=बभाकर। पैंत=दाँव। दोहा ९—धँस= डूबता है। चौपाई—ताल=ताड़ का वृक्ष। लेखा=सदृश। जस.... कालिंदी=जैसे कृष्ण ने यमुना में डूब कर गेंद निकाली थी। नाथु=वश में कर डालो। मारिकै साँसा=श्वास निरोध वा प्राणायाम द्वारा। लोक-चार=लोकाचार वा व्यवहार। हौं हौं करत=अहंता के कारण। तूं=तेरी अहंता। जुरै=लग जाय तो। आपुहि....अकेला=आप ही सब कुछ है। (दे० 'नाद बिंद रंक इक खेला। आपै गुरू आपही चेला'—कबीर)। तथा (जब धुंधुकारि प्रभु रहै अकेला। आपि गुरु आपैही चेला)— (प्राण संगली)। दोहा १०—जियन=जीवन। आपुहि आपु=स्वयं वही।

टि०—यहां पर सिंहलगढ़ के वर्णन के व्याज से मानव शरीर के भीतर वर्तमान विविध स्थलों का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मानव शरीर को इसी कारण उस गढ़ की 'छाया' अथवा प्रतिरूप कहा गया है और यह भी बतला दिया गया है कि इस काया को भली भांति 'चीन्हने' अथवा पहचान लेने पर उस गढ़ का भेद पूर्णतः ज्ञात हो जायगा और तब उस पर विजय भी हो सकेगी। मानव शरीर के भीतर नव 'पौरी' दो नाक छिद्र, दो कान, दो आँखें, एक मुख, एक गुदा द्वार और एक मूत्र द्वार हैं जिनके द्वारा प्राणों का बहिर्गमन संभव है। इनका 'दसंव दुवार' शीर्षस्थ ब्रह्मरंध्र है जो गुप्त है ब्रह्मरंध्र सहस्र दल कमल में, मेरुदंड की अंतिम ऊपरी छोर से भी आगे है जहां तक पहुँचाने में अनेक विषमस्थल पार करने पड़ते हैं। मेरुदंड के भीतर सुषुम्ना नाम की एक सूक्ष्म नाड़ी है जिसमें नीचे से ऊपर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत विशुद्ध एवं आज्ञा

नामक छः चक्र पड़ते हैं जिन्हें कुंडलिनी द्वारा भेद कर ऊपर चढ़ा जाता है, और उस चढ़ाव की गति 'चांटी अथवा चींटी की चाल के समान होती है जिस कारण उसे 'पिपीलिका मार्ग' भी कहा जाता है। गढ़ के नीचे का 'कुंड' उक्त कुंडलिनी का ही स्थान है और 'सुरंग' वह अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र है जो सुषुम्ना के भीतर है और जिससे होकर कुंडलिनी ऊपर की ओर अग्रसर हुआ करती है। मेरुदंड के नीचे से ऊपर तक सीधे और ऊँचे होने के ही कारण उसे 'ताल' अथवा ताड़ वृक्ष कहा है और दसंवदुवार को उसकी चोटी के सामने और ऊपर माना है। कुंडलिनी को ऊपर ले जाने के लिए प्राणों का आयाम करना पड़ता है। जिस कारण यहाँ पर उसे 'साँस मन बंधी' बतलाया है इस प्रकार की श्वासक्रिया द्वारा न केवल प्राणों का संयम ही हो जाता है, अपितु उससे मन भी अपनी चंचलता छोड़ कर स्थिर हो जाता है। मन के इस स्थिरीकरण को ही उसका 'नाथना' कहा गया है और इसी के द्वारा, 'आपु' के नाश अर्थात् अहंता के परित्याग को भी संभव माना गया है। यह सारी क्रिया अपने आप और अपने ही भीतर की जाती है इसलिए यहाँ पर 'चेला' 'गुरु' के अंतर का कोई प्रश्न नहीं उठा करता।

'पद्मावती नागमती सती खंड' वाले अवतरण में उस घटना का वर्णन है जो राजा रतनसेन के मरने पर उसके शवदाह के समय घटी थी और जब उसकी दोनों रानियाँ उसके साथ चिता पर सती हो गई थीं।—चौपाई —पटोरी=रेशमी साड़ी। जोरी=सहगामिनी। सुरुज. . . . भई=सूर्य एवं चंद्र अर्थात् राजा रतनसेन एवं रानी पद्मिनी दोनों के ही अभाव का अवसर आ गया जिस कारण अमावस्या की भाँति घोर अंधकार हो गया। नखत=नक्षत्र, तारे। आगि. . . .अँधियारा=पद्मावती के काले केशों के मध्य जो लाल सिंदूर दीख रहा था उससे प्रतीत हो रहा था कि अब अंधकार पूर्ण संसार में आग लगने जा रही है—उसके द्वारा पद्मावती के सती होने जाने की सूचना मिल रही थी। चह=चाहती है, लगने जा रही

है। छहरावौं=बिखेर दूं। दोहा १—जेउं=ज्यों, सदृश। निवाह=चरितार्थ अथवा छुटकारा। चौपाई—महासत=सत्य रूप में। तिन्ह=उन्हें। बैठो=चाहे जो बैठे। सर=चिता। छखाटा=खाट यहाँ पर अर्थी या टिकठी। होइ अगूता=आगे-आगे। ओर निबाहू=अंत तक निर्वाह। रहसि=प्रसन्न हो कर। दोहा २—आजु....बूड़=सूरज....भई। बूड़=अस्त हो गया। हम्ह=हमारे लिए। जूड़=शीतल। चौपाई—गोहन=साथ, राजा के साथ-साथ। यह...आथी=जब हमारा सर्वस्व ही नहीं रह गया तो इस संसार में रहने से हमें लाभ ही क्या है? आथी=पूंजी। अथहि=है, रहेगा। दोहा ३—रतनार=प्रकाशमय। '(दे०—जो ऊग्या सो आँथवा, जो आया सो जाइ'—कबीर)। चौपाई—वे=दोनों रानियाँ। सहगवन=सहगामिनी। छेंका=चढ़ाई की। सो=वह जिसकी आशा में उसने चढ़ाई की। राम औ सीता=राजा एवं रानी। अखारा=दर्बार में। पिरथिमी झूठी=(यह कह कर कि) यह संसार नश्वर है। पाटी=खाई। जौ....मरै=जब तक शरीर पर मिट्टी नहीं पड़ती अर्थात् मनुष्य कब्र में नहीं जाता तब तक उसकी तृष्णा जागृत रहा करती है। बादल=एक वीर राजपूत का नाम। पवँरि=फाटक। दोहा ४—छत्तिरी=राजपूतों की पत्नियां। भए संग्राम=खेत रहे अर्थात् लड़ते-लड़ते मर गए। चूरा=तोड़ दिया। चितउरगा इसलाम=चित्तौरगढ़ पर मुसलमानों का आधिपत्य हो गया।

'उपसंहार' वाले अवतरण में जायसी ने कहानी का एक आध्यात्मिक अर्थ लगाने की चेष्टा की है और परिणाम निकाला है।—चौपाई—एहि अरथ=इस कहानी का रहस्य। कहा....सूझा=तो उन्होंने बतलाया कि हमें तो इसके सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता कि। तर उपराहीं=नीचे से ऊपर तक। ते....मांहीं=ये सभी मानव शरीर के अंतर्गत हैं अर्थात् जो ब्रह्मांड में वह सभी कुछ पिंड में भी है। निरगुन=

परमात्मा। दोहा १—जेती=जितनी भी। चौपाई—जोरि=रचना कर के। जोरी....भेई=मैंने इस रचना को अपने रक्त की लेई लगा कर निर्मित किया है और इसमें प्रकट किए गए गहरे प्रेम को अपने नेत्रोंके जल द्वारा सींचा है। मकु=यह सोच कर कि। अस....उपराजा=जिसके राजा रतनसेन के हृदय में गहरे प्रेम का भाव जागृत किया। दोहा २—केइ....बेंचा=कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपने यश को योंही खो नहीं दिया करता। दुइ बोल=दो शब्दों द्वारा। चौपाई—हुत=था। नीर=आँसू। पचा=पिचके हुए। अनरुच=न रुचने वाले। बौराई=पागलपन सा। तरहुँत=नीचे की ओर। सरवन गए=श्रवण शक्ति चली गई। जो=जिस कारण। धुना=धुनी हुई रुई के सदृश श्वेत। भंवर....भूवा=भ्रमर के समान काले-काले बाल अब काँस के फूल की भाँति हो गए। जो....हाथा=जब तक जीवन रहे युवावस्था बनी रहनी चाहिए। दूसरों के आश्रित हो जाने का अर्थ तो मर जाना ही है। दोहा ३—रीस=क्रोध से। केइ=असीस=किसने यह बेतुका आशीर्वाद दिया था अर्थात् जिसने ऐसा किया था उसने मेरे साथ भलाई नहीं की थी।

३—मलिक मंझन

मधुमालति

कथासारांश—कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को सोते समय कुछ अप्सराएँ रातोंरात मधुमालति की चित्रसारी में ले गईं। मधुमालति महारस नगर की राजकुमारी थी और जागते ही दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। पूछने पर मनोहर ने बतलाया कि मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति कई जन्मों से चला आता है। अतएव, मैं अपने जन्म समय से ही तुम्हारा प्रेमी हूँ। बातचीत करते करते जब दोनों फिर सो गए तो अप्सराएँ

राजकुमार को उठा कर उसके घर पहुँचा आईं। इसप्रकार जगने पर फिर दोनों विरहाकुल हो उठे। मनोहर विकल होकर समुद्र मार्ग से मधुमालति की खोज में निकल पड़ा और बीच में ही उसके इष्ट मित्र तितर-बितर हो कर बह गए। राजकुमार भी बहता हुआ किसी जंगल में जा लगा जहाँ पर एक सुन्दरी पलंग पर लेटी थी और उसका नाम प्रेमा था। प्रेमा चितबिसरामपुर के राजा चित्रसेन की पुत्री थी और उसे वहाँ पर कोई राक्षस उठा लाया था। मनोहर ने उस राक्षस को मार कर प्रेमा का उद्धार किया और प्रेमा ने उससे कहा कि मैं मधुमालति की सखी हूँ तथा मैं उसे तुमसे मिला दूंगी। अपने घर आने पर, प्रेमा को, उसके पिता ने मनोहर से व्याह देना चाहा। किंतु उसने मनोहर को अपना भाई कहा और अपने दिए हुए वचन पर दृढ़ रही।

दूसरे दिन जब मधुमालति अपनी माता रूपमंजरी के साथ प्रेमा के घर आई प्रेमा ने उसे मनोहर से मिला दिया। सबेरे जब रूपमंजरी ने उन दोनों को चित्रसारी में एक साथ पाया तो उसने मधुमालति को इसके लिए बुरा-भला कहा। मधुमालति के मनोहर का प्रेम न छोड़ने पर उसकी माता ने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया और वह वहाँ से उड़ चली। उसके उड़ते-उड़ते बहुत दूर निकल जाने पर तारानंद नाम के किसी राजकुमार ने उसे पकड़ कर सोने के पिंजड़े में डाल दिया। जब एक दिन उस पक्षी ने अपनी प्रेम कहानी कह सुनायी तो ताराचंद बहुत प्रभावित हुआ और उसने उसे मनोहर से मिला देने की प्रतिज्ञा की। तदनुसार वह उसके पिंजरे को लेकर महारसनगर पहुँचा और उसकी माता रूपमंजरी ने प्रसन्न हो कर उसे फिर मधुमालति का रूप दे दिया। मधुमालति के माता पिता ने उसका व्याह ताराचंद के ही साथ करना चाहा। किंतु ताराचंद ने उसे अपनी बहन कह कर टाल दिया। मधुमालति की माता ने तब उसका सारा हाल लिख कर प्रेमा के पास भेजा और मधुमालति ने भी अपनी मनोदशा का हाल लिख भेजा।

प्रेमा जिस समय दोनों पत्रों को पढ़ कर दुःख का अनुभव कर रही थी उसी समय उसे मनोहर के आने का हाल मिला। वह जोगी के वेश में घूमता-फिरता आया था। इस समाचार को सुन कर मधुमालति के माता-पिता भी वहाँ पहुँच गए। तत्पश्चात् मधुमालति एवं मनोहर का विवाह हो गया। उनके साथ ताराचंद भी प्रेमा के घर बहुत दिनों तक अतिथि बना रहा। अंत में प्रेमा पर ताराचंद के मोहित हो जाने पर उन दोनों का भी विाह हो गया और फिर सभी अपने-अपने यहाँ जाकर सुख भोग करने लगे।

'कुँअर का प्रेमोद्‌गार' नामक अवतरण में मनोहर द्वारा मधुमालति के प्रति अपने प्रेमभाव का प्रदर्शन है।—चौपाई—कुँअर=मनोहर नामक कनेसर नगर के राजकुमार ने। पुव्वप्रीत—पूर्व वा पहले की ही प्रीति। विधिसारी—दैव ने प्रस्तुत कर रखी है। एहि....लाहा=इस संसार में अपने प्राणों के प्रति आसक्ति प्रदर्शित करना ही कल्याण कर समझा जाता है, किंतु,। मैं....बेसाहा=मैंने अपने प्राणों का मूल्य चुका कर तेरे लिए दुःख पाये हैं। आदि चिन्हारी=प्रारंभ से ही परिचय है। अंस=प्राण, जीवन। वर कामिन=परम सुन्दरी। तोहि....सरीरू=मेरे शरीर की रचना ही तेरे प्रेम के जल में मिट्टी सान कर की गई है। १ दोहा— जानहि जानो, समझो। मोहि....कै=मेरे शरीर की मिट्टी में जब प्रवेश किया। कै=यातो। तौ....सरीर=तब मुझे जीवन दान मिला, तब से इस शरीर में प्राणों का संचार होने लगा। चौपाई—सकरचो=अपने लिए स्वीकार किया है। प्रान....आवा=यदि शरीर धारण करने के समय से ही ऐसा न हुआ होता तो। विधि....दरसावा=परमेश्वर तुम्हारा दुःख मुझे फिर क्यों देता। जौरे....मोही=यदि मैं ऐसी बातें किसी प्रकार का कष्ट अनुभव कर कह रहा हूँ तो विधाता मुझे तेरा दुःख और भी दे दे। दुःख....दाता=इस दुःख का स्वरूप मात्र सारे सुखों का देने वाला है। दोहा २—एक....नहिं=क्षणमात्र भी इस दुःख का

अनुभव किया नहीं कि। पूजी ....स्वाद=चारों युगों में होने वाले सुखों का अनुभव प्राप्त हो गया। परसाद=कारण। चौपाई—आदिक=सर्वप्रथम। बासा=निवासस्थान। ब्रह्मकँवल=जिस कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई थी उस कमल में भी। तेहि....जाना=मैं समझता हूँ कि उसी दिन से प्राणियों को वास्तविक जीवन का अनुभव हुआ। संघाती=साथी। दुःख के काँवर=दुःखों का भार। भवन=अपने यहाँ। ले=स्वीकार करके। अपानदै=अपनापन देकर के। दोहा ३—जीमाही=जी में, भीतर। चौपाई—प्रीत परेवा=प्रेमरूपी पक्षी को। दैव उड़ाई=विधाता ने उड़ा दिया। लोग= लोक। जोग=योग्य, उपयुक्त। कहुत=कहो तो सही। आसा=आशा, जीवन का आधारस्वरूप। जहाँ....निवासा=जहाँ जहाँ पर दुःख रहा करता है वहाँ-वहाँ पर ही मेरा भी निवास हुआ करता है। दोहा ४—बपुरा=बेचारा। चौपाई—त्वं=तुम, तैं। एक....पनारी=एक ही मार्ग से दो नालियों का प्रवाह चलता है। एक....संचारा=एक ही प्राण दोनों शरीरों को संचालित करता है। जारा=जलायी गई है। कै=करके दोहा ५—याकर....संदेह=इसमें क्या संदेह है, इसमें आश्चर्य ही क्या है। जोरि=जोड़ना, मिलना। चौपाई—निनार=भिन्न, पृथक्-पृथक्। को....बिछराई=कौन बिलग-बिलग कर सकता है। सबकि....टेरी=सभी लोग क्या अपने ज्ञान चक्षुओं से देख पाते हैं? बरजी=मना, बिलगाव। दोहा ६—फांद=फंदे में। अहा....केर=ऐसे प्राणों वाला मनुष्य धन्य है। बरजी=त्याग। होन....फेर=जो आत्म त्याग पर आरूढ़ है उसे फिर नरदेह धारण करने की आवश्यकता नहीं (?)। चौपाई—औहि=नर। सँवार=सँभाला। छन्दरहा=छला था। कुल=मूर्ति, प्रियतम परमेश्वर। नरनी औनीवल=पवित्र और निव। निरमल=दीख पड़ता है। दोहा ७—गयान=चेतना, सुध। चौपाई

—तरासा=पिपासु, प्यासा। दोहा=तेहि८=वही एक। भाव.... देखाव=अनेक प्रकार से दीख पड़ता है। आप....पाव=यदि कोई अपने आपको खोकर अहंता मिटा सके तभी उसे उसका रहस्य मिल पाता है। (टि०—मनोहर अपनी प्रियतमा के प्रति प्रेम का वर्णन करता-करता परमात्मप्रेम के भाव का अनुभव करने लगता है और इस प्रकार कवि ने उनके कथन द्वारा प्रेम के आध्यात्मिक रूप का परिचय दे दिया है)।

'प्रेमा मधुमालति संवाद' वाले अवतरण में प्रेमा द्वारा किये गए मधुमालति के प्रेम का उद्घाटन दिखलाया गया है।—चौपाई—कामिनि=मधुमालति। पेमैं=प्रेमा ने। हेरा=देखा, निरीक्षण किया, ध्यानपूर्वक देखा। सौंहि मैं=मेरे सामने। बकतहु=बातें बनाती हो। केहिगाला=किस बहाने बाजी के साथ। नैन धुताई=आँखों की धूर्तता। मोहू.... चलाई=मेरे सामने भी कपट की बातें करती हो। चतुराई.... आइहि=मेरे आगे तेरी चतुरावट नहीं चल पायगी। धाइहि....लुका-इहि=धाय से कहीं पेट अर्थात् गर्भ छिपाये छिप सकता है? दानिहि.... छावी=समझदार के सामने बिगाड़ कर कही गई बातों तक का रहस्य खुल जाया करता है। संगि....फावी=अपने साथी से किसी बात को छिपा रखना क्या कभी अच्छा लगा करता है? दोहा१—उवारि=प्रकट-रूपमें। चौपाई—सतभावा सच्चेभाव के साथ। परिहर......धावा=हे बहन, किसी प्रकार के भय की आशंका छोड़दो। पीनु=क्षीण, दुर्बल। पतीजसि=विश्वास करती हो। मांगि.....तुम्हारी=तुम्हें वह अंगूठीवाला चिह्न मांगकर लादूं जो तुमने मनोहर को दिया था। दोहा२—मुंदरी=मनोहर द्वारा मधुमालति को दी गई सहिदानी। मांमांगी=मांगकर अथवा मांगकर लायी हुई को। कहा=कहना सुनना, व्यर्थ की बातें। जतन=यत्न पूर्वक। चषु=आंखों से। म्रिगमद कस्तूरी। म्रिगमद विछोवा=कस्तूरी और प्रेम छिपाये नहीं छिपते। कस्तूरी अपनी सुगंध के कारण प्रकट हो जाती हैं

और प्रेम का प्रदर्शन वियोग की स्मृति के कारण हो जाता है। उमड़े नैन=आँखों के आँसुओं से भर आने पर। दोहा ३—सँवरि=स्मरण कर। विकार=प्रभाव। थांभी न सकी=अपने को रोक न सकी। लागकें पेमा=प्रेमा के गले लगाकर। गालढु फार=गला फाड़-फाड़ कर। तरकी....छोड़ाई=प्रेमा मधुमालती को गले से छुड़ाकर हट गई। उतकंठ=बँधे गले से निकलती हुई। सपन....भारी=जिसने मुझे स्वप्न में भी वास्तविकता की भाँति इतना अधिक मोहित कर दिया। सौतुप=प्रत्यक्ष। सेजि....केरी=मेरे नाथ वह सेज पर नहीं था। जो....तोही=जो तेरे हाथ में है। दोहा ४—जानि....कानि=अपने कुल की मर्यादा का विचार करती हुई। जिअहानि=जी का क्लेश। चौपाई—सभागी=भाग्यमयी। जेहि जीअ=जिसके जीवन में। भें= होगई। परगट....गोरी=प्रकट रूप में मैं सभी ओर से गल रही हूँ। दोहा ५—विध ने=विधाता ने। चौपाई—तिअ=मुझ स्त्री में। नाभ-नार—शिशु की दशा में पायी जाने वाली नाभि की उल्वनाल। गिअ.... टारी=मेरी गर्दन पर उसने क्यों चला दी। नाभ....टारी=जिस छुरी से मेरी माँ वा किसी अन्य स्त्री ने मेरी नाल काटी थी उसे उसने मेरी गर्दन पर क्यों नहीं चला दी जिससे मैं उसी समय मर गई होती और यह दुःख मुझे देखने को नहीं मिलता। ओहीं=उस प्रियतम के बिना। छिनु=क्षणिक। जाग=समय। दोहा ६—दुभर=कठिनाई। चौपाई—निरपहियाँ=माना जाता है। सहसकांट=सहस्रों कांटोंवाली। दोहा ७—सरिअ=पाता है। नगु=नगकी भाँति, रत्न के रूप में।

'अंत' वाले अवतरण में कवि ने कहानी के विषय में अपनी अंतिम बातें बतलायी हैं।—चौपाई—कबिआई=काव्य रूप में रची गई है। पुरुष....कराई=इन सभी में पुरुष या प्रियतम की मृत्यु दर्शाकर उसकी रानी या प्रियतमा को सती रूप दिखलाया है। जोवनु=[illegible]

के कारण। जो....काऊ = जो मरकर जीता है वह अमर हो जाता है। सकती काल = काल की शक्ति। अंजनी = एक काष्ठौषधि का नाम। पाइ = खाकर। वासा = रहता है। दोहा १—करैंका पार = क्या कर सकता है। कालकै = मृत्यु का। चौपाई—कैपारै = कर सकता है। सरनी = शरों से। दोहा २—जो....भै = जो तुम्हारे जी में न काल का भय हो तो। सरबसार = सब का सार पदार्थ।

४—उसमान

चित्रावलि

कथासारांश—नैपाल के राजा धरनीधर को शिव पार्वती के प्रसाद से एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'सुजान' रखा गया। सुजान एक दिन आखेट करता हुआ मार्ग भूल कर किसी देव की एक मढ़ी में जा पहुंचा जहां उसके सोते समय देव ने उसकी रक्षा की। देव एक दिन उसे अपने किसी साथी के साथ लेकर रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव देखने गया और वहां उसे उसकी चित्रसारी में सुला दिया। सुजान ने वहां पर जब चित्रावली का चित्र देखा तो वह उसपर मोहित हो गया और वहीं पर उसने एक अपना चित्र भी बना दिया। तत्पश्चात वह सोगया और फिर उसी दशा में उसे उठाकर दोनों देव उसे मढ़ी में रख आए। मढ़ी में जाग उठने पर सुजान चित्रावली के विरह में व्याकुल हो उठा और जब उसे उसके पिता के आदमी घर ले गए तब भी वह उसी दशा में खिन्न रहने लगा। अंतमें वह अपने सहपाठी सुबुद्धि नामक ब्राह्मण के साथ फिर उस मढ़ीमें गया और वहां जाकर उसने एक बड़ी भारी अन्नसत्र खोल दिया।

उधर चित्रावली भी सुजान द्वारा अपनी चित्रसारी में चित्रित चित्र देखकर उसपर मोहित हो चुकी थी। उसने अपने नपुंसक भृत्यों को जोगियों के वेश में राजकुमार का पता लगाने के लिए भेजा और उनमें से एक ने

सुजान के अन्नसत्र तक पहुंचकर उसे किसीप्रकार रूप नगर तक ले आया। तब तक इधर किसी कुटीचर ने राजकुमारी की मां से उसकी निंदा करदी थी और उसने राजकुमार का चित्र धुलवा दिया था। राजकुमारी ने उसे इसी-कारण निकाल दिया और उसका सिर तक मुंडवा दिया जिससे रुष्ट होकर वह उससे वदला लेने पर आरूढ़ होगया। जब सुजान रूपनगर पहुंचा और वहां पर शिव मंदिर में राजकुमारी चित्रावली के साथ उसका साक्षा-त्कार हुआ तो उक्त कुटीचर ने उसे अंधा करके किसी गुफा में डाल दिया। उस गुफा में राजकुमार को एक अजगर निगल गया था, किंतु उसने उसके विरह-ताप से घबरा कर उसे फिर उगल दिया। एक वनमानुस ने तव राज-कुमार को एक अंजन दिया जिससे उसकी दृष्टि वन गई, परन्तु उसे जंगल में घूमते समय एक हाथी ने पकड़ लिया। उस हाथी को भी एक पक्षिराज ने पकड़ लिया और उसे एक समुद्र तट पर गिरा दिया जहां से फिर घूमता हुआ राजकुमार सागरगढ़ नामक नगर में पहुंच गया।

सागरगढ़ नगर की एक फुलवारी में विश्राम करते समय राजकुमार को वहां की राजकुमारी कवंलावती ने देख लिया। वह उसपर मोहित हो गई और उसे उसने अपने यहां भोजन के वहाने वुलवा भेजा। भोजन करते समय उसपर अपना हार चुराने की चोरी में फंसाकर राजकुमारी ने उसे बंदी बनवा लिया। परंतु जब राजकुमारी के रूप की प्रशंसा सुनकर सोहिल राजा ने सागरगढ़ पर चढ़ाई की तो उस राजकुमार ने कारागार से निकल कर उसे मार भगाया और उसके फलस्वरूप कवंला के साथ-साथ उसका विवाह कर दिया गया फिर भी राजकुमार ने, चित्रावली के साथ भेंट न होने तक, कंवलावती के साथ समागम न करने की प्रतिज्ञा की और कवंलावती को लेकर गिरनार की यात्रा के लिए गया जहां पर उसे चित्रावली द्वारा भेजे गए किसी दूत ने पहचान कर उसे इस बात की सूचना दे दी। चित्रावली का एक पत्र लेकर फिर वह दूत सागरगढ़ लौटा

के कारण। जो....काऊ = जो मरकर जीता है वह अमर हो जाता है। सकती काल = काल की शक्ति। अंजनी = एक काष्ठौषधि का नाम। खाइ = खाकर। वासा = रहता है। दोहा १—करैंका पार = क्या कर सकता है। कालकै = मृत्यु का। चौपाई —कैंपारै = कर सकता है। सरनी = शरों से। दोहा २—जो....भै = जो तुम्हारे जी में ने काल का भय हो तो। सत्वसार = सत्र का सार पदार्थ।

४—उसमान

चित्रावलि

कथासारांश—नैपाल के राजा धरनीधर को शिव पार्वती के प्रसाद से एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'सुजान' रखा गया। सुजान एक दिन आखेट करता हुआ मार्ग भूल कर किसी देव की एक मढ़ी में जा पहुंचा जहां उसके सोते समय देव ने उसकी रक्षा की। देव एक दिन उसे अपने किसी साथी के साथ लेकर रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव देखने गया और वहां उसे उसकी चित्रसारी में सुला दिया। सुजान ने वहां पर जब चित्रावली का चित्र देखा तो वह उसपर मोहित हो गया और वहीं पर उसने एक अपना चित्र भी बना दिया। तत्पश्चात वह सोगया और फिर उसी दशा में उसे उठाकर दोनों देव उसे मढ़ी में रख आए। मढ़ी में जाग उठने पर सुजान चित्रावली के विरह में व्याकुल हो उठा और जब उसे उसके पिता के आदमी घर ले गए तब भी वह उसी दशा में खिन्न रहने लगा। अंतमें वह अपने सहपाठी सुबुद्धि नामक ब्राह्मण के साथ फिर उस मढ़ीमें गया और वहां जाकर उसने एक बड़ी भारी अन्नसत्र खोल दिया।

उधर चित्रावली भी सुजान द्वारा अपनी चित्रसारी में चित्रित चित्र देखकर उसपर मोहित हो चुकी थी। उसने अपने नपुंसक भृत्यों को जोगियों के वेश में राजकुमार का पता लगाने के लिए भेजा और उनमें से एक ने

सुजान के अन्नसत्र तक पहुंचकर उसे किसीप्रकार रूप नगर तक ले आया। तव तक इधर किसी कुटीचर नें राजकुमारी की मां से उसकी निंदा करदी थी और उसने राजकुमार का चित्र धुलवा दिया था। राजकुमारी ने उसे इसी-कारण निकाल दिया और उसका सिर तक मुंडवा दिया जिससे रुष्ट होकर वह उससे वदला लेने पर आरूढ़ होगया। जव सुजान रूपनगर पहुंचा और वहां पर शिव मंदिर में राजकुमारी चित्रावली के साथ उसका साक्षात्कार हुआ तो उक्त कुटीचर ने उसे अंधा करके किसी गुफा में डाल दिया। उस गुफा में राजकुमार को एक अजगर निगल गया था, किंतु उसने उसके विरह-ताप से घवरा कर उसे फिर उगल दिया। एक वनमानुस ने तव राज-कुमार को एक अंजन दिया जिससे उसकी दृष्टि वन गई, परन्तु उसे जंगल में घूमते समय एक हाथी ने पकड़ लिया। उस हाथी को भी एक पक्षिराज ने पकड़ लिया और उसे एक समुद्र तट पर गिरा दिया जहां से फिर घूमता हुआ राजकुमार सागरगढ़ नामक नगर में पहुंच गया।

सागरगढ़ नगर की एक फुलवारी में विश्राम करते समय राजकुमार को वहां की राजकुमारी कवंलावती ने देख लिया। वह इसपर मोहित हो गई और इसे उसने अपने यहां भोजन के वहाने वुलवा भेजा। भोजन करते समय इसपर अपना हार चुराने की चोरी में फंसाकर राजकुमारी ने इसे वंदी वनवा लिया। परंतु जव राजकुमारी के रूप की प्रशंसा सुनकर सोहिल राजा ने सागरगढ़ पर चढ़ाई की तो इस राजकुमार ने कारागार से निकल कर उसे मार भगाया और उसके फलस्वरूप कवंला के साथ-साथ इसका विवाह कर दिया गया फिर भी राजकुमार ने, चित्रावली के साथ भेंट न होने तक, कंवलावती के साथ समागम न करने की प्रतिज्ञा की और कवंलावती को लेकर गिरनार की यात्रा के लिए गया जहां पर इसे चित्रावली द्वारा भेजे गए किसी दूत नें पहचान कर उसे इस वात की सूचना दे दी। चित्रावली का एक पत्र लेकर फिर वह दूत सागरगढ़ लौटा

जहां पर उसे धुई रमता देखकर सुजान ने उनसे भेंट की। सुजान ने उसे वहां पर उसे पहचान कर फिर रूप नगर की ओर यात्रा की और उस दूत को भी अपने साथ लेलिया।

इसी बीच रूपनगर की राजसभामें जाकर किसी कथक ने सोहिल राजा के युद्ध के गीत सुनाये। गीतों को सुनकर चित्रावली ने पिता को उसके विवाह की चिंता हुई और उसने अपने चार चित्रकारों को सुंदर राजकुमारों के चित्र लाने के लिए भिन्न-भिन्न देशों में भेजा इधर सुजान को किसी जगह बिठाकर जब दूत चित्रावली को उसके आने का समाचार देने जा रहा था कि वह पकड़ लिया गया। उसके न लौटने पर सुजान चित्रावली का नाम ले लेकर पुकारने लगा जिसे सुनकर राजा ने उसे मारने के लिए मत्त-हाथी छोड़ दिया। मत्तहाथी को जब सुजान ने मारडाला तब उसपर स्वयं राजा चढ़ाई करने चला।किंतु इसी बीच में एक चित्रकार सोहिल कोमारने वाले राजकुमार का चित्र लेकर वहां आ पहुंचा और जब राजा ने उस चित्र द्वारा सुजान को पहचान लिया तो उसके साथ चित्रावली का विवाह कर दिया और इस प्रकार सुजान एवं चित्रावली का एक बार फिर संयोग हो गया।

उसी समय सागरगढ़ की कंवलावती ने विरह से व्याकुल होकर सुजान के पास हंस मिश्र को दूत बनाकर भेजा। हंसमिश्र ने भ्रमर की अन्योक्ति द्वारा सुजान को कंवलावती के प्रेम का स्मरण दिलाया। इसपर सुजान चित्रावली को लेकर अपने देश नैपाल की ओर लौट चला और मार्ग में उसने कंवलावती को भी अपने साथ ले लिया। दोनों पत्नियों को अपने साथ लाते समय सुजान को समुद्री तूफान आदि के कष्ट झेलने पड़े और वह अंत में नैपाल पहुंच गया जहां बहुत दिनों तक भोग विलास करता रहा।

'परे वा खंड' वाले अवतरण में मढ़ी में रहते समय जोगी द्वारा सुजान को उपदेश देना बतलाया गया है।—चौपाई—जागा....सोई=सचेत

हुआ । सो रूप=ऐसे रूपका । मनसा=अभिलाषा । गियाना=विचार। अनूपा=अनुपम रूपनगर। तह ताईं=उसको लक्ष्य कर के, उसके लिए। दोहा २०२—मकु=कदाचित्, संभव है कि। चौपाई—कहेसि=जोगी ने तब कहा कि। घराट=विकट। पतार=नीची तली की ज़मीन। काँप नर जांघी=मनुष्य अत्यन्त भयभीत हो जाता है। परतेजा=परित्याग कर दिया , मोह नितांत छोड़ दिया। सार=इस्पात। पाँसुली=पसली की हड्डी। सार. . . .करेजा=जिसका शरीर अत्यन्त दृढ़ बना हुआ हो। घर आपन=अपने घर की भाँति सुगम। बूझा=समझ रखा है। वार. . . . सूझा=अभी बाहर ही बाहर की बातें देख रहे हो अभी तक तुम्हारा ध्यान उन बातों की ओर नहीं जा सका है जो तुम्हारे ज्ञान में नहीं हैं। बैठे. . . . अँधियारे=तुम्हारे भीतर तुम्हें हानि पहुँचाने वाले अपना काम करने में लगे हुए हैं और उनका तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। दे बार=दर्वाजा बंद कर के अपने को सुरक्षित समझ कर। रही. . . .पूंजी=उधर भीतर से तुम नितांत सत्त्वहीन हो चुके हो। दोहा २०३—का. . . .साध=इस कोरी अभिलाषा के बल पर तुम्हें क्या मिल सकेगा ? चौपाई—साधा= साध, कामना। चलत=प्रयत्न करते समय। निचिंत=असावधान। चाहै जो=यदि होने वाला हो तो। छांटा=छोड़े। साथ जाइ=संग में पड़ जाने पर। पंथ जाइ तेहि=उससे हो कर रास्ता जाता है। कोटा=गढ़। चार=आचार। दोहा २०४—बेगर बेगर=बिलग-बिलग, पृथक्-पृथक्। चौपाई—बारा=दर्वाजे। अनवन भाँति=नाना प्रकार के। जीव=जीवित का। करै महँकारा=अपनी गंध फैलाते हैं। दोहा २०५—पंथहिं=पंथियों अर्थात् यात्रियों को। चौपाई—लेखें=समझे। विषै= वस्तुओं को। जेहि ऊठै सांसा=जितने मात्रसे जीवन कायम रहे, परिमित। फिरै न माय=मतवाला न हो जाय । मिलिकै. . . .जेउनारी=पंचेद्रियाँ जो कुछ संयत रूप से उपस्थित करें उसका ही उपभोग करे। अंस=अंश,

भाग। पांच....जोहाऊल=पांचों वक्त नमाज़ पढ़ा करे। दोहा २०६—धरं छोह=प्रेम करे। कहाइ=कहा करते हैं। चौपाई—पंथी जेहि=जिस मार्ग से। सो व्यवहार कहौं=उसका विवरण देता हूँ। करु काना=ध्यानपूर्वक सुनो। तस=वैसे। नास=नाक। कँ=कर के। ओहि....लहु=उस द्वार तक। दोहा २०७—रहसत=प्रसन्न हो जाता है। चौपाई—आन=अन्य प्रकार को। विकारा=बेकार सा बन कर। तपसारा=तप सिद्ध करते हैं। डाढे=जलाते हैं। विपरीतहि=ऊपर पैर कर के। दोहा-२०८—नित....लावई=ऐसे लोग भी जिनके यहाँ सदा ड्योढ़ी लगा करती है। चौपाई—वरावें=विलगाये फिरे। रजकनासि=वोवियों की चिंता छोड़ कर। मेखलि=एक प्रकार का पहनावा जिसे बहुधा योगी अपने गले में डाल कर उसके द्वारा अपनी पीठ एवं पेट के भाग ढक लिया करते हैं। यह तिकोना सा ऊपर से नीचे की ओर लटका रहता है और दोनों बाँहें इसके बाहर पड़ जाती हैं। सिंगी=शृंगी नाम का एक बाजा जिसे कनफटे जोगी लिए फिरते हैं। अधारी=काठ के डंडे में लगा एक छोटा सा पीढा जिसे जोगी बहुधा टेक कर बैठने के लिए अपने पास रखा करते हैं। जोगौटा=जोगियों की झोली। रुद्राप=रुद्राक्ष की माला। धँधारी=गोरख धंधे की लकड़ी जिसे कनफटे लिए फिरते हैं। दोहा २०९—आछ=अच्छी तरह से। पाछ=पीछे। चौपाई—प्रेम वार=प्रेम की फेरी। पवरि=द्वार। दोहा—२१०—रहहि....भानु=जो नेत्र पहले ज्योतिहीन रहा करते हैं वे भी प्रथम साक्षात्कार के होते दीपक की भाँति प्रकाशमान हो जाते हैं, फिर चंद्रवत् बन जाते हैं और तीसरी दशा तक उनकी शक्ति सूर्यवत् हो जाती है। यहाँ पर ज्ञान की क्रमिक वृद्धि की ओर संकेत जान पड़ता है। चौपाई—खाल=नीची भूमि। सरवन=नहीं धँसती, प्रभावित करती। रहस=प्रसन्नता। दोहा २११—पंथ....सो=जो मार्ग साधारण मार्ग सा नहीं है। ताहि=वही। चौपाई—मयाजिय=

अनुकंपामयी। दोहा २१२—उतहिक=उसी के अनुरूप । चौपाई—बाजु=बिना। सौरि=चादर। बनउर=कपास का बीज। टोवा=ढूंढ़-ढूंढ़ कर निकाला करता है। साथरी=साधारण सी चटाई। दोहा २१३—सरस=सदृश। मानहु= भोगो।

'परेवा आगमन खंड' वाले अवतरण में उक्त जोगी का फिर चित्रावली के यहाँ लौट कर उससे बातचीत करना बतलाया गया है।—चौपाई—सुनि=जोगी द्वारा सुजान संबंधी सभी बातों को सुन कर। कौंल=कमल। सुनि कुलीन=यह जान कर कि राजकुमार उच्च राजकुल का है। निक्ख=निष्क, बदला। मोहि. . . .दीन्हा=मुझसे तेरे उपकार का बदला नहीं दिया जा सकता। मोहि. . . .हानी=मुझे लक्ष्मण की भाँति शक्ति लग चुकी थी और अब,प्राणांत होने ही जा रहा था कि । हनु होइ=हनुमान की भाँति उपकारी बन कर। दानौ=दानव। भिम=भीम नामक पांडव। जमकातरि=(यम कर्त्तरि) यमराज की छूरी, चूरी=चूर्ण कर दिया, तोड़ दिया। सारौं=प्रस्तुत करूँ । दोहा २५९—तन. . . .प्रान=मेरा शरीर यदि प्राणों द्वारा उस भाँति भरा होता जैसी पांचाली की थाल भरी थी। (टि०—कहा जाता है कि द्रौपदी के पास कोई ऐसी थाल थी जो सदा अभीष्ट वस्तुओं से भरी रहा करती थी।) चौपाई—लेखा=नियम। अंध. . . .देखा=अंधे को तभी द्पूरा विश्वास होता है जब वह स्वयं अभीष्ट वस्तुको देख सके। सवन=श्रवण । सोत=स्रवत। दपति=ज्योति। संतोपा=संतुष्ट हुआ। जिय धोखा=हृदय का संदेह। निकास=बाहर जाने-आने की स्वतंत्रता। सांकरी=वह लोहे का चुल्ला जो बंदियों को पिन्हाया जाता है, यहाँ पर वंश-मर्यादा आदि की बाधाएं। हटकै=मना किया जाता है। दारुन=कड़ाई=के साथ। रहस. . . . लरिकाई=उन क्रूर लोगों ने मेरे लड़कपन को न जाने कहाँ लोप कर दिया। कहा. . . .वारी=अपने क्रीड़ा-स्थल सरोवर तट को कौन कहे। सपने. . .

चितसारी=अपनी चित्रशाला तक को मैं स्वप्न में भी नहीं देख पाती। दोहा २६०—एहि....जरि=इस प्रकार का मेरा यौवनकाल वलि नष्ट हो जाय। निसरत....सरूप=जिससे मुझे कोई बाहर निकलते समय रोक न सके और मैं अपने प्रियतम के स्वरूप को एक बार फिर देख सकूं। चौपाई—उमा ही=उमंगों से भरी हुई। विहाना=दूर हो गई। हींछा=अभिलाषा। सिउराती=शिवरात्रि का अवसर। जेवावब= खिलाऊंगी। तेन्ह=उनके। हेठ=नीचे। दहुं=कदाचित्। दोहा २६१ —अँदोह=खटका, बाधा का भय। वरुनिन=अपनी आँखों की वरुनियों के बालों से। चौपाई—काई=मुर्चा। देखि....काहू=कोई देखने न पावे। छाड़ि....पतियाहू=परे वा अर्थात् तुम जोगी के अतिरिक्त वह किसी अन्य पर विश्वास न करे। विगसि=प्रसन्नता के साथ। होइ.... लेखा=उस प्रकार की दशा हो जायगी जैसी हजरत मूसा की पहलेपहल परमात्मा की ज्योति देख कर हुई थी। बारहभान....गोती= जैसी द्वादशादित्य के प्रकाश की हुआ करती है। दोहा २६२—जीउदै=जी लगा कर। नैनन....अकास=नेत्रों को ऊपर उठाये रहना। चौपाई— मारुत वहा=हवा में उड़ गई। झकझोरा=हिलाया। (बलपूर्वक)। उघारी=स्पष्ट कर के। दोहा २६३—रहस= सुख, आनंद। मया बोलिऔ=कृपा कर के बोले। आदेश=आदेश, नमस्कार (जोगियों की प्रथा के अनुसार)। चौपाई—नैनन=आंखों में। फूटि....ढरा=वे सभी छाले फूट-फूट कर मेरे नेत्रों द्वारा आँसु ओं के रूप में वह चुके हैं। पातल=पैरों के नीचे। समुंह=सामने। ददौरी=ददोरा वा चकत्ती की सूजन के समान। अंकोरी=नुकीले डाभ आदि अथवा अंकड़ी। दोहा २६४—झार=ज्वाला, ताप। वैसंदर=आग। चौपाई—आयन= आना, पहुँचना। दहुँकव=जब कभी। सिंभु=शिव। नैनमेराश=देखा- देखी। हींछ=मनोरथ। दोहा २६५—मुकुर=दर्पण। चौपाई—बारु=

बालु का कण तक भी। आनहि=अन्य किसी पर। दोहा २६६—सो वार=वह शिवरात्रि का दिन। चौपाई—नेगिहि=आश्रित कर्मचारियों को। दंपति=पति-पत्नी। अनवन=नाना प्रकार। घिउपक जलपक= घी में पकाया गया एवं जल में पकाया गया। नाउ=मात्र। परोसन= परसने में। दोहा २६७—मकु=संभव है कि। सोटिया=सोंटेवाले। दोहा=२६८—अधार= नियम। चौपाई—चित्रिनि=चित्रावली ने। वार बराती=बरात वाले। भिरावा=मिलन, संयोग। मलिन=मैल, मलिनता। दहुँ=कदाचित्। कसमाना=व्याकुल हो रहा हो। दोहा २६९—प्रेम=विरहाग्नि में। चौपाई—तुलानी=आगई। मया= अनुग्रह। हँकारा=बुला भेजा है। दोहा २७०—हसि=हो, बने हो। चौपाई—मजीठ=पक्के लाल=रंग का। केसर=केसरिया रंग का लीन=उपलब्ध हो गया। परतीता=विश्वास। नाहित....साखा= नहीं तो पूर्ण नैराश्य हो जाता। दोहा २७१—ससिहर किरन=चंद्रमा की किरणें। पहुमि=पृथ्वी पर।

५—जान कवि

(१) कनकावती

कथा सारांश—भरथ नामक एक राजा था जिसकी राजधानी का नाम भरथनेर था। भरथनेर का नगर चारों ओर से जल के बीच बसा था। राजा की कई रानियाँ थीं। किंतु किसी को कोई संतान न थी। किसी प्रकार एक पुत्र हुआ जो अत्यन्त सुन्दर था और जिसका नाम 'परमरूप' रखा गया। एक रात को परमरूप ने स्वप्न में किसी सुन्दरी को देखा जिसके लिए वह पागल हो उठा और किसी चित्रकार द्वारा उसके कथनानुसार एक चित्र बनवाया गया जिसे देख कर एक विप्र ने बतलाया कि यह चित्र सिंघपुरी के राजा की पुत्री कनकावति का है और वह ४०० कोस पर है।

विप्र ने यह भी कह दिया कि उस कन्या का विवाह तब तक स्थायी रूप से नहीं हो सकता जब तक जगपतिराय स्वीकृति न दें।

राजा के लड़के ने यह सुन कर प्रधान को बुलाया और स्वयं जोगी का भेष धारण कर एक सेना के साथ चल पड़ा। इधर विप्र ने जाकर इस बात की सूचना कनकावति को दे दी और परमरूप का सौंदर्य वर्णन कर उसकी ओर उसका मन भी आकृष्ट कर दिया। भरथराय ने पहले प्रधान को भेज कर राजसिंघ से कनकावति को मँगा लेना चाहा परन्तु वह इस बात पर सम्मत नहीं हुआ और दोनों में युद्ध छिड़ गया। भरथराय हार गया और परमरूप को एक संन्यासी अपने साथ ले कर जंगल की ओर चला गया। राजकुमार के इस प्रकार जीवित रहने का समाचार दे कर विप्र ने इधर भरथराय को और उधर कनकावति को धैर्यपूर्वक रहने के लिए उत्साहित किया।

फिर विप्र स्वयं परमरूप को ढूंढ़ने निकला और उसे संन्यासी के आश्रम में जाकर पाया। विप्र उस दिन से परमरूप एवं कनकावति के बीच पत्रवाहक का काम करने लगा। इस प्रकार उसने दोनों के पारस्परिक प्रेम-भाव को जागृत रखा। संन्यासी ने भी इसी बीच में राजकुमार को 'कच्छप निधि' की विद्या सिखला दी जिसके बल पर वह एक दिन अदृश्य हो कर विप्र के साथ सिंघ नगर जा पहुँचा। परंतु कनकावति ने उसे बिना विवाह स्वीकार नहीं किया। अतएव विप्र को उन दोनों का विवाह संबंध भी अनुष्ठित करना पड़ा। एक दिन केलि करते समय परमरूप को भरथनेर स्मरण हो आया और दोनों प्रेमी बीहड़ यात्रा समाप्त कर वहाँ भी पहुँच गए।

इधर राजसिंघ को अपनी पुत्री के इस प्रकार चले जाने पर बड़ा क्षोभ हुआ और उसने जगपतिराय से ये सारी बातें जना दी। जगपतिराय क्रुद्ध हो कर भरथनेर पर चढ़ आया और उसने उस नगर के आधे भाग को

सुरंग से उड़ा दिया। उसके लोग पानी में वहने लगे और परमरूप इस प्रकार वहता-वहता जगराय के हाथ लग गया जिसने उसे पुत्रवत् पाल रखा। उधर कनकावति भी, इसी भाँति, जगपतिराय के हाथ लगी जिसने उसे पुत्रीवत् स्वीकार कर लिया। परन्तु वह सदा विरह में तड़पा करती थी। एक वार संयोगवश जगराय ने जगपति को लिखा कि मेरे पुत्र के साथ तुम अपनी कन्या का विवाह कर दो। इसप्रकार मंगनी तै हो कर दोनों की विवाह विधि सम्पन्न हो गई। अंत में क्रमशः जगपति और जगराय के साथ राजसिंघ और भरथराय भी मिल गए।

अवतरण में इस अंतिम घटना का ही विवरण दिया गया है।—दोहा १—जुरी जुराई=एक वार पहले जो विप्र द्वारा, विवाह के अनुष्ठान से, जोड़ दी गई थी (वह फिर दूसरी विवाह विधि के आधार पर भी एक बार जुड़ी)। फिरि जुरी=फिर जगपतिराय और जगराय के प्रयत्नों द्वारा जुड़ गई। जोरी है जगदीस=यह पुनर्वार का मिलन भगवत्कृपा से ही संभव हुआ। परफुलित=प्रसन्न चित्त और आनंदित। जोरी=कनकावति और परमरूप की जोड़ी। बिस्वावीस=अत्यन्त। चौपाई—नगन जटित=नगीनों से जड़ा हुआ। नरवाम=वर-वधू। विरधाई....पूर=जो अत्यन्त वृद्ध थे। मूर=मूल। लानी=उपस्थित कर दी। चौनी=चौगुनी, कई गुनी। दोहा २—अनंग तरंग=काम वासना के भावों की वृत्तियाँ। भले....डार=एक अनोखा रंग चढ़ आया। चौपाई—सुनि=सुनो। प्रानी=प्राणाधार। सपुनौ=स्वप्न में। नातर=नहीं तो (यदि तुमसे मिल जाने की आशा नहीं बंधी रहती तो)। सुनत ही व्याह=इस दूसरे विवाह की चर्चा सुनते ही। षाड़त जीव=प्राण संकट में पड़ जाते। परगट....सपुनौ=स्वप्न के दृश्य प्रत्यक्ष हो गए। पोपन=जीवित रखने वाला। दहुवन पित=दोनों के ही पिता। भरैं=सह रहे हैं। दोहा-३—जु=जो कुछ। चलित=चलते समय, विदाई के असवर पर।

उलटि....भेज = लौटा देना। जो....जोरहु = यदि मुझसे संबंध रखना चाहते हो तो। बधुवा = कारावद्ध (जो लोग लड़ाई के उपलक्ष्य में बंदी बना लिये गए थे)। अनगन = अगिणित। दोहा ४—दीप.... उजियार = जैसे देहरी पर दीपक रख देने से उसके प्रकाश में दोनों ओर अर्थात् बाहर और भीतर एक साथ प्रकाशित हो उठता है उसीप्रकार दोनों एक समान आनंदित हुए। कुंवर = परमरूप। दोइ मानस = दो दूत। भेद लपाये इन सारी बातों की सूचना दे दी। चंचल = घोड़े। हुलासन = आल्हादित हो कर। चढ्यौ = आ उपस्थित हुए। भरमान्यो = पहलेआश्चर्य चकितहो गए। चहुनि = चारों ने। सोरठा ५—अनुराव = पारस्परिक प्रेम संबंध। चौपाई—ज = जो कुछ। ग्रब = गर्व, घमंड करते हो। लछिमी बिसासी = लक्ष्मी पर विश्वास करने वाले, लक्ष्मीवान्। भारथ = युद्ध। कंटट = विघ्न बाधाएँ। धी = पुत्री को, कनकावति को जिसे उसने पुत्रीवत् पाल रखा था। दोहा ६—पोपन कौं....चहै = उसने जिसे जीवित एवं पुष्ट रखना चाहा। पोपन लाग्यौ ताहि = उसे किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची। दई = दैवकी। गति = नियम, विधान।

(२) कामलता

कथा सारांश—हंसपुरी नगरी में रसाल नामक एक राजा रहा करता था जिसके प्रधान का नाम बुधवंत था। एक रात को उसने स्वप्न में किसी सुंदरी को अपने साथ मिलते देखा जिसकारण जगने पर वह विरहाकुल हो गया। बुधवंत ने यह देख कर उसके कथनानुसार एक चित्र बनवा दिया जिसे पा कर वह और भी विचलित हो उठा। उस चित्र को मार्ग में रख दिया गया ताकि उसे देख कर कोई पथिक उसके मूल का परिचय दे सके। एक दिन संयोगवश किसी पक्षी ने उस चित्र को देख कर बतलाया कि वह

सुंदरपुरी की शासनकर्त्री कामलता का है। किन्तु वह किसी पुरुष से विवाह नहीं करना चाहती अपितु इस नाम से भी चिढ़ा करती है।

इसपर बुधवंत एवं रसाल दोनों ही सुंदरपुरी की ओर चले और वहाँ जा कर प्रधान ने राजा का एक चित्र किसी चित्रकार से बनवाया। उस चित्र को जब कामलता ने देखा तो वह तत्क्षण मोहित हो गई और उसने रसाल को बुला भेजा। अंत में दोनों के बीच विवाह संबंध हो गया।

अवतरण में कामलता द्वारा रसाल के चित्र का देखा जाना और उससे प्रभावित होना बतलाया गया है—चौपाई—पैमु = प्रेम। बिथुरयौ = व्याप्त हो गया। बावर = पगली सी। सदन = महल। नैक. . . . जनावहु = तनिक इन आँखों से मेरी ओर अपने प्रेम को प्रकट करो। लाई = लाइ, आग, विरहाग्नि। दोहा १—यौं = . . . में = यदि संसार में ऐसा न होता तो। चौपाई—नारि = कामलता। याहीं = इस चित्रवाले का। भौतारन = परमेश्वर। बिहारन = उपभोग अर्थात् उपलब्ध होने के विचार से। प्रान. . . .बूझै = मूर्ख प्राणों को उस अज्ञेय वस्तु की जानकारी नहीं हो पाती। नैन. . . .सूझै = इन अंधे नेत्रों को उस अगोचर वस्तु के दर्शन नहीं हो पाते। टेरयौ = बुला भेजा। जिन. . . .हान = जो यवनिका अर्थात् अज्ञान के पर्दे को दूर कर दे। गुर. . . .धाऊँ = शीघ्र गुरू के रूप में अंगीकार कर लूं। दोहा २—हरिष = प्रसन्न हो कर। जुहार = अभिवंदन। पैमुतई = उस प्रेम के द्वारा पीड़िता की। चौपाई—हरन = राय हिरन, मृग। हौं. . . .डारी = मुझे इस चित्र ने चित्रवत् स्तब्ध व मूक बना डाला है। अथाऊँ वोर = इसके अंत की थाह नहीं लगा पाती। इंह डर = इस भय से। दोहा ३—घमडि. . . .जलद = छाती में मानो उमड़-घुमड़ कर बादल उठा करते हैं। पानिप = सौंदर्य। चषिन = आँखों में।

(३) मधुकर मालति

कथा सारांश—अयोध्या नामक नगर में एक सौदागर था जिसका नाम रतन था और जिसके पुत्र का नाम मधुकर था। वह अपने गुरु के पास नित्य पढ़ा-लिखा करता था। एक दिन उस मधुकर की दृष्टि चटसार में पढ़ने जाती हुई लड़कियों में से एक पर पड़ गई जो परम सुंदरी थी और जिसका नाम मालती था और दोनों एक दूसरे को देख कर मोहित हो गए। मधुकर ने घर लौटने पर अपने पिता रतन से कहा कि गुरु के यहाँ अकेले पढ़ने में मेरा जी नहीं लगता मुझे चटसार में भेज दो। इसप्रकार मधुकर और मालति दोनों एक साथ हो गए। उधर मालती की यौवनावस्था देख कर उसके पिता ने उसे घर पर ही पढ़ाना उचित समझा। उसने चटसार के गुरु से उसके लिए कोई अध्यापक मांगा जिस पर गुरु ने इस कार्य के लिए मधुकर को ही नियुक्त करा दिया।

इधर मधुकर के पिता को उन दोनों के प्रेम का पता चल गया और उसने उसे अपने साथ बाहर ले जाने का विचार किया। इसप्रकार दोनों प्रेमियों का वियोग हो गया और मधुकर विरह के कारण दुखी रहने लगा। मालती को भी किसी विलाइत के बादशाह ने एक सहस्र मुद्रा दे कर चेरी के रूप में खरीद लिया और वह उसे अपने साथ रखने लगा। परंतु मालती उसके यहाँ से वज़ीर के पास चली गई और वह भी विरहिणी के समान ही जीवन व्यतीत करने लगी।

मधुकर का पिता काल पाकर विदेश में ही मर गया और वह अपनी माता के यहाँ लौट आया। उसने अपने गुरु द्वारा मालती के बिक जाने का पता पाया और उसे ढूंढ़ने के लिए निकल कर घूमता-फिरता उसके यहाँ तक पहुँच गया। वहाँ पर उसे पता चला कि वज़ीर की चेरी मालती उसके यहाँ नहीं रहना चाहती इस कारण वज़ीर उसे मार डालना चाहता है। संयोगवश वह मारी नहीं जा सकी और बादशाह ने उसे अपने यहाँ

बुला लिया। परन्तु बादशाह के यहाँ रहने से भी मालती ने इनकार कर दिया और वह प्रलोभनों पर भी नहीं मानी तो बादशाह ने भी उसे मरवा डालने का प्रयत्न किया और न मार सकने पर उसे तुर्किस्तान के किसी छत्रपति के हाथ बेंच दिया।

मालती को लेकर छत्रपति तुर्किस्तान गया। उसके साथ मधुकर भी किसी प्रकार हो लिया। छत्रपति ने मालती को अपनी पुत्री की चेरी बना रखी जहाँ पर उसका दामाद इस पर मोहित हो गया। अपने स्वीकृत न किये जाने पर इसे आधी रात को पानी में डुबवा दिया परन्तु उस संदूक को जिसमें मालती रखी गई थी किसी अरमनी ने पानी में से निकाल लिया और अपने साथ उसे नाव द्वारा ले चला। संदूक से मालती को निकाल कर अरमनी ने उसका आलिंगन करना चाहा। परन्तु मालती ने स्वीकार नहीं किया जिस पर मधुकर ने जो बराबर साथ लगा रहता था अरमनी को वचन दिया कि मैं इसे समझा-बुझा कर ठीक कर दूंगा। मैं इसकी भाषा जानता हूँ।

नाव तब तक 'सतान' तक पहुँच गई जहाँ के बादशाह ने अपने प्रधान को अरमनी के नाव का सारा सामान खरीदने को भेजा। प्रधान यहाँ पर मालती को देख कर मोहित हो गया और उसके स्वीकार न करने पर इसे दंड देने पर तुल गया। यह सुन कर बादशाह ने इसे अपने यहाँ बुलवा लिया और इसे पांच रत्न दे कर खरीद लिया। जब वह वहाँ भी न रह सकी तो उसने इसे फिर अरमनी को लौटा देने का विचार किया। उसके आदमियों ने मालती को लौटाते समय भूल से इसे मधुकर को ही दे डाला, किंतु उससे उपर्युक्त पांच रत्न न पाकर उसे 'भाकसी' में डाल दिया। 'भाकसी' में रहते समय मधुकर का एक माझी मित्र उसे चोरी-चोरी नित्य एक मछली खाने के लिए दे आया करता था। एक दिन संयोगवश उसे किसी मछली के पेट से वे पांच रत्न मिल गए जिन्हें

उसने कभी पानी में फेंक दिया था और उन्हें दे कर वह मालती को ले आया।

परंतु जब वे दोनों प्रेमी नाव में बैठ कर वहाँ से भाग निकले तो मार्ग में उनकी नाव फट गई और दोनों पृथक्-पृथक् हो गए। मालती जा कर कहीं लगी जहाँ के बादशाह ने उसे अपने दस सेवकों के साथ पहुँचवा देना चाहा। परंतु कुछ लोगों ने इसे उन सेवकों से छीन लिया और इसे अप्सराओं को दे दिया जिनके बादशाह ने इसे अपने लिए रखना चाहा और इसके न मानने पर फिर उन्हें लौटा दिया। पहले बादशाह के दस सेवकों ने इसे 'अवध' के मार्ग पर लादिया जहाँ से घूमती फिरती हुई बग़दाद तक आ गई। उधर मधुकर भी वह कर किसी नाव में पहुँचा जहाँ से एक 'जंगी' ने उसे किसी प्रकार बग़दाद पहुँचा दिया और दोनों किसी सराय में रात को अनजाने एक साथ हो गए।

सराय में दोनों प्रेमी एक ही साथ लेटे थे। किन्तु अंधेरे में एक दूसरे को नहीं पहचान सका और दोनों विरह से पीड़ित होते रहे। दूसरे दिन जब वे क्रमशः बाहर निकले तो उन्हें वहाँ के पौरिये अपने बादशाह हारूँ रशीद के यहाँ पकड़ ले गए। दोनों पृथक्-पृथक् बंदी बनाये गए। परन्तु जब बादशाह हारूँ रशीद को उनके पारस्परिक प्रेम का हाल विदित हुआ तो उसने इनके प्रेम की परीक्षा ले कर इनका विवाह करा दिया। इसप्रकार दोनों आपस में मिल कर परम आनंदित हुए। फिर बादशाह ने दोनों को इनके देश अयोध्या तक भी पहुँचवा दिया।

अवतरण में मधुकर एवं मालती के बग़दाद पहुँचने तथा उनके संयोग-वश मिलने आदि का अंतिम प्रसंग आया है—चौपाई—जंगी = वह व्यक्ति जिसके हाथ अंत में वहता हुआ मधुकर लगा था। अलिपर = मधु-कर पर। दयाये = दयार्द्र हुए। मसीत = मसजिद में भूले भटके लोगों के रहने का आश्रय स्थान। ही = थी। मधुप = मधुकर। उहि वारी = उसी

बाड़ी वा मकान में। हेत = प्रेम। पाछिलि राति = केवल थोड़ी सी रात शेष रह जाने पर। नारी = मालती। पाई न उघारी = उद्धार न पा सकी, अपरिचित होने के कारण पकड़ ली गई। पातशाह हारून रसीद = हारूँ रशीद नाम का प्रसिद्ध बादशाह और खलीफ़ा जो अपनी उदारता और न्यायप्रियता के लिए विख्यात है। वोर....दीद = मालती की ओर दृष्टिपात किया। बाति दुरी = छिपी हुई बात। पतियार = पूर्ण विश्वास प्राप्त करने की परीक्षा। राम दुहाई = ईश्वर की शपथ ले कर कहती हूँ कि। तूं = तुझको। छत्रपति की भाइ = एक सच्चे राजा की भाँति। वोर = तरफ, ओर। दोहा १—हौंस = अभिलाषा। ही = हुई। पवंगम-छंद—मानस ना = मनुष्य-मनुष्य ही नहीं। पिराइयै = पीड़ित हो जाता है। मित = मित्र वा प्रेमी। चौपाई—पुवायौ = खिलवाया। छकायौ = तृप्त और विभोर कर दिया। वेसुधि = विभोर। स्वाई = सुला दिया। देषै....पतिसाह = बादशाह दोनों की दशा छिपे-छिपे देख रहा था। उमाह उमंग, चाव। कौतिक कौ = विनोद के लिए। मूरति मैन = काम से पीड़ित हुई। सुपनौ जानि....भरमायौ = मधुकर को प्रत्यक्ष देख कर भी उसे विश्वास न हो सका और अपनी स्वप्नदशा का भ्रम करने लगी। ताही मै = इसी बीच में। प्रान....जाहिं = वह उस रात के ऊपर अपने प्राणों को न्योछावर करने लगा। प्र = पर। पोपन प्रान = प्राणों को सुरक्षित रखने वाली। विहांन = प्रातःकाल। विहानी = बीत चुकी थी। भार....पतिसाह = बादशाह इन दोनों की दशा देखकर फूला न समाया। दहुनसों = दोनों के ऊपर। लच्छिमी = धनद्रव्यादि। पुहँचाइ = पहुँचवा दिया। माता....जाइ = मधुकर ने लौट कर अपनी माता के चरणों को स्पर्श किया। कलोल = भोग विलास। रंग चोल = मजीठ रंग की भाँति पक्की। दोहा—सोरहसो....येक = संवत् १६९१ की फागुन वदि प्रतिपदा थी। जानिकवि = जान कवि ने। करिकै....

विवेक = ज्ञान एवं विवेक के अनुसार अर्थात् कथा की प्रधान घटनाओं को आध्यात्मिक पक्ष पर भी घटाते हुए।

(४) रतनावति

कथा सारांश—जगतराइ नाम का एक राजा था जो बड़ा प्रतापी था। किंतु उसे को संतान नहीं थी। वृद्धावस्था में उसने ज्योतिषी के परामर्श से एक विवाह किया। इस नवीन पत्नी से उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम मोहन रखा गया। उसी समय राजा के प्रधान मंत्री जगजीवन को भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम उत्तिम रखा गया। एक दिन राजा ने मोहन के चौदहवें वर्ष में उसे एक जामा और एक मुद्रिका दी और उनके गुण बतला दिये। मोहन को एक दिन एक सुन्दर चित्र देख कर उसके प्रति आसक्ति हो गई। चित्र की मूर्ति जामे पर ही बनी थी और वह फुलवारी नगर के राजा सूरज की पुत्री रतनावती की थी। मोहन की विरह दशा से घबड़ा कर राजा ने चारों ओर चित्रकार भेज कर सुन्दर सुन्दर चित्र बनवा मंगाये। किंतु रतनावती का उनमें नहीं मिल सका और न उसका कहीं पता ही चल सका। अंत में राजा से विदा ले मोहन उसे स्वयं ढूंढ़ने निकला।

मोहन पहले चीन देश पहुँचा जहाँ से परामर्श ले कर वह चित्रपुरी गया। परन्तु वहाँ के भी किसी चितेरे ने रतनावती का पता नहीं दिया। फिर वहाँ से वह एक वृद्ध चित्रकार के कहने से रूपनगर की ओर जहाज पर बैठ कर चला और मार्ग में उसे अपने सभी साथियों से विछोह हो गया। मोहन सात भूपालों के साथ किसी 'जांगी' के हाथ में पड़ गया जो उन्हें अपने घर ले गया जहाँ 'जांगिन' उस पर रीझ गई। फिर वहाँ से किसी प्रकार भाग कर आठों साथी चले। किंतु उनमें से पांच को एक मगर निगल गया। मोहन को फिर प्रेत, पंछी, अप्सरा, दानव, दानवी आदि से भेंट हुई और उसे एक घोड़ा भी मिला। मोहन को ख्वाजा खिज्र से कुछ सहा-

यता मिली और उसने अनेक कौतुक देखे। अंत में, उसे पद्मिनी मिली जिसके द्वारा रतनावती का पता चला। पद्मिनी को मोहन ने अप्सराओं को नष्ट कर एवं सिंह तथा हाथी को मार कर मुक्त किया और उसके साथ सिंहलद्वीप आया।

सिंहल में मोहन को संयोगवश उसका बिछुड़ा मित्र उत्तिम मिल गया। उसे पद्मिनी की सखी रतनावती के भी प्रथम दर्शन हुए। फिर रतनावती ने उसे बतलाया कि मैं फुलवारी नगर के अप्सरापति 'रवि' राजा की पुत्री हूँ और मेरे यहाँ मानवों का प्रवेश तक नहीं है। रतनावती फुलवारी वापस चली गई तब मोहन को एक देव रूपपुरी की रूपरंभा के यहाँ उड़ा ले गया जो फिर उसे फुलवारी ले गई। रूपरंभा ने वहाँ पर रतनावती के माता-पिता को समझाया बुझाया। किंतु तब तक मोहन को एक दानव फिर उड़ा ले भागा और उसे युद्ध में जीत कर ही रतनावती के पिता सूरज उसे अपने घर वापस ला सके। फिर उन्होंने मोहन एवं रतनावती का विवाह कर दिया और ये दोनों सिंहलद्वीप पद्मिनी के यहाँ आ गए। मोहन-रतनावती ने वहाँ पर केलि की और पद्मिनी के साथ उत्तिम का विवाह करा दिया। फिर वहाँ से मार्ग में 'जंगिन' को भी लेकर चीन देश होता हुआ सब के साथ मोहन अपने घर वापस आया और अपने माता पिता से मिला।

'रतनावती-पद्मिनी-संवाद', 'सिंघलदीप' में होने वाली दोनों सखियों की बातचीत का वर्णन है। जब पद्मिनी मोहन के साथ वहाँ अपने घर लौट चुकी थी और उससे उसके बाग़ में अपनी सखी रतनावती से भेंट हुई थी। 'रतनावती-दर्शन' भी ठीक इसी के अनंतर हुआ। दोहा—तेरैदुष = तेरे ही दुख के कारण। तुमां. . . . उरमांहि = तू मेरे हृदय में निरंतर उसी प्रकार रहा करती थीं जिस प्रकार मुझमें प्राण रहा करते हैं। चौपाई— दौरि = दौड़ धूप, प्रयत्न। सुरति = पता। लये = लिए। लाग्यौ

अपछराराइ = अप्सराओं का राजा प्रवल जान पड़ा। छिड़ावै = मुक्त कर दिया। वातें = उस संकटापन्न दशा से। दोहा निहांनी = वीती थी। चौपाई—बोल = वातचीत। वचन लै = प्रतिज्ञा करा कर। ज्यौ = जी, प्राण, जीवन। यहै करचौ = मैंने यह भी किया है। ज्यो = जिससे। काहि = क्यों। डिसट. . . . परिहौं = उसकी दृष्टि में नहीं पड़ूंगी, उससे परोक्ष ही खड़ी रहूँगी। सेती = से। पीत = प्रीति। दुराई = छिपाया। सतर. . . . अछिरा = सत्तर सहस्र अप्सराओं से डरती थी। दोहा—वसतर फारिहूँ = बेचैनी के मारे वस्त्रादि फाड़ कर फेंक दूं। चौपाई—भेद = कारण, रहस्य। पैमु = प्रेम। पीरि = विरह व्यथा। चेटक लाइ = टोना कर दिया। चल्यौ न जै = चला न जा सकेगा। दोहा—परीपरी = परी पड़ गई। चौपाई—अरु = और भी। चिन. . . . प्यारी = उसने देखते ही अपनी प्रेमपात्री को पहचान लिया। देपी ही = देखने की ही। अैनमैन = ठीक ठीक वैसी ही। वहु क्राति = उस कांति वा स्वरूप को। वानिक = रूप-सौंदर्य। ललाटी = ललाट वा लिलार। दर दारयो = कुछ-कुछ ईंगुर के समान (दारद = ईंगुर, दर कुछ-कुछ) घूंघर मारे = घुघुराले। गिय-कपोत = ग्रीवा कबूतर की सी थी। दोहा—जैसी. . . . नार = वह स्त्री (रतनावति) पृथ्वी पर मुरझाई हुई लता के समान पड़ी थी। देषी. . . सी = उसने (मोहन ने) उसे कंचन की एक क्षीण रेखा के रूप में देखा। आयौ. . . . तवांर = मोहन के सिर में चक्कर आगया।

(५) छीता

कथा सारांश—राजा देव उस नगर के राजा थे जिसका द्वापर का देवगिरि नाम कलियुग में आकर दौलतावाद हो गया। राजा की कोई संतान न थी। कुछ काल बीते उन्हें एक कन्या हुई जिसका नाम छीता रखा गया और जिसके सौंदर्य की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। कोई एक राजा राम नाम

के थे जो किसी पश्चिम देश के निवासी थे और जिन्हें उसकी चर्चा सुन-कर उसे देखने की अभिलाषा हुई। इसलिए वे धोती धागा धारणकर और तिलक लगाकर एक विप्र के वेष में देवगिरि पहुँच गए। वहाँ राजादेव के पुरोहित के यहाँ रहने लगे। एक दिन उस पुरोहित ने इन्हें पहचान लिया और इनकी सभी वातें जानकर इन्हें सहायता प्रदान करने का वचन दिया।

छीता जव किसी दिन पूजा करने निकली तो राजाराम ने उसे देख लिया और उससे वे अत्यन्त प्रभावित हो गए। उन्होंने अपना समाचार अपनी राजधानी को भेजा और वहाँ से अपने आदमियों को पूरी सजधज के साथ वुला लिया। जव वे सभी आ गए तो इन्होंने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया जिस पर राजा देव की ओर से इनका वड़ा स्वागत हुआ। राजाराम ने तव राजादेव से अपनी अभिलाषा भी प्रकट करदी। उनकी स्वीकृति मिल जाने पर तीन साल की 'साहौ' वा सगाई हो गई। राजाराम अपने यहाँ लौट आए। किंतु वे तीन वर्ष उनके लिए नवलाख युग के समान वीतने लगे।

इधर राजा देव की यह इच्छा हुई कि मैं एक सुन्दर चित्रि महल वनवाऊँ और उसमें अपनी पुत्री और जामाता को रखूं। इसलिए राजा देव ने अच्छे-अच्छे चित्रकारों के लिए अपने मित्र वादशाह अलाउद्दीन के पास अपने आदमी दिल्ली भेजे। चित्रकारों ने यहाँ आकर चित्र वनाये। किंतु संयोगवश उन्होंने छीता को भी देख लिया और उसका भी एक चित्र वनाकर अपने वादशाह को दे दिया जो उससे वहुत प्रभावित हो गया। छीता को प्रत्यक्ष करने के लिए उसने राजा देव का गढ़ घेर लिया। राजा के न मानने पर दोनों में युद्ध छिड़ गया और गढ़ के न टूट सकने पर राघव चेतन के परामर्श के अनुसार वादशाह अपने वसीठ के चाकर के वेश में गढ़ में पहुँच गया।

छीता जब अपने उद्यान में पूजा करने आई तो उसने बादशाह को पंछियों पर गुलेल फेंकते समय पहचान लिया। उसने बादशाह को पकड़वा मंगाया और उसे समझाकर दिल्ली लौट जाने को कहा। वह लौट चला। किंतु जब राजा देव ने उसके बचे हुए आदमियों को लुटवा लेना चाहा तो उसने क्रुद्ध होकर गढ़ को फिर घेर लिया। उसने इस बार राजा के गढ़ के भीतर एक सुरंग लगाई जिससे होकर उसका एक आदमी उसके उद्यान तक पहुंच गया और वहाँ से संन्यासी के वेश में रहने लगा।

एक दिन जब छीता वहाँ आयी तो उसने उसे छलपूर्वक सुरंग द्वारा दिल्ली पहुँचा दिया। अलाउद्दीन ने छीता को प्रसन्न करने के अनेक प्रयत्न किए। किंतु वह उदास ही बनी रही और एक दिन बादशाह से उसने अपनी सगाई की बात भी कह दी। उधर जब राजा देव ने छीता के चले जाने का समाचार राजाराम को भेजा तो वे जोगी के वेश में दिल्ली की ओर चल पड़े। बादशाह को जब उस जोगी का हाल मिला तो उसने उसे अपने यहाँ बुला भेजा। उसे बीन बजाता देख ऊपर खड़ी हुई छीता के आंसू गिर पड़े। उन आँसुओं से जोगी के शरीर का भस्म धुलने लगा जिसे देखकर प्रभावित हो बादशाह ने छीता को राजाराम के साथ अपनी पुत्रीवत् ब्याह दिया।

अवतरण में राजाराम क छीता की सुंदरता द्वारा प्रभावित होने का वर्णन है—चौपाई—राजैं = राजा ने। हेर्यौ = देखा। चेरो.... भूप = पृथ्वीपालक होकर भी दास की श्रेणी में आ गया। लघु वोंसननैं = अल्पायु में ही। भोरे भोरे = चित्ताकर्षक। काचो कंचन = बिना तपाया गया सोना। नैन...आयौ = अभी तक नेत्रों पर कामदेव का प्रभाव नहीं पड़ा जिस कारण उनमें बांकपन का भाव नहीं आ पाया। जामैं = उठे। कामनी = कामिनी। होहै होगा। दै....दंत = यौवन की श्यामलता में से दांतों की द्युति अभी फूट पड़ती नहीं दीखती। छोले =

छोड़ती, फेंकती। दंत = दांतों की आभा। तौऊ = तिस पर भी। सादे. . . . गंग = श्वेत शरीर एवं वस्त्रों के वीच उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो गंगाजल में कमल पुष्प खिला हो। दोहा १—वदन = मुख। जान = जान कवि। चौपाई—जोवन. . . .लागै = यौवन के पहले चित्त अन्य वातों में भी वहुत कुछ लगा करता है। तरनी. . . .भागै = तरुणावस्था में वह न जाने क्यों और कहाँ भागा-भागा फिरता है। हरनी सुत = मृगछौना के सदृश। वरनी. . . .नैन = नेत्रों की शोभा किसी के द्वारा वर्णन नहीं की जा सकती। भोरी = भोलीभाली। कभू. . . .चोरी = कभी तिरछी चितवन से नहीं देखती। वरिहै = वलेगा, उत्पन्न होगा, आ जायगा। चल = चलायमान। वैठी. . . .माहिं = मंदिर में ज्योति का प्रवेश हो गया है। देहुरै = मंदिर में, यहाँ पर शरीर में। सोधी. . . .नाहिं = अभी तक उसमें देवता की प्रतिमा स्थापित नहीं अर्थात् किसी प्रियतम को वसाने की ओर ध्यान नहीं गया। सोधी = सुध, ध्यान। सकत. . . .बैन = बातें नहीं निकलतीं। निरजीत = निर्जीव। रीत = नियम। ज्यो माहिं = जीमें, मन में। तो. . . .तीय = तो वह स्वयं छीता का पूजन करता। दोहा २—नैकहु जोत = कुछ भी जीवन-ज्योति। पूजारौ = पुजारी। (आशय—यदि मूर्ति में प्राण होते तो देवता स्वयं पुजारी वन जाता)।

६—क़ासिमशाह

हंसजवाहर

कथा सारांश—वलखनगर के सुलतान वुरहान शाह की ३१ सुंदर नारियां थीं। परन्तु कोई पुत्र नहीं था जिस कारण वह उदास हो निकल पड़ा। मार्ग में उसे हज़रत खिज़्र ख्वाजा मिले जिन्होंने उसे आशीर्वाद दिया और उसे हंस नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियों ने वतलाया

छीता जब अपने उद्यान में पूजा करने आई तो उसने बादशाह को पंछियों पर गुलेल फेंकते समय पहचान लिया। उसने बादशाह को पकड़वा मंगाया और उसे समझाकर दिल्ली लौट जाने को कहा। वह लौट चला। किंतु जब राजा देव ने उसके बचे हुए आदमियों को लुटवा लेना चाहा तो उसने क्रुद्ध होकर गढ़ को फिर घेर लिया। उसने इस बार राजा के गढ़ के भीतर एक सुरंग लगाई जिससे होकर उसका एक आदमी उसके उद्यान तक पहुंच गया और वहां से संन्यासी के वेश में रहने लगा।

एक दिन जब छीता वहां आयी तो उसने उसे छलपूर्वक सुरंग द्वारा दिल्ली पहुँचा दिया। अलाउद्दीन ने छीता को प्रसन्न करने के अनेक प्रयत्न किए। किंतु वह उदास ही बनी रही और एक दिन बादशाह से उसने अपनी सगाई की बात भी कह दी। उधर जब राजा देव ने छीता के चले जाने का समाचार राजाराम को भेजा तो वे जोगी के वेश में दिल्ली की ओर चल पड़े। बादशाह को जब उस जोगी का हाल मिला तो उसने उसे अपने यहाँ बुला भेजा। उसे बीन बजाता देख ऊपर खड़ी हुई छीता के आंसू गिर पड़े। उन आँसुओं से जोगी के शरीर का भस्म धुलने लगा जिसे देखकर प्रभावित हो बादशाह ने छीता को राजाराम के साथ अपनी पुत्रीवत् ब्याह दिया।

अवतरण में राजाराम क छीता की सुंदरता द्वारा प्रभावित होने का वर्णन है—चौपाई—राजैं = राजा ने। हेरचौ = देखा। चेरो.... भूप = पृथ्वीपालक होकर भी दास की श्रेणी में आ गया। लघु वोंसनमैं = अल्पायु में ही। भोरे भोरे = चित्ताकर्षक। काचो कंचन = बिना तपाया गया सोना। नैन...आयौ = अभी तक नेत्रों पर कामदेव का प्रभाव नहीं पड़ा जिस कारण उनमें बांकपन का भाव नहीं आ पाया। जामैं = उठे। कामनी = कामिनी। होहै होगा। दै....दंत = यौवन की श्यामलता में से दांतों की द्युति अभी फूट पड़ती नहीं दीखती। छोले =

छोड़ती, फेंकती। दंत = दांतों की आभा। तौऊ = तिस पर भी। सादे....
गंग = श्वेत शरीर एवं वस्त्रों के वीच उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो गंगाजल में कमल पुष्प खिला हो। दोहा १—वदन = मुख। जान = जान कवि। चौपाई—जोवन....लागै = यौवन के पहले चित्त अन्य वातों में भी वहुत कुछ लगा करता है। तरनी....भागै = तरुणावस्था में वह न जाने क्यों और कहाँ भागा-भागा फिरता है। हरनी सुत = मृगछौना के सदृश। वरनी....नैन = नेत्रों की शोभा किसी के द्वारा वर्णन नहीं की जा सकती। भोरी = भोलीभाली। कभू....चोरी = कभी तिरछी चितवन से नहीं देखती। वरिहै = वलेगा, उत्पन्न होगा, आ जायगा। चल = चलायमान। वैठी....माहिं = मंदिर में ज्योति का प्रवेश हो गया है। देहुरै = मंदिर में, यहाँ पर शरीर में। सोधी....नाहिं = अभी तक उसमें देवता की प्रतिमा स्थापित नहीं अर्थात् किसी प्रियतम को वसाने की ओर ध्यान नहीं गया। सोधी = सुध, ध्यान। सकत....वैन = वातें नहीं निकलतीं। निरजीत = निर्जीव। रीत = नियम। ज्यो माहिं = जीमें, मन में। तो....तीय = तो वह स्वयं छीता का पूजन करता। दोहा २—नैंकहु जोत = कुछ भी जीवन-ज्योति। पूजारौ = पुजारी। (आशय—यदि मूर्ति में प्राण होते तो देवता स्वयं पुजारी वन जाता)।

६—क़ासिमशाह

हंसजवाहर

कथा सारांश—वलखनगर के सुलतान वुरहान शाह की २१ सुंदर नारियां थीं। परन्तु कोई पुत्र नहीं था जिस कारण वह उदास हो निकल पड़ा। मार्ग में उसे हज़रत खिज्र ख्वाजा मिले जिन्होंने उसे आशीर्वाद दिया और उसे हंस नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियों ने वतलाया

कि एकबार इसका देश छूट जायगा और इसे कोई पक्षी बनकर उड़ा ले जायगा। किंतु यह फिर लौटेगा और बलख़ का सुलतान बनेगा। कुछ दिनों पीछे बुरहान शाह का देहांत होगया और वह हंस को दीला मीर के हाथ सौंपता गया। सर्वत्र अनबन होने लगी और हंस भी बंदी बना लिया गया। जहाँ से एक दिन उसकी माँ उसे लेकर बलख़ के बाहर चली गई। मार्ग में उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़े और अंत में वे किसी न किसी प्रकार ख़िज़्र ख़्वाजा के परामर्श से रूम देशके शाह तक पहुँच गए जिन्होंने उनका बड़ा स्वागत सत्कार किया।

एक वर्ष बीत जाने पर जब हंस एक दिन फुलवारी में सो रहा था उसे स्वप्न में एक सुन्दरी दीख पड़ी जिसके सौंदर्य पर वह मोहित हो गया। उधर चीन देश के राजा आलमशाह की रानी मुक्ताहर के गर्भ से जवाहर नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन जब वह अपनी फुलवारी में घूम रही थी कि वहां पर एक परी आई और अपना 'चीर' छोड़कर तालाब में नहाने लगी। जवाहर ने उसका 'चीर' कहीं पर छिपवा दिया जिसे फिर लौटा देने पर वह उसकी 'शब्द' नाम की प्रिय सखी बन गई। उसकी अन्य सखियों के साथ उसके धौराहर में रहने लगी। राजा आलमशाह को एक दिन जवाहर के विवाह की चिंता हुई और उसने 'कोऊ' देश के भोला शाह के पुत्र दिनौर के साथ बातचीत ठीक की। परन्तु जवाहर की सखी 'शब्द' ने दिनौर की बड़ी निन्दा की और उसके लिए योग्य वर की खोज में परेवा बनकर उड़ चली।

'शब्द' उड़ती-उड़ती अन्य पक्षियों के साथ रूम देशके हंस के निकट चली गई। वहाँ परस्पर बातचीत करती-करती जवाहर के सौंदर्य का वर्णन कर बैठी जिसे सुनकर हंस ने उसे अपने हाथ पर बिठा लिया और उसके द्वारा जवाहर का सारा वृत्तांत जान लिया। 'शब्द' के किए गए नख-शिख वर्णन से वह इतना प्रभावित हो गया कि उसने जवाहर को

अपने स्वप्न की सुन्दरी के रूप में स्वीकृत कर लिया और विरही वन गया। वह जोगी होकर निकल जाने पर उद्यत हो गया। किंतु 'शब्द' ने उसे सात दिनों तक रोक रखा और वह स्वयं जवाहर के पास लौट आई। उसने जवाहर से सारा वृत्तांत कहा, किंतु किसी की निन्दा कर देने पर वह रानी द्वारा वंदिनी वना ली गई और उसका 'चीर' भी ले लिया गया। इस घटना के कारण जवाहर अत्यन्त दु:ख में पड़ गई और वह विरहाकुल हो गई। फिर स्वप्न में उसने हंस को भी देखा।

इधर दिनौर के साथ जवाहर के विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। जिस कारण वह और भी घवड़ाई। उधर हंस 'शब्द' के आने पर वुरी दशा में पड़ गया था। शाह द्वारा अनेक सुंदरियों के प्रस्तुत किये जाने पर भी वह संतुष्ट नहीं हो रहा था। इसी बीच में उसका वाज भी खोगया जिसकी खोज में दुखी होकर किसी पहाड़ पर जाकर वह सो गया और कुछ परियाँ उसे उठा कर जवाहर के लिए सजायी गई वारात के अवसर पर चीन देश में पहुँचा आईं जहाँ से असली दूल्हा दिनौर हटा दिया गया और हंस एवं जवाहर का विवाह होगया। इसप्रकार दोनों प्रेमियों की भेंट अचानक धोखे में ही हो गई और दोनों ने अपनी-अपनी अंगूठियां भी वदल डालीं। परंतु जव वे दोनों केलि कर सो गए तो परियों ने हंस को वहाँ से उठा कर फिर पहाड़ पर ला दिया और दिनौर को जवाहर के पास ला दिया।

किंतु जवाहर द्वारा दिनौर के स्वीकार न किए जाने पर वारात रूठ कर वापस चली गई और दिनौर जोगी वनकर निकल गया। वह क्रोध में आकर वीरनाथ से जा मिला और अपना वदला लेने के लिए साधना में लग गया। इधर हंस जग कर फिर विरह में पड़ गया। जवाहर भी उधर दु:ख में वेचैन रहती थी इस कारण 'शब्द' अपना 'चीर' लेकर उसके लिए फिर एक वार उड़ी और हंस के हाथ पर आ वैठी। 'शब्द' द्वारा ज़वाहर का वृत्तांत सुनते ही हंस जोगी वनकर फिर निकल पड़ा और उसके साथ कई

साथी भी हो लिए। 'शब्द' उसका मार्ग-प्रदर्शन करने लगी। सभी अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करते हुए किसीप्रकार समुद्र तक पहुँच पाये। उसे कष्टपूर्वक पार करते ही 'शब्द' जवाहर के यहाँ चली गई और उसे, अन्य लोगों के भी साथ, हंस से ला मिलाया।

हंस और जवाहर इस प्रकार एक बार फिर केलि करने लगे। किंतु हंस को एक दिन अपने देश रूम की सुध आगई। वह जवाहर को लेकर रूम की ओर चल पड़ा, किन्तु मार्ग में बीरनाथ के निकट रहने वाले दिनीर ने इन दोनों प्रेमियों को फिर विलग-विलग कर दिया। हंस तब से जोगी के वेश में घूमता-घामता भोलाशाह के यहाँ पहुँचा और उसकी पुत्री से उसका विवाह हो गया। फिर 'शब्द' की सहायता से उसे जवाहर भी मिल गई और दोनों पत्नियों को लेकर वह रूम देश को लौट आया। रूम देश को छोड़ कर वह फिर लड़ता-भिड़ता बलख भी आ गया और यहां पर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम हसीन रखा गया। अंत में मीर दौला के पुत्र ने उस पर दूसरों से चढ़ाई करा दी। उसने स्वयं हंस को छूरी से मार दिया जिस पर उसकी दोनों पत्नियाँ भी मर गईं और तीनों को एक साथ समाधि दी गई।

'जवाहर स्वप्न' वाले अवतरण में जवाहर द्वारा हंस के साथ उसके प्रथम मिलन का वर्णन किया गया है।—चौपाई—वहै. . . . लागी = वही विरह की धुन लगी हुई थी। अँदेशा = चिंता, सोच। टेकौं = रखूं, सहारा के लिए स्थापित करूँ। शब्द = 'शब्द' नाम की सखी जो परी भी थी। वह = जवाहर। दोहा १—धन = स्त्री। लेमाथ = सिर पकड़ कर। सो. . . भय = स्वप्न में उसे कुछ ध्वनि सी होती हुई सुन पड़ी। दृष्टि नाथ = उसने देखा भी कि मेरा प्रियतम सामने खड़ा है। चौपाई—जो सुमिरत. . . .ताहां = जिसका स्मरण करती हो वह तुम्हारे मनमें ही वर्त्तमान है और तुम बाहर भटक रही हो यही ध्वनि उसे सुन पड़ी।

ताहां = तहां, वहां, बाहर। बारी = युवती। सुवा = तोता, गुरू, परि-चायिका 'शब्द' ने। वारी न्यौछावर हुई। छकित = हैरान। टेकि फैलाकर। सकुच = संकोच के साथ। सो = उसे। दोहा २—सो = उसे। चौपाई—अपाना = अपना। = केहि गुण = किसलिए। दोहा ३—भेद = रहस्य। जो = जिससे। चौपाई—आपन काज = अपने लिए। मोही = मुग्ध हो गई। पाँवर = पावँड़ी, जूती। घाल = डालकर। दासी....भाखों = 'दासी' कह कर मुझे पुकारो। छूट = छोड़कर, बिना। दोहा ४—दरश = दर्शन। हेरान्यो....महं = शरीर में ही कर पाती हूँ। चौपाई—किहो हुलासा = आनंदित करना। रंगरलायो = आमोद प्रमोद करना, केलि करना। दोहा ४—आयस = आदेश। पुनि = फिर एक वार। चौपाई—छुट = छोड़ कर, अतिरिक्त। मोती....जोती = हे प्राणाधार, यदि मेरे प्राण मोती के समान हैं तो तुम उनमें दीख पड़ने वाली आभा वा दीप्ति के सदृश हो। गोई = जाति वाली, कुई (?)। दोहा ६—खेय....नांह हे मेरे स्वामी, अव मुझे उबार लो। चौपाई—भय = हुआ। प्रशन = स्पर्श। भय....पाई = इस प्रकार की ध्वनि उसे सुन पड़ी और उसनें स्पर्श का भी अनुभव किया। उपराही = ऊपर। लोप = लुप्त, स्तब्ध। रस.... पाई = मिलन के आनंद का पूरा अनुभव भी नहीं कर सकी। दोहा ७—सरताज = स्वामी, हृदयेश। = चौपाई—औहट = औहत, दुर्गति। (दे०—औहत होय मरौं नहि भूरी। यह सट मरौ जो, नेरहि दूरी'—जायसी)। आग = विरह ताप। (दे०—'पिउ हिरदै महँ भेंट न होई। कोरे मिलाव कहौं केहि रोई'—जायसी)

'अंत' वाले अवतरण में कवि ने कहानी का आध्यात्मिक रहस्य वतलाया है।—चौपाई—शब्द = 'शब्द' नाम की परी जो जवाहर की सखी थी। जोह = कृपादृष्टि रूप। शब्दहि = शब्द के द्वारा। दोहा—जाँच = परीक्षा कर के, जान कर के। परसन = प्रसन्न। परसन....

जगदीस = उस पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं। बोलि = नाम ले कर। क़ासिम. . . .असीस = क़ासिम शाह को आशीर्वाद देगा।

७—नूर मुहम्मद

(१) इन्द्रावति

कथा सारांश—कलिंजर नामक स्थान के राजा का नाम 'भूपति' था जिसे 'राजकुंअर' नामक पुत्र हुआ। भूपति की स्त्री का देहांत हो गया और अपने पुत्र का विवाह कर के वह स्वयं भी परलोक सिधारा। राजकुंअर अपने पिता की गद्दी पर बैठा और अपनी पत्नी के साथ राज करने लगा। एक रात को उसने एक दिन स्वप्न की दशा में दर्पण के भीतर किसी सुंदरी का प्रतिबिम्ब देखा। उसने दूसरी रात को भी उसे देखा। किंतु इसबार उसके मुख पर उसकी सुंदर लटें बिखरी हुई थीं। राजकुंअर उस सुंदरी के सौंदर्य पर मोहित हो गया और अपना राज कार्य छोड़ कर उसके विरह में मरने लगा। उसके कारण सभी दुखी हो गए। उसके मंत्री बुद्धसेन ने कई चित्रकारों द्वारा चित्र बनवाये और अनेक पंडितों द्वारा भिन्न-भिन्न सौंदर्य का वर्णन करवाया। किंतु राजा पर उनका प्रभाव न पड़ा अंत में उसकी फुलवारी में ठहरे हुए एक तपी ने उसे बतलाया कि उक्त सुंदरी समुद्र के पार बसे हुए अगमपुर नामक नगर के जगपति नामक राजा की 'रतन जोत इन्द्रावति' कन्या है और वह परम सुंदरी है।

राजा पर इन बातों का और भी प्रभाव पड़ा। उसने उस 'गुरुनाथ' नामक तपी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया और जोगी बनकर इन्द्रावति के लिए वह अगमपुर की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसने सात बीहड़ बन नांघे और फिर कायापति नामक बनिजारे के साथ भेंट हो जाने पर उसके साथ वह आगे बढ़ा। दोनों जहाज पर चले और समुद्र पारकर

राजा जिउपुर में जा ठहरे । उसने वहाँ पर बुद्धसेन को छोड़ दिया। वह सारंगी ले कर जा रहा था कि उसे मार्ग में शिव मंदिर मिला जहाँ पर उसे आकाशवाणी से पता चला कि इन्द्रावति की फुलवारी प्रेमपुर के पूरे में है और वहीं मुझे जाना चाहिए। इस कारण वह उसकी फुलवारी में पहुँचा और वहाँ के दृश्य देखता हुआ वहीं ठहर गया।

उधर अगमपुर में होली मनायी जा रही थी और इन्द्रावती अपना मुख दर्पण में देख अपने ऊपर ही रीझ रही थी। वह अपने ऊपर मुग्ध हो ही रही कि एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि एक सुन्दर 'जोगी' मेरे सिर में सिंदूर डाल रहा है और कमलों को ले कर मधुकर कहीं उड़ गया। इधर मन फुलवारी की मालिन ने राजकुंअर से बातें कीं और उसे प्रेमी जान कर बतलाया कि तुम यहाँ पर बैठकर इन्द्रावति के नाम का जप किया करो। उसने इन्द्रावति के यहाँ जाकर भी उसका परिचय दे दिया। इन्द्रावति यह सुनकर दूसरे दिन फुलवारी चली गई और वहाँ पर उसके साथ राजकुंअर की चार आंखें हुईं। दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए। अंत में, मुच्छित राजा के निकट एक पत्र में जिव-कहानी लिखकर उसे सखी के हाथ भेज इन्द्रावति घर आई। जिव-कहानी कथारूपक के ढंग की थी और उसका मर्म समझना कठिन था। उसे अपने मंत्री बुद्धसेन के आने पर उसने समझा और उसने स्वयं भी एक पत्र इन्द्रावति को लिख कर चेता मालिन के हाथ भेजा जिसका उत्तर इन्द्रावति ने फिर पठाया। अंत में राजकुंअर ने धौराहर पर बैठी इन्द्रावति को उसके नीचे जाकर फिर एक बार देखा और दोनों के पारस्परिक दर्शन से प्रेमभाव और भी बढ़ चला।

राजकुंअर इसके अनंतर इन्द्रावति को प्राप्त करने की अभिलाषा से समुद्र से मोती निकालने चला। किंतु बीच में ही वह दुर्जनराय की जेल में पड़ गया। अपने बंदीस्थान से उसने इन्द्रावति के यहाँ एक सुवा के द्वारा

संदेशा भेजा और इन्द्रावति ने फिर उसका उत्तर उस सुवा के ही द्वारा पठाया। इधर बुद्धसेन कृपा नामक राजा की सेवा में निरत था। उसने कृपा राजा को दुर्जन राय के विरुद्ध भड़का कर उस पर चढ़ाई करा दी और दुर्जन मारा गया। फलतः राजकुंअर बंधन से मुक्त हो गया। वह मोती काढ़ने के लिए फिर आगे बढ़ा। उधर मधुकर मालती एवं मानिक आदि की प्रेम-कथाओं को सुन कर इन्द्रावति का विरह और भी उग्रतर होता जा रहा था। इधर राजकुंअर नौका पर बैठ कर मोती काढ़ने के लिए समुद्र में जा रहा था। अनेक कठिनाइयों को झेल कर, अंत में, राजकुंअर ने मोती प्राप्त किया और उसे लाकर जगपति राजा को समर्पित किया। उसे पाते ही जगपति ने प्रसन्न होकर इन्द्रावति का व्याह राजकुंअर के साथ कर दिया। इस प्रकार इस कहानी का पूर्वार्द्ध समाप्त हो गया।

'जिव कहानी' वाले अवतरण में इन्द्रावति के राजकुंअर के पास भेजे गए एक पत्र का विषय दिया गया है—चौपाई—सहचरी ज्ञानी = राजकुंअर की प्रेम-पात्री इन्द्रावति। वह जिउके = उस जीव का। दोहा—पाट = राजगद्दी। परम दयाय = दूसरे की कृपा से मान का आधार पा कर। चौपाई—सतुराई = शत्रुता। वोई = उसको। दोहा—वनाव = सुधरी स्थिति। चौपाई—राजापाऊ = राजा के पद पर। दोहा—छल संचर = छल कपट के कार्य पर। कीन्हा. . . . राज = जिवराजा की सेवा में दत्त चित्त रहने लगा। चौपाई—नितनित = नित्यशः, निरंतर। जिउता = जीवपन। हँकराएउ = बुलवाया। दोहा—प्रकीर्त = प्रकृति, स्वभाव। स्वाँत = शांति। चौपाई—मनद्वारा = मन के बचाव का। ताला = रहस्य। सरेखा = श्रेष्ठ वा चतुर। दोहा—रूपको = उस रूपवंती नाम की सुन्दरी को। चौपाई—दिष्ट वसीठहि = 'दिष्ट' नामक दूत को दरसन = कायापति ने। वलि = भेंट। संयोगी = विवाहित जोड़ी। दोहा—निर्प = नृप, दरसन राजा ने। कन्या = रूपवंती। चौपाई—दिष्टसाथ

दिष्ट दूत के हाथ से। दोहा—मरम = मन की वात। चौपाई—बूझै....वावै = यह भी नहीं सोचा कि वुद्धि के आने पर उससे समझ-बूझ लूं और तव उसके साथ ही कायापुर की ओर प्रस्थान करूँ। दोहा—सैंपटमों = सौ पर्दों के भीतर। चौपाई—ताईं = वहीं पर। आप = स्वयं। दोहा—जिउ....नांहि = चतुर वुद्ध ने राजा को वापस नहीं किया। चौपाई—रहेउ = था। दोहा—वुझायेउ = समझाया-वुझाया। चौपाई—चाही = चाहिए। निसकहँ = रात में। दोहा—मननियर = मन के पास। चौपाई—सुता पर थापा = रूपवंती पर ढाल दिया। प्रीत....सुनावा = रूप का अंदाजा पा कर सुना दिया। दोहा—दाया....लीन्ह = दया उपजी। चौपाई—देवस = दिवस, दिन। भा....लाहा = दोनों को मिलन का लाभ हुआ। परभूता = शक्ति। संचर = मार्ग। दोहा—बटाऊ....गयेउ = चलता बना। चौपाई—वहोरै = लौटावै। दोहा—मनोरथ = कार्य। चौपाई—वै = वल। विवि लोने दो सुंदर पुरुषों को (?)। दोहा—झारु....हेम = सौंदर्य को लक्ष्य में रख कर सुंदर वचनों द्वारा प्रेम कहानी कहो।

(२) अनुराग बाँसुरी

कथा सारांश—मूरतिपुर नामक सुंदर नगर का राजा जीव नाम का था जिसके सर्वगुण सम्पन्न पुत्र का नाम अंतःकरण था। अंतःकरण के तीन साथी वुद्धि, चित्त एवं अहंकार नाम के थे। चारों मित्रों में वस्तुतः नाममात्र का ही अंतर था। अंतःकरण के दो संगी संकल्प और विकल्प नाम के भी थे। उसकी पत्नी का नाम महामोहनी था जिस पर वह सदा मुग्ध रहा करता था। किंतु एक दिन जव राजकुमार अंतःकरण ने किसी श्रवण नामक ब्राह्मण के गले में सर्वमंगला नाम की सुन्दरी की मणिमाला देखी और उससे उसके रूपगुण की प्रशंसा भी सुनी तो उसके हृदय में

सर्वमंगला के प्रति प्रेम हो गया और महामोहनी उसके मन से उतर गई। मणिमाला सर्वप्रथम स्नेहनगर के राजा दर्शनराय की पुत्री सर्वमंगला के पास थी। उसने उसे श्रवण ब्राह्मण के मित्र ज्ञातस्वाद को उपहार स्वरूप दिया था। ज्ञातस्वाद ने उस माला को फिर श्रवण को दी जब वह विद्याध्ययन के लिए विद्यापुर गया था। अब श्रवणने उसे राजकुमार को दे दिया

मणिमाला को श्रवण से पाकर अंतःकरण सदा सर्वमंगला की चिन्ता में रहने लगा और सोचने लगा कि कैसे स्नेहनगर पहुँचूं। राजा जीवने अपने पुत्रकी दशा देखकर उसका कारण जानना चाहा किंतु उसने लज्जावश कुछ नहीं बतलाया। तब राजा के भेदिया वृक्ष ने राजकुमार का सेवक बनकर उसका भेद जाना और उसे राजा से कह दिया। किंतु राजा को उसमें सफलता नहीं हुई दीख पड़ी। अतएव राजा ने पहले अंतःकरण को प्रेम से विरत करना चाहा और फिर उसके मित्र बुद्धि ने भी राजकुमार को समझाने की चेष्टा की। उन दोनों के विफल हो जाने पर, अंतमें, संकल्प एवं विकल्प ने भी क्रमशः उत्साहित और विचलित किया। किंतु अंतःकरण दृढ़ बना रहा। वह स्नेह नगर के लिए प्रस्थान करने चला तब तक वहाँ से स्नेह गुरु नामका एक वैरागी तीर्थयात्रा करता हुआ पहुँच गया। अंतःकरण के उसे स्नेहनगर का निवासी पाकर उसके द्वारा सर्वमंगला का पूरा परिचय प्राप्त किया।

तत्पश्चात् स्नेह गुरु ने अंतःकरण को प्रेममार्ग में दीक्षित कर दिया। उसे स्नेहनगर की राह दिखलाने के लिए 'उपदेशी' नाम का एक सुवा दे दिया और वह स्वयं पूर्ववत् तीर्थयात्रा के लिए आगे बढ़ा। अंतःकरण अपनी पत्नी महामोहनी को समझा बुझा कर और अपने माता पिता से विदा होकर उपदेशी के पथ प्रदर्शन में स्नेहनगर चला। अपनी यात्रा में उसे दो मार्ग मिले। पहलेपहल वह दक्षिण मार्ग से होता हुआ कुछ दिनों में

इंद्रियपुर पहुंचा जो वहुत ही आकर्षक था। वहां के राजा मायावी अघेष्ट ने अंतःकरण को फँसाना चाहा और उसे वशीभूत करने के लिए कामुकी मनभावनी को भेजा जिसने उसके साथ विरागिनी बनने की इच्छा प्रकट की। उसने राजकुमार के रूप सनेही, रागसनेही और वाससनेही नामक साथियों को वहका लिया। किंतु स्वयं उसे वह विचलित नहीं कर सकी। अंतःकरण मार्ग में कई बसेरे करता हुआ और कष्ट झेलता हुआ अंत में स्नेहनगर पहुँच गया और वहाँ की शोभा देख कर मुग्ध हो गया।

स्नेहनगर में रहकर अंतःकरण ध्यानदेहरा में बैठ, उपदेशी के परामर्शानुसार, ध्यान में लीन हुआ जिसका सर्वमंगला ने स्वप्न देखा। सर्वमंगला ने स्वप्न में देखा कि किसी रम्य वाटिका में उस पर एक भ्रमर मंडरा रहा है और उसके निवारण करने पर भी नहीं मानता। आँख खुलते ही उसके हृदय में प्रेम का आविर्भाव हो गया और फिर एक मास पीछे उसने दूसरे स्वप्न में यह भी देखा कि एक सुन्दर वैरागी ध्यान देहरा में वैठ कर उसकी मूर्त्ति की पूजा करता हुआ, उसकी कृपादृष्टि की याचना करता है। सर्वमंगला को इस पर बेचैनी होने लगी और इस अवसर को उपयुक्त समझ कर उपदेशी सुवा उसके आंगन में जा कर उसके हाथ पर बैठ गया। सुवा ने फिर सर्वमंगला से अंतःकरण की सारी प्रेम कथा कह सुनाई और उसकी विरह दशा का भी वर्णन किया। सर्व-मंगला को अव अंतःकरण का रूप देखने की उत्कंठा हुई और उसने अपनी सखी चित्रबंधिनी को भेज कर उसका एक चित्र मंगा लिया।

सर्वमंगला ने फिर उसी के द्वारा एक अपना चित्र भी अंतःकरण के पास भेजा। चित्र-दर्शन के अंनतर फिर दोनों का पत्र-व्यवहार चला। सर्वमंगला का भाव चित्र पाकर अंतःकरण उसके दर्शनों की इच्छा से उसके महल की ओर गया जहाँ उन दोनों की चार आँखें हो गईं। उपदेशी सुवा ने सर्वमंगला से अंतःकरण की पूरी पहचान करा दी और सर्वमंगला ने

अंतःकरण के पास अपने गले की माला भेज दी। उधर मूरतिपुर में अंतःकरण का पता न पाकर उसके पिता जीव ने दर्शन राय के पास अपने पुत्र को प्रेम कहानी लिख भेजी। उन्होंने अपने पुत्र पर कृपा दर्शाने के लिए भी दर्शनराय को लिखा और इस प्रस्ताव का समर्थन तीर्थयात्रा से लौटे स्नेह गुरु द्वारा भी हो गया तत्पश्चात् उपदेशी सुवा के मुख से दोनों प्रेमियों के पारस्परिक प्रेम का वृत्तान्त सुनकर दर्शनराय को प्रसन्नता हुई। उनकी स्वीकृति के अनुसार तब अंतःकरण एवं सर्वमंगला की विवाह विधि भी सम्पन्न हो गई और अंतःकरण उसके साथ अपने घर लौट आया।

'कवि का वक्तव्य' वाले अवतरण में नूर मुहम्मद ने 'अनुराग बाँसुरी' लिखने का उद्देश्य तथा अपना वास्तविक मत बतलाया है :—चौपाई—बारुनी साथा = मदिरा की भाँति मत्त कर देने वाले प्रेम रस से पूर्ण। सुनतै जो = यदि सुन पाते। कृष्ण मुरलीधर = गोपियों को मोहनेवाली मुरली के बजाने वाले श्रीकृष्ण तक (इस 'बाँसुरी' को सुन कर अचेत हो जाते)। मुहम्मदी जन की = एक सच्चे मुसलमानकी। कंदनबातैं = मिश्री की डलियाँ। बहुत....टरैं = अनेक देवताओं को प्रभावित कर देती है। बहुत परैं = अनेक देवमूर्त्तियां इस बांसुरी के शब्द सुन कर मूछित हो गिर पड़ती हैं। देवहरा = देव मन्दिर। संखनाद की....मिटावैं = काफिरों के पूजा पाठ की प्रणाली को ये मधुर शब्द पूर्णतः नष्ट कर देते हैं और उनके हृदयों में इस्लामधर्म के प्रति आस्था जागृत कर देते हैं। बरवै ७—बात = इस्लामधर्म की बातें। चौपाई—बरसै....मेरे = मेरे मर जाने पर, इसके कारण, मेरी कब्र पर आंसू बहाया जायगा। दीन = इस्लाम-धर्म। हूर = स्वर्ग की अप्सराएं। विद्या लागि मनावै = विद्या प्राप्त करने के अभिलाषी हैं। अलखायसु = अल्लाह की आज्ञा। बरवै ८—गुनोहें = अपराधों को। चौपाई—कामयाब = कवि नूर मुहम्मद का एक उपनाम।

केहि....वरीसै = तुम्हारे किन कार्यों पर आंसू वहाये जायं। धरती... पीसै = यदि तुम कालचक्र द्वारा दंडित किये जा रहे हो। ऊपर = भगवत्कृपा की ओर। दुइ वसीठ = नकीर और मुनकिर नाम के दो फरिश्ते जो इस्लाम धर्म के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के दोनों कंधों पर वैठ कर सदा उसके किये का लेखा लेते रहते हैं और क़यामत के दिन फिर उसके सामन उसे रख कर उससे विविध प्रश्न किया करते हैं। जौं....करतारा = यदि किसी मनुष्य की करनी अल्लाह की आज्ञाओं के अनुकूल सिद्ध होती है तो वह उस पर प्रसन्न होता है। वरवै ९—सुखदायक.... रसूल = हज़रत मुहम्मद, सारी मुस्लिम प्रजा को सुख पहुँचाने वाले हैं। उम्मत = इस्लाम में आस्था रखने वाले प्रजाजन। और पयम्मर = अन्य सभी पैग़ंबर। छलऔ मूल = केवल पत्तों और जड़ों के समान महत्त्व में घट कर हैं। चौपाई—का = इससे क्या। मन....मांजेउ = अपने मन को मैंने इस्लाम धर्म की कसौटी वा पट्टी पर भलीभाँति कस कर उज्वल वना लिया है। दीन....भांजेउ = अपने धर्म की रस्सी को वट कर उसे दृढ़ वना लिया है। मुक्तावनहारा = मुक्त करने वाला। हसनैन वतूल = हसन और हुसैन तथा उनकी माता वीवी फातिमा। अली = इस्लाम के चौथे खलीफ़ा हज़रत अली जो शीया संप्रदाय के अनुसार हज़रत मुहम्मद के वास्तविक उत्तराधिकारी थे। असदुल्लाह अल्लाह के शेर (वीर अली) वरवै १०—राछस हिंदू धर्म के देवतादि। चौपाई—अलोपी = लुप्त वा गुप्त। माधव जीव = कृष्ण जो नूर मुहम्मद मुस्लिम के लिए एक निरे साधारण जीव के ही समान है। वेधि....भएउ = वंशी का हृदय छेद-छेदकर विद्ध कर दिया जाता है। पावक....गएउ = अपना उद्देश्य पावक होने के कारण भलीभाँति तपाया भी जा चुका है। थाना = मूल स्थान। सव लोग अपाना = अपने सभी आत्मीय। वरवै ११—कूक.... हें = शब्द करते हैं। चौपाई—तेहि = उस नूर मुहम्मद को। सोता दिप्टा

= श्रोता और द्रष्टा। बरवै १२—देह दवाग = शरीर में विरह की दावाग्नि फैल जाती है।

'साक्षात खंड' वाले अवतरण में सर्वमंगला तथा अंतःकरण के मिलन तथा उसके प्रभावादि का वर्णन है।—चौपाई—पंथ = प्रेम का मार्ग। बनो घर कर लिया है। मानलीनता = अपनी मान मर्यादा द्वारा अभी तक प्रभावित बने रहने के कारण। पलुहाइ = पल्लवित और हरी भरी होती जा रही थी। ऊभी = बार बार उठती रहने वाली सांसें। बदन गोरता = चेहरे की पियराई। व्यभिचारी = मर्यादा के विपरीत चलनेवाला और इस प्रकार गुप्त बातों को भी प्रकट कर देने वाला। बरवै १—मृगसार = कस्तूरी का गंध। चौपाई—गोरे रंग = पीले रंग की। गेंदा. . . .सलोना = गुलाब जैसा सुन्दर शरीर गेंदा जैसा पीले रंग का हो गया। केहरिलंकी. . . . छेहर = एक तो उसकी कटि सिंह की भांति क्षीण थी दूसरे उसका शरीर भी अत्यन्त क्षीण हो गया था। भूखन = भूषण, गहने। दूखन. . . .लावै = (यहाँ तक कि)। सुन्दर वस्त्र एवं चंदनादि में भी दोष निकाल कर नापसंद कर देती है। पटीर = चंदन। जावक = महावर। बरवै २— दग्ध, दाह, ताप। चौपाई—भार के नीचे = झुकी हुई सी। ससि-गोती = चंद्रमा की भाँति सुन्दर, उज्ज्वल। लाल = लाल रंग के फूलों को अथवा लाल को। अहकारी = आहें उत्पन्न करने वाली। बरवै ३—चाहत = इच्छा। चौपाई—आवहुं = स्वयं भी। बागू = बाग में। बरवै ४— पियर्तहि = पकने पर पीले पड़ जायंगे। चौपाई—ब्रह्मद्रुम = टेसू, पलाश। तरें = नीचे। बरवै ५—बांरयो = शांतिपूर्वक सुरक्षित रह सकूं। चौपाई— माडिहिं = मंडप के। तेहि फल = उसी के लिए। बरवै ६—छपान = छिप गई। चौपाई—आपु = स्वयं उसी ने। नवेला = तरुण पुरुष। तोहि नित तुम्हारी ही नीयत से, तुम्हारे ही कारण। बरवै ७—नवल = नवीन। चौपाई—नरगिस = एक प्रकार का सुन्दर फूल। फूलैं = फूलों को (?)।

उरससि गोती = मोती का उज्वल हार। मन = मंद। अनुरागें = प्रेम भाव के साथ। वैरागी = बैरागी वेशधारी अंतःकरण के। आयसु = नम्र वचन। बरवै ८—बासकी आस = सुगन्धि अर्थात् सर्वमंगला। चौपाई—मूल सुभा = शोभामयी मूल वस्तु अर्थात् सर्वमंगला। छाया = प्रतिबिंब। सुभी = कान में पहनी जानेवाली लौंग नाम की वस्तु। बेसरि, गलक, गहनों के नाम। बरवै ९—सौ = सैंकड़ों। चौपाई—लज्या.... छएउ = अपने हर्ष को लज्जा के कारण छिपाते समय उसके मुख पर सौंदर्य आ गया। चढ़त....मांही = हृदय के भीतर जब संकोच का भाव आया तो। बरवै—१०—गलक = मोती। चौपाई—रकत आंसु = लहू के आँसुओं से। बोवा = उत्पन्न किया। अस्थल....पहिचाना = जब वह अपने स्थान पर गया तो उसके साथियों ने उसे भिन्न रंग का पाया। दरसनरंग = साक्षात कर चुकने के चिन्ह। कहेल = पूछा। नैन मिरग = नेत्र अहेरी के लिए मृग बना हुआ। बरवै ११—साथिन संग = साथियों ने। चौपाई—कंठी = बैरागी के गले की तुलसी मनका। बरवै १४—हिरद = हृदय। चौपाई—अँचया = पान किया। बरवै १५—छाजै.... जौं = मान करते समय वे नेत्र और भी सुन्दर दीखने लगते हैं।

८—शेख़ निसार

यूसुफ़ जुलेखा

कथा सारांश—नबी याक़ूब किनआँ नगर में रहते थे जो नूह का बसाया हुआ था। वे नबी लूत की लड़की और इसहाक़ के पुत्र थे। उनकी ७ बीबियां थीं जिनसे उन्हें १२ पुत्र उत्पन्न हुए थे और उन्हीं में से एक का नाम यूसुफ था। यूसुफ़ अत्यन्त सुन्दर बालक थे और इन्हें नबी याक़ूब सब से अधिक प्यार करते थे जिसकारण इनके अन्य सभी भाई इनसे

ईर्ष्या रखते थे। इनके भाइयों ने एक बार, इनका प्राणांत कर देने की चेष्टा में, इन्हें, भेड़ चराते समय, किसी कुएं में डाल दिया और घरपर जाकर अपने पिता से कह दिया कि यूसुफ़ को भेड़िये ने मार डाला। इधर यूसुफ़ को कुछ सौदागरों ने, उधर मार्ग से जाते समय, कुएँ से निकाला और इन्हें अपने साथ ले जाना चाहा। परन्तु इनके भाइयों ने इन्हें अपना गुलाम बतला कर उनके हाथ बेंच दिया और सौदागर इन्हें ले कर मिस्र देश की ओर चल पड़े।

पश्चिम के किसी देश में तैमूस नामक एक सुलतान राज करता था जिसकी लड़की जुलेखा अत्यन्त रूपवती थी। उसके साथ विवाह करने को अनेक बादशाह तरसा करते थे। किंतु वह उन्हें सदा इन्कार कर देता था। एक दिन जुलेखा ने यूसुफ़ को अपने स्वप्न में देखा और उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो कर उससे विवाह की इच्छा में सदा चिंतित रहने लगी। जुलेखा की धाय ने उसके द्वारा दूसरे दिन के स्वप्न में यूसुफ़ का परिचय प्राप्त कराया तो पता चला कि मिस्र देश में जाने पर वहाँ के वज़ीर के यहाँ भेंट हो सकती है। इस कारण धाय ने जुलेखा के पिता को परामर्श दिया कि उसका विवाह मिस्र देश के वज़ीर के साथ कर दो। अंत में विवाह निश्चित हो गया और जुलेखा मिस्र देश की ओर विदा की गई। किंतु मार्ग में जब उसने वजीर को देखा तो, धोखे के कारण फेर में पड़ गई। उसका दूल्हा वज़ीर यूसुफ़ नहीं था जिसे उसने अपने स्वप्न में देखा था और जिस पर वह मुग्ध हो चुकी थी।

फिर भी जुलेखा किसी न किसी प्रकार वज़ीर के महल में रहने लगी और बीमारियों के बहाने अपने सतीत्व की रक्षा करती रही जब तक सौदागर यूसुफ़ को ले कर मिस्र के बाज़ार में आ पहुंचे और इन्हें एक दास के रूप में बेंचने के लिए वहाँ खड़ा किया। इनके सौंदर्य की प्रसिद्धि इतनी हुई कि जुलेखा भी इन्हें देखने चली गई और इन्हें पहचान कर अपने गुलाम

के रूप में खरीदवा लिया। वह अब प्रसन्न रहने लगी। किंतु यूसुफ़ को सदा उदासी ही बनी रहती थी। एक दिन जब ये जुलेख़ा की ओर से आकृष्ट हुए और उसे इन्होंने आलिंगन करना चाहा तो इन्हें अपने पिता नबी याक़ूब का स्मरण हो आया और ये भाग चले। जुलेख़ा ने इन्हें पकड़ना चाहा और उसके इस प्रयत्न में इनके कुर्त्ते का पल्ला फट गया जिसे दिखला कर उसने इनकी शिकायत की और ये बंदी बना दिये गए।

कारागार में रहते समय यूसुफ़ ने उधर से जाते हुए किसी सवार के द्वारा अपने पिता को संदेश भेजा। इधर जुलेख़ा की निंदा होने लगी और उसने अपनी सफ़ाई में नगर की स्त्रियों को छुरी और तरबूज दे कर उन्हें यूसुफ़ के सामने, हाथ बचा कर काटने की चुनौती दी और उन्हें इसमें असफल सिद्ध कर उसने अपना मान बचाना चाहा। किंतु वज़ीर ने उसका परित्याग कर दिया। इधर मिस्र के सुलतान ने अपने किसी स्वप्न का अभिप्राय यूसुफ़ के द्वारा जान कर इन्हें मुक्त कर दिया और इन्हें अपना मंत्री भी बना दिया। उधर किनआँ में अकाल पड़ने के कारण यूसुफ़ के भाई मिस्र देश से सहायता लेने आये और इनसे अन्न ले गए। यूसुफ़ का पता पाकर फिर किनआँ के अन्य लोग भी इनसे मिलने आये और इसप्रकार ३० वर्षों के अनंतर इनकी अपने पिता से भी भेंट हो गई। मिस्र के सुलतान ने फिर बूढ़े होने पर यूसुफ़ को ही अपनी गद्दी दे दी। किंतु उधर जुलेख़ा इनके वियोग में दुःख सहती सहती अंधी तक हो गई।

एक दिन जब यूसुफ़ की सवारी नगर से निकल रही थी तो मार्ग में खड़ी हुई स्त्रियों में से उसे इन्होंने पहचान लिया। नबी याक़ूब इन दोनों के पूर्व संबंध का हाल जान कर प्रसन्न हुए और अपना आशीर्वाद दे कर जुलेख़ा को उन्होंने युवती बना दिया। इन दोनों का उन्होंने विवाह भी करा दिया और जुलेख़ा ने यूसुफ़ की कई बार परीक्षा ले कर फिर इनके प्रति आत्म-समर्पण कर दिया। अंत में नबी याक़ूब का देहान्त हो जाने पर यूसुफ़

नबी बने और ये अनासक्त से रहने लगे। इनकी मृत्यु हो जाने पर जुलेखा भी इनके शव के निकट जा कर मर गई और इन दोनों की समाधियाँ एक स्थल पर बनायी गईं।

'स्वप्न दर्शन खंड' वाले अवतरण में जुलेखा द्वारा यूसुफ़ को स्वप्न में देखने और उसके साथ बातचीत करने का वर्णन है।—चौपाई—सो नारी = जुलेखा। लह = लग, तक। करारी = कौआ जैसे पक्षी। मीठी नींद = गहरी नींद में। गोवा = छिपाया। दोहरा १—आयगे = आ गए। टकलाइ = निर्निमेष दृष्टि से, टकटकी लगा कर। लीन्ह....दिखाई = यूसुफ़ ने अपने सौंदर्य के द्वारा मानो जुलेखा के प्राणों को उसके शरीर से बाहर निकाल लिया अर्थात् उसे पूर्णतः स्तब्ध कर दिया। चौपाई—बाउर = पगली। तीया = वह स्त्री अर्थात् जुलेखा। चकचोहट = चकचौंह, चकाचौंध। पेमकै गांसी = तीर के समान चुभनेवाले प्रेम का उग्र प्रभाव जो तीर की नोक की भाँति हृदय में प्रविष्ट हो। तन नासी = शरीर को नष्ट करने वाला। गलाना = क्षीण व जर्जर करने लगा। दोहरा २—सँवरि = स्मरण कर के। चौपाई—नु = उसे। झारा = ज्वाला। धन = स्त्री, जुलेखा। बिकरारा = व्याकुल, बेचैन। अमभरन = आभरण, गहने। दोहरा ३—रस = शर्बत। कांट....फूल = सुखदायक वस्तुएं भी उसके लिए कष्टदायक प्रतीत होने लगीं। चौपाई—लैगा = स्वप्न में दीख पड़ने वाला पुरुष ले गया। वह = स्वप्न में देखी गई। बिसूरति = चिंता में लीन है। चेटक लावा = जादू का सा प्रभाव डाल दिया। हतेउ = था। जोती = रूप सौंदर्य वाले। दोहरा ४—दई = दैव, परमेश्वर। चौपाई—ग्यान.... पाती = उस सौंदर्यमयी मूर्ति ने जुलेखा को ज्ञानहीन बना कर उससे अपने को परोक्ष में भी कर लिया। जिसकारण उसके हृदय में विरह ज्वाला धधकने लगी और उसमें से शांति की शीतलता का लोप हो गया। जातबेद होइ = अग्नि बन कर। जामबेद = चार पहर। बेद = चेतना।

जातवेद.....भुलावै = वह मूर्ति अग्नि सी बनकर जुलेखा को सोते समय जलाया करती और हर घड़ी उसे चेतना शून्य सी किये रहती थी। पावक....लागै = जब हवा चलती थी तो उसकी विरह ज्वाला उसे और भी झुलसा दिया करती थी। सागन = सरागों अर्थात् लोहे की गर्म नुकीली छड़ों से। सुबरना = सुबरन वा स्वर्ण निर्मित सी। पारा = पारा धातु की भाँति अस्थिर व बेचैन। दोहरा ५—चख = आँखें। दुकूल = चादर आदि वस्त्र। चौपाई—सँजोई = संयोग ला दिया। मूंदि..केरा = बाहर की आँखें मूंद कर। खोलि....हेरा = अपने हृदय की आँखों से देखा। नेन्त्र = नेत्र, आँखें। आदि = पहलेपहल। तनहाना = शरीर का नाश। घट पंजर = शरीर की ठठरी में। खेहा = धूल। अंबुज = कमलवत् कोमल। दोहरा ६—चाह = खबर, पता। अब....नाह = अब भी कुछ करोगे वा नहीं। चौपाई—कहा = स्वप्न की उस मूर्ति ने उसे बतलाया। अपाना = अपना। नेर = निकट। विसेखी = माना करो। राता = रत-होना, प्राप्त करना। तुम....आसा = तुम मेरी आशास्वरूपिणी हो और मैं तुम्हारी आशा रखता हूँ। अँविरथा = व्यर्थ, निष्फल। दोहरा ७—वैराग = अन्य सभी ओर से विरक्त। चौपाई—विसेखै = लखपाती थी। पानिप = कांति, यहां पर मर्यादा। पानिप....तोरी = मेरी लाज तुम्हारे प्रेम-जाल में ही बंध चुकी है। छाया = व्याप्त है। हारा = भूल, गल्ती। अरथ अपारा = गूढ़ भेद। दोहरा ८—लसा = शोभित है, व्याप्त है। विरहइं = विरह में ही। चरचै = भांप पाता था। संग = साथ वाला। चौपाई—परसन = स्पर्श। वरुनी....नांउ = अपनी भींगी वरुनियों की जंजीर उसके पैरों में डाल कर उसे जाने से रोक लूं। संकर = सांकर, जंजीर। नैनथानि = नेत्र स्थल अर्थात् अपनी आंखों में। ओट = शरण, मध्य। छूंछी = निर्धन वा बेचारी। दोहरा ९—शोर = हलचल। चौपाई—तुलानी = पहुँची। वैं = उसने। आदि विसेखा = जिसे पहले पहल निरखा

था। जानहु = मानो। अमीकुंड = अमृत का स्रोत। अन्त = पूर्ण। अरुझी ....गाढ़ी = गहरे प्रेम द्वारा सिंचित बेल में उलझी हुई सी। अवलह = अब तक। दोहरा १०—चलि....देख = वहाँ पहुँच जाऊँ। चौपाई—बास = निवास स्थान। मेरावा = भेंट। डाहू = दाह, ताप। प्रापत = प्राप्त, उपलब्ध। जो = यदि। वन्तकुंमारी = अन्य सभी बातों का परित्याग कर के (?)। हुलासा = उल्लासित, आनंदित। गहवर = उद्विग्न, बेसुध हो कर। दोहरा ११—छार होउ = धूल बन कर। नांह = नाथ, प्रियतम।

९—ख़्वाजा अहमद

नूरजहाँ

कथा सारांश—सरन द्वीप के अंतर्गत ईरानगढ़ नामक एक नगर था जहाँ के सुलतान का नाम मलिकशाह था। वह बहुत लोकप्रिय शासक था। उसकी बेगम नूरताव उसकी पटरानी थी। किंतु उसे कोई संतान नहीं थी। एक दिन सुलतान इसी बात की चिंता में अपने गढ़ से निकल पड़ा। अपनी प्रजा को उदास बनाकर जंगल में जा किसी नदी के तटपर आसन लगाकर बैठ गया। वहाँ पर सुलतान के स्मरण करते ही उसके दस्तगीर नामक पीर आ उपस्थित हो गए और उन्होंने उसे एक सुन्दर संतान का वरदान दिया। इसके अनंतर सुलतान के अपने घर लौटने पर उसे समया-नुसार खुरशेदशाह नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। खुरशेद ने किसी दिन सोते समय स्वप्न में देखा कि स्वर्ण सिंहासन पर एक सुन्दरी स्त्री बैठी है। उसे देखते ही यह जग उठा और उसके विरह में पागल हो गया।

इसीप्रकार खुतन शहर का सुलतान खबरशाह नाम का था जिसकी रानी का नाम सभाजीत था। उससे सुलतान को एक कन्या थी जो नूरजहाँ नाम से प्रसिद्ध थी और जिसके सौंदर्य से सभी कुछ प्रकाशमान हो रहा

था। नूरजहाँ के निकट उसकी एक सहेली रहा करती थी जिसका नाम सुमति था और जिसका पिता सारी परियों का राजा था। सुमति दिन भर में सातों द्वीप घूम कर अपने घर लौट आती थी जिस कारण एक दिन उससे नूरजहाँ ने पूछा कि हे बहन, क्या तुम कोई ऐसा पुरुष बतला सकती हो जिसके साथ मैं अपना व्याह कर सकूं। इसपर सुमति उड़कर उसके योग्य वर ढूंढ़ने के लिए चल पड़ी। वह सिंहल, ब्रह्मा, बंगाल, दिल्ली, मुलतान, काबुल, लखनपुर, कश्मीर एवं रूम होती हुई ईरानगढ़ पहुंच गई और उसने वहाँ के सुलतान के दर्बार में जाकर उसके राजकुमार को देखा। राजकुमार के हाथ में सुमति ने नूरजहां की एक मूर्ति उस समय दे दी जब वह सोते समय स्वप्न देख रहा था। जगते ही उसने अपने हाथ की मूर्ति को स्वप्न में देखी गई सुन्दरी का प्रतिरूप समझा और अपने निकट खड़ी हुई सुमति से उसका परिचय पूछा। सुमति द्वारा नूरजहाँ के सौंदर्य की प्रशंसा सुन कर खुरशेद अचेत हो गया। तब उस मूर्ति को ले कर सुमति वहाँ से लौट आई।

दूसरे दिन सवेरे जगते ही खुरशेद नूरजहाँ की स्मृति में लीन होगया और उसकी प्राप्तिके लिए योग साधने को उद्यत होगया। इधर नूरजहां को भी खुरशेद के सौंदर्य ने पूर्णतः प्रभावित कर लिया था। वह सुमति को उसके लिए बार-बार भेजने लगी। खुरशेद अंतमें जोगी बनकर एक तपसीकी सहायता से जलाशय के तट पर पहुंचा और 'परतीत राय' घटवार की नाव पर सवार होकर वहां से आगे बढ़ा। फिर 'पीरान-पीर' का वरदान पाकर 'सुफलपुर' पहुंचा गया। वहां पर शाहने उसका भलीभांति स्वागत किया और उसका विवाह करा उसकी तप—साधना की सिद्धि में सहायक बन गया।

'खुरशेद-परिचय' वाले अवतरणमें खुरशेद के पिता, उसके जन्म एंव स्वप्नादि की चर्चा है। —चौपाई-दीप = द्वीप। ठाऊं = स्थान यहां

गर नगर। नुवास = निवासस्थान। पाट = राज्यासन। अवर = और, अन्य प्रकार का। वहिरान = निकल पड़ा। थामेउवाट = रास्ता पकड़ा। सलिता....घाट = नदीका किनारा। दोहा—तौं....ठांउ = तबतक सुलतान ने देखाकि वे मेरी दाहिनी ओर ही खड़े हैं। चौपाई—सुफल = सफल। सुफल = मनोवांछित। ठाकुर ठाऊं = स्वामीकाही प्रतिनिधि स्वरूप। दोहा-लेखसि....निरभाइ = उसपर भलीभांति विचार किया। वाउर = पागल। अलोप = अदृश्य। मुरति....लागि = स्वप्नकी उस मूर्तिने उसके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया।

'नूरजहाँ-परिचय' वाले अवतरणमें नूरजहां के मातापिता और उसकी सहेली सुमति का वर्णन है। —चौपाई-तेहि....ठाऊं = उस महलमें जो राज्यासन था उसी पर वह रानी बैठा करती थी। वारि = नारी, वालिका, कन्या। उजियारी = सुंदरी। गगन....पसारी = आकाश में जिस प्रकार द्वितीयाका चंद्रमा अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार नूरजहां भी अपना सौंदर्य फैलाने लगी। मंदिल देस = महल में। विचारी = भलीभांति सोचसमझकर। रैन वसेरे = रातको विश्राम करती थी। एक....वारी = बहनें। कंवल = कमल स्वरूपिणी सुंदरी, नूरजहांने। जेहि के गुन = जिसके कारण। दिस्टि समीपा = प्रत्यक्षरूपमें हिछां = अभिलाषा। खोरी = गलीगली तक में। दोहा-संजोह = संयोग।

'ख़ुरशेद का मूर्त्तिदर्शन' वाले अवतरणमें ख़ुरशेद का नूरजहाँकी मूर्त्ति देखकर प्रभावित होना वतलाया गया है।—चौपाई-चरनउठाया = चली। सुचित = निश्चित होकर। भाना = भानु अर्थात् ख़ुरशेद (सूर्य) नामक राजकुमार। वैदीन्हा = पकड़ा दिया। थामेउ....कीन्हा = उसकी वांह पकड़ कर उसे सचेत वा सजग कर दिया। विसेखा = तुलना कर विचार कियातो। आदि....लेखा = पहले की स्वप्नवाली मूर्त्ति एवं अपने हाथमें पड़ी मूर्त्तिको एकही सा पाया। पंखी के लेखा = पक्षी

के समान परों वाली, परी। जोहारा = अभिनंदन। दोहा-भेद औ नांउ = पूरा परिचय। चौपाई-तबही..राता = तब सुमति के लाल मुखसे अमृतमें सनीहुई वाणी कांपती हुई सी निकली। लरजिकै कांपती हुई सी, धीमे स्वर में। बात = वाणी। अमृत मेलि = अमृतमें घोली हुई अर्थात् मधुर। राता = लाल। खुलेउ = बाहर निकली। जग....हेरा = उसे अपने हृदयमें उसने जगत्की ज्योतिके रूपमें देखा। दोहा-उड़ी.... बूंटि = अपने मुखमें अदृश्य होने की वटिका का गुटिका डालकर उड़चली। चौपाई-धौराहर = नूरजहाँके महल में। लखि = नूरजहाँ को पाकर वा देखकर। देखत = सुमतिको देखकर।

'खुरशेदकी सिद्धि' वाले अवतरणमें खुरशेदकी अंतिम सफलताका वर्णन है।—चौपाई-अंजोरा = प्रकाशमान। तेहिके....काजा = उसीके घाट पर संसार भरका कार्य चला करता था। बोहित = नाव, बेड़ा। साजू = साज सामान। परतीत राइ = प्रतीत राय नामक। संवरि = स्मरणकर। विधिनांव = परमात्माका नाम। चली....बांधी = उस समय वेगसे चलनेवाली श्वासक्रिया का उसने निमंत्रण कर लिया। दोहा-अंधधुंध....भा = जलाशय क्षुब्ध हो उठा। बैरागी। खुरशेद के साथी बैरागी। कवनमति = किस प्रकार। चौपाई-हुलसिकै भाये = प्रसन्न हुए। सब = सभीके। समोख = सिमिट कर। दधि....गयेऊ = दहीके समान उसका जल स्थिर हो गया। पारा खाल, नीजा, समतल। लागि = लगगई। नेउता = निमंत्रण। बसीठ = दूत। दोहा-सुफल = सफल, पूर्ण।

'नूरजहाँ-रहस्य' वाले अवतरणमें कहानी का आध्यात्मिक तात्पर्य बतलाया गया है। चौपाई-उलथानी = जागृत होगई। प्रेमकथा = प्रेमात्मक रूप। मूरी = मूल, जड़ी, परमात्मा। बाटा = मार्ग। घाटा = तीर जहां पर नावसे आये हुए यात्री उतरा करते हैं। काआकै जोती = शरीरके भीतर

वर्त्तमान परमात्मज्योति जिसे उपलब्ध करनेके लिये विविध साधनाएं की जाती हैं।

१०—शेख़ रहीम

भाषा प्रेमरस

कथा सारांश—रूप नगर एक अनुपम स्थान था जहां का राजा रूपसेन था और उसकी रानी रूपवती थी। दोनों को संतान की चिंता बनी रहती थी। एकदिन रानी ने लक्ष्मी को स्वप्न में देखा और उससे सुना कि वह स्वयं उसके गर्भसे चन्द्रकला नाम से उत्पन्न होगी। समय पाकर चन्द्रकला उत्पन्न हुई। वह पांच वर्षकी अवस्था में पढ़ने बैठते ही सभी प्रकार की कलाओं में निपुण होगई। उधर रूपसेन राजा के बुधसेन मंत्री के घर प्रेमसेन नामक एक पुत्र हुआ जिसे स्नेह के कारण 'प्रेमा' नामसे भी पुकारा जाता था। चन्द्रकला और प्रेमा दोनों एक ही पाठशाले में पढ़ा करते थे। दोनों में पारस्परिक प्रेम होचला और इसकी चर्चा बढ़ते-बढ़ते उनके गुरु के द्वारा रूपसेन तक होगई।

राजा एवं रानी ने चन्द्रकला को पाठशाले से हटाकर पंचमहलमें डाल दिया जहां पर वह विरह के कारण कष्ट झेलने लगी। उधर प्रेमा को भी उसका साथ छूट जाने से असह्य पीड़ा होने लगी। उसकी दशा को देखकर उसके मातापिता चिंतित होगए। प्रेमा ने अपना सारा हाल अपने मित्र बलसेन से कहा जिसने राजा की मालिन मोहिनी के द्वारा प्रेमा एवं चन्द्रकला का पत्र-व्यवहार जारी किया। प्रेमाने तब मोहिनी से दोनों प्रेमियों के मिलन के लिए कोई उपाय पूछा। उसने उसे इसके लिए अपनी माताके पास पहुँचा दिया। मोहिनी की माताने प्रेमाको बतलाया कि यह काम तब होगा जब तुम नारी वेशमें मेरे साथ महलमें चलो।

फिर मोहिनी, उसकी माता एवं प्रेमा तीनों एक साथ महलमें गये और क्रमशः चन्द्रकला तक पहुँच गये। इस प्रकार प्रेमा एवं चन्द्रकला का परस्पर मिलन हुआ। अब दोनों वहांसे कहीं अन्यत्र भाग निकलने की सोचने लगे। प्रेमा जब चन्द्रकला के यहां से अपने घर लौटा तो उसने अपना पूरा वृत्तांत अपनी माता से कह दिया जिसपर वह तथा बुधसेन दोनों बहुत भयभीत हो गए। प्रेमा को जब उनके भय का पता चला तो वह एक दिन जोगीवेश में घर से निकल पड़ा और बहुत दूर चला गया। वहां पर किसी गुरूसे उसकी भेंट हो गई जिसका नाम सहपाल था और जिसने उसे नाम-जपकी साधना में प्रवृत्त कर दिया।

इधर प्रेमा के मातापिता उसे न पाकर अत्यंत दुखी हुए और उसके भागने की सूचना महल तक जापहुँची। एक दिन रात के समय महल से चन्द्रकला को एक दैत्य ले उड़ा। उसे किसी परबत पर लेगया जहां उसके चालीस घर थे। उसने चन्द्रकला को उन सबकी ताली देदी। किंतु कह दिया कि उनमें से वह किसी विशेष घर को कभी न खोले। यदि ऐसा करे भी तो मौन रहकर ही। दैत यह कहकर उड़ गया। इसीप्रकार नित्यतः वहां पर आने-जाने लगा।

उधर रूपसेनने चन्द्रकला का कहीं चले जाना जानकर उसकी खोज के लिए कोतवाल और कुट्टिनियों को नियुक्त किया एक दिन किसी कुट्टिनी ने मोहिनी मालिन के हाथमें महलसे मिले हुए कंगन को देखकर उसके उसके घरकी तलाशी करायी और कुल पता लगाया जिस कारण बुधसेन का भी घर लूटा गया और वह बंदी बना लिया गया। उसकी स्त्री बन में चली गई। उसके रोनेका हाल किसी पक्षी ने सहपालगुरु को बतलाया जिसने प्रेमाको उसके यहां भेज दिया। प्रेमाने अपनी मातासे सब समाचार सुनकर उसे अपने गुरुके यहां पहुंचाया और उससे परामर्श लेकर चन्द्रकला को ढूंढ़ने निकला।

इधर चन्द्रकला विरह में मरी जा रही थी। उसने एक दिन दैतकी सातोंसवीं कोठरी खोलदी जिसमें रखे हुए नरमुंडों ने उसे प्रेमाके वहां तक पहुंचने का पता देदिया। उन्होंने यह भी बतला दिया कि किसप्रकार वह उस स्थान से मुक्ति पासकेगी। उसके अनुसार चन्द्रकलाने दैतको मरवा डालने के लिए प्रेमाको भेजा और गुरुकी सहायतासे वह सफल हो गया। फिर वे दोनों दैतका धन लेकर गुरुके यहां गये। गुरुने वहां पर उन दोनों को प्रेम की शिक्षा दी। प्रेमा, चन्द्रकला और प्रेमाकी माता वहां से उड़नखटोले से उड़कर रूपनगर आगए। यहां पर प्रेमा एवं चन्द्रकला का विवाह हो गया। वृषसेन बंधन से मुक्त कर दिये गए और लोग सुख से रहने लगे।

किंतु देश निकाले का दंड पा चुकी मालिन तबतक इस्लामाबाद जाकर उसके सुल्तान अबिद से रूपनगर की चन्द्रकला की प्रशंसा कर दी थी और उसे चन्द्रकला को अपनाने के लिए उभाड़ दिया था। अबिद सुल्तान ने उसके कहने में आकर रूपनगर पर चढ़ाई कर दी और वहां के लोगों पर जेहाद बोलकर नरसंहार मचा दिया। फिर भी चन्द्रकला के रूप को देखते ही वह फकीर बनकर चला गया। चन्द्रकला तब एकबार फिर उपर्युक्त गुरु के पास गई। गुरु ने रूपनगर आकर सभी मरे हुए लोगों को जिला दिया। गुरुने तब दोनों प्रेमियों को महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये और वे दोनों आनंद के साथ दिन व्यतीत करने लगे।

अवतरण के अंतर्गत, नारी वेशमें मालिन के साथ चन्द्रकला के महल में, प्रेमाके पहुँचने और दोनों प्रेमियों के वहां पर गुप्तरूप में मिलने तथा वहां से चल निकलने की युक्ति पर विचार करने का वर्णन है।—मालिन मैया = मोहिनी मालिन की माता। चन्द्रकला. . . .बलैया = चन्द्रकला को मंगल-कामना प्रदर्शित करने के निमित्त। बाई = वृद्धा मालिन के लिए प्रयुक्त आदरसूचक शब्द। माता = माता के समान हितचिंतक

करने वाली। कत......फेरा=कैसे यहां पर आज पधारी। अँदेस=अंदेशा, आशंका, चिंता। दुख......चीन्हा=तुम्हारे दुख को सदा अपना दुख माना करती हूं। मालिन......जानी=यह मालिन किस मतलब से ऐसी बातें करती है। दोहा १—दोहराना=फिर दोबारा उसी बात को कहा। चौपाई—आपन......नीती=अपने विषय में तुम लोग स्वयं निश्चय कर लो। चन्द्रावलि=चन्द्रकला ने। स्यामा=अपने प्रियतम को। आये...धामा=(तब उसने समझ लिया कि) मुझ प्रेमिका राधिका के प्रियतम कृष्ण-स्वरूप प्रेमा मुझसे मिलने इस नारी वेश में यहां आ गए हैं। नाह—प्रियतम, हृदयेश्वर। परान=मेरे प्राणाधार। करारी=खरी, वास्तविक, सचमुच। हमें वर आयो=मेरे लिए मनोरथ बन गए। पीत......नसायो=विरह तप से मुझे दुःखिनी बनाकर मुझे अपनी लज्जा से भी हीन कर दिया। दोहा २—लाड़ली=अय, नारी वेश में आये हुए प्रियतम। मुख...... तोर=मैं तुम्हारी मुँह-देखनी करूं और उसके उपलक्ष्य में अपने प्राणों तक को तुम्हें न्योछावर कर दूं। चौपाई—कह की नार इ०=(चन्द्रकला ये सभी बातें परिहास में कहने लगी) तुम कौन स्त्री हो, तुम्हारा घर कहां है इ०। नगीना=अनुपम। चोली वारी=चोली पहनने वाली स्त्री। मोहनी=मोहिनी नाम की मालिन जो वहां पर अपनी मां के साथ आयी थी। आज......फँसी=आज यह बेचारी स्त्री (वास्तव में नारी वेशधारी प्रेमा) आकर चन्द्रकला के पंजे में पड़ गई। (यहां पर चन्द्रकला, मोहिनी एवं प्रेमा की भी बातों में व्यंग्य भरा हुआ है)। बैठारी=ठहराव। दोहा ३—अपने......खेल=प्राणों को जोखिम के डाल कर। चौपाई—चलती......मनभाई=अपने-अपने जी की बातें खोल कर कही जाने लगीं। इकठौरा=कहीं अन्य स्थान पर। प्रेमा......कोरा=तब प्रेमा ने चन्द्रकला का गाढ़ा-

लिंगन कर लिया। ढरें आंसु = नेत्रों से प्रेमाश्रु वहने लगे। यह हाला = इसी दशा में। साला = प्रकट किया (?)। वारी = प्रतिबन्ध। दोहा ४—सिरोही = एक प्रकार की तीक्ष्ण तलवार। हर ...... चैन = मन को बेचैन कर दिया। चौपाई—अंदेस = दुविधा, भय, आशंका। ग्यान = युक्ति। हँसाव = उपहास। बारी = युवती। बुध ...... पिरीता = प्रेम ने मेरी बुद्धि एवं ज्ञान का अपहरण कर लिया है। दोहा ५—प्रेम सत = सच्चा प्रेम। भ्रमकंद = संदेह की बातें। चौपाई—मात...वेसू = अपने माता-पिता के कुलोचित वेशभूपादि। अनत = अन्यत्र। जिवके गरासा = प्राणों को ले लेने वाले हैं। राह बाट संजोगू = मार्ग में संयोगवश मित्रवत् व्यवहार करने लगने वाले। किंगरी = किंगरी अर्थात् वह छोटी सारंगी जिसे लेकर जोगी बहुधा भिक्षा मांगते फिरते हैं। रगर...ललाटा = किंगिरी वजाते-वजाते उसके सिरे की रगड़ से अपना माथा छिल जाता है। दोहा ६—जिन...... मग = जो कोई भी प्रेममार्ग में अग्रसर हुआ। तिनका...दीन = उसका कोई परामर्शदाता अथवा हितचिंतक नहीं रह जाता। चौपाई—सहत = शहद, मधु। सहतछीन = लोग उस मक्खी से शहद छीन लेते हैं और इसप्रकार उसे विरह में डाल देते हैं। अछर = अप्सरा वा मछली। सावज = मृग। अलान......हंकारे = वंधन में लाकर फँसा देते हैं। याकूब = नबी याक़ूब जो यूसुफ़ के पिता थे। विरोग = वियोग। फिर......दाहा = इसी प्रकार याक़ूब को अपने पुत्र यूसुफ़ के वियोग में कष्ट सहने पड़े। उनके = यूसुफ़ के। कूप......छोड़ाई = यूसुफ़ के भाइयों ने उन्हें कुएं में डाल कर उनको अपने पिता से विमुक्त कर दिया। (यूसुफ़ की इस कथा का प्रसंग कवि निसार कृत 'यूसुफ़ जुलेखा' तथा कवि निसार कृत 'प्रेम-दर्पण' में आया है जिनका कथा सारांश अन्यत्र दिया है)। नीक = अच्छी। परवाने = अपने प्राणों को न्योछावर करने

वाले। दोहा ७—धरो......हाथ = अपना हाथ कलेजे पर रख कर अर्थात् धैर्य के साथ। हिय......कथा = यह कथा इतनी करुणरस भरी है कि इसे सुनते ही हृदय विदीर्ण होने लगता है।

११—कवि नसीर

प्रेम दर्पण

कथा सारांश—इसकी कहानी की कथावस्तु प्रधानतः वही है जिसका उल्लेख कवि निसार की 'यूसुफ़ जुलेखा के प्रसंग में किया जा चुका है।

इस अवतरण में जुलेखा द्वारा, यूसुफ़ के दासरूप में नगर के भीतर घुमाये जाते समय, उसके सौंदर्य पर आकृष्ट होना तथा अपनी दाई से अपने स्वप्न में देखे गये पुरुष से उसके अभिन्न होने का अनुमान करना बतलाया गया है। चौपाई—एहसे भोरा = इस बात से अनजान थी। पै......अधिकारी = परंतु एक बार अचानक उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे प्रियतम यहां पर ही हैं और उसका चित्त और भी चंचलहो उठा। अधिकारी = और भी अधिक। अस्थीरा = विचलित। वहु = उसने। यह......वुझाई = मन में समझ कर। दुखहारी = दुःखिनी। राव = सुलतान। समर = शोरगुल। दोहरा १—का है = क्या है। यह समाचार = कौन सी नवीन बात। वेकति = व्यक्ति, जन। चौपाई—इह परकारा = इस प्रकार का सुन्दर। परभू......समावा = स्वयं परमेश्वर उसमें उतर आया है। होवज....मंझारी = स्वप्न में जिसे देखा था उसी का परिचय पा लिया। इकवारी = एक व एक। ओके = उसे। चहुँपाई = पहुँचा दिया। ओहके = उसके। दोहरा २—सोवायो = पुछवाया। मोहे = मुझे। कहलाग = किस कारण। वैराग = उदासी, विरह। चौपाई—हिया अमासी = प्राणों को वा जीवन को शांति प्रदान

करने वाला। लखभर = देखते ही। मदमाती = मदोन्मत्त। उराती = उर में, मेरे कलेजे में। भवां = भौंहें। यही....मन = मुझे इसी को प्राप्त करने की धुन सवार थी। किहि हाथा = किसी अन्य की वस्तु हो जायगा। करे....किसी अन्य के साथ अठखेलियां करेगा। दोहरा ३—किहि के....उरझावे = किसी और के केशों में न उलझ जाय अर्थात् किसी दूसरे को न अपनी प्रेमपात्री बना ले। अस....हो = किस प्रकार ऐसा मेरा सौभाग्य हो सके। चौपाई—कर....अवगाहा = उस प्रकार ईर्ष्या के कारण कदापि न चिंतित हो, परमेश्वर इस यातना को भी दूर कर देगा। वही = परमेश्वर ही। सून....बसाई = तुम्हारे शून्य भवन से हो गए मन को उसे बसा कर शांत कर देगा। अवासी = विवश हो कर। ए....अवासी = उस परमेश्वर पर निर्भर हो कर जो उसे पुकारता है। कर....निरासी = वह उसे कदापि निराश नहीं करता। बार....निरंजन = वह निरंजन अर्थात् परमेश्वर क्षण भर भी नहीं भूलता। कठीना = कठिनाई, संकट। दोहरा ४—मिले....धीर = धैर्यपूर्वक उसे प्राप्त करने की आशा लगाये रहो। देखो....नीर = देखती नहीं हो कि काले बादलों से ही श्वेत जल बरसता है अर्थात् घोर दुःख से सुख हो सकता है।

यह अवतरण पुस्तक का अंतिम अंश है जिसमें उसने कहानी का आध्यात्मिक अर्थ निकालने की चेष्टा की है—चौपाई—बढ़वाना = बड़े लोगों अथवा उद्देश्यमूलक। याक़ूब = यूसुफ़ के पिता नबी याक़ूब किसके प्रतीक हैं। परधानी = मुख्य पात्र। भ्रात = भाई, यूसुफ़ के ११ भाई। कि = के, कौन। मालिक संपरदायी = कारवां का सरदार जिसने यूसुफ़ को कूएं से निकलवाया था और जिसने उसे उसके भाइयों से ख़रीदा भी था। तैमूसा = तैमूस का सरदार जो जुलेखा का पिता था। छलवंतू = छल कपट करने वाली। कौन....महाकंतू = मिस्र देश का वह आराम देने

वाला मालिक कौन था। के....राव = मिश्र के वे सुलतान कौन थे। मनुश मझारा = मानव शरीर के ही अंतर्गत। नियारा = न्यारा, भिन्न, अन्यथा। दोहरा १—यह....परमान = इस प्रकार उसकी व्याख्या समझ लो। हारे दांव = विवश हो कर। गुपुत की वानी = रहस्यपूर्ण बात को। निदान = अंत में। चौपाई—खनी अतां = रूह मुअद्दन। इस-पर्श = स्पर्शेंद्रिय त्वचा। घ्राण = नाक नामक इंद्रिय। स्वाद = स्वाद की इंद्रिय, जीभ। स्रवन = श्रवणेंद्रिय, कान। नैन का दर्शन = दृष्टि की इंद्रिय, आँखें। चिंता = चित्त। चेत = चेतना। सरन = हिफ़्ज़। मालिक = कारवां का सरदार। हस्त = हाथ। पोषन = भोजन। रिपु = इंद्रियों की शक्ति। पिशाजसंगू = शैतान, फ़रेबी। रुधीरो = रक्त प्रवाह। दोहरा २—जीवन आत्मा = जीवात्मा, रूह हैवानी। यही परमान = इसी के अनुसार।

(ख) फुटकल सूफ़ी काव्य

१—अमीर ख़ुसरो

निज़ामुद्दीन औलिया का पद—बाबुल = हे मेरे पिता। मंडवा। विवाह की विधि सम्पन्न करने के लिए निर्माण किया जाने वाला मंडप। दिल दरियाव = उदार हृदय। डोलिया फँदाय = विवाहोपरांत डोली में बिठाकर। दाव = दाँव, अनुकूल अवसर, मौका। गुडिया....रह गई = खेलने की सामग्री अर्थात् गुड़िया आदि वस्तुएं नैहर में ही रखी रह गई। (आशय—मृत्यु के उपरांत अपनी सारी वस्तुएँ जहाँ की तहाँ छोड़ चला जाना पड़ता है और जीवन-काल के पूर्व परिचित कार्यों के करने का फिर अवसर नहीं मिला करता)।

अमीर ख़ुसरो का पद—अंतकरी = बंद कर दो, समाप्त कर दो अथवा बंद कर दिया। लरकाई = जीवन-काल के बाल्यसुलभ व्यवहार। लगन

. . . . धराई = वैवाहिक संबंध स्थिर कर दिया। बिन मांगे. . . .ठहराई = किसी की इच्छा न रहते हुए भी अपरिचित के साथ विवाह की बातें निश्चित कर दीं। नौशा = दूल्हा। गहेल. . . .डोलति = मैं गँवार उन्मत्त सी बन कर अपने आँगन इतराती चलती थी कि (आशय—इस पद का भी तात्पर्य उपर्युक्त पद के ही समान है और इसमें भी मरणोपरांत जीवन-काल के आनन्द न लूट सकने के लिए पछतावा है)।

दोहे—(१) रैन सोहाग की = जिस समय अपने प्रियतम के साथ मेरी पहली भेंट हुई। जागी. . . .संग = प्रियतम के साथ विलास करने में लगी रही। तन. . . .रंग = गहरे प्रेम के आधिक्य ने इतना विभोर कर दिया कि दोनों में किसी प्रकार का अंतर नहीं रह गया। (२) खुसरो ने इस दोहे की रचना उस समय की थी जब उनके पीर निज़ामुद्दीन औलिया की मृत्यु हो चुकी थी और उन्हें समाधि दे दी गई थी। इस घटना का समाचार सुनते ही वे लखनौती से शीघ्र वापस आ गए और उनकी क़ब्र को देखते ही शोकाकुल हो यह दोहा कहते कहते गिर पड़े। सचेत होने पर उन्होंने गुरु-वियोग से प्रभावित हो अपना सर्वस्व लुटा दिया और कुछ ही दिनों में उनका देहांत भी हो गया। यहां पर 'गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस' का अर्थ इसीकारण, उनके पीर के, क़ब्र में लेटने का ही लेना होगा। ऐसी दशा में 'चल खुसरो. . . .चहुँ देस' का भी तात्पर्य 'उनकी मृत्यु के कारण अब सर्वत्र अँधेरा छा गया इसलिए अब मुझे भी अपने घर अर्थात् प्रियतम के निकट चला जाना चाहिए' होगा। (३) श्याम सेत. . . . अनीत = मुहम्मद साहब के लिए जो दो प्रकार की सृष्टि रची गई वह उचित नहीं सिद्ध हुई। (दे० 'ऐस जो ठाकुर किय एक दांऊ। पहिले रचा मुहम्मद नांऊ॥ तेहि कै प्रीति बीज अस जामा। भए दुइ बिरिछ सेत औ समा'—अखरावट)। एक पल में. . . .काके मीत = जीव स्थायी रूप से यहाँ पर रह नहीं पाता।

२—मलिक मुहम्मद

(१) 'अखरावट'—(८) खेलार = खेलाड़ी अर्थात् सृष्टि का लीलामय रचयिता। जस....करा = जैसा स्वयं दो कलाओं से युक्त है अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति दोनों का ही आश्रय स्वरूप है। उन्हें....अवतरा = उसी के अनुरूप उसने आदम का भी निर्माण किया अथवा उसी के अनुरूप आदम भी अवतरित हुए। मिलि....गहऊ = उनके संयोग से एक नवीन जगत् का ही निर्माण हो गया। चहुँ फेरा = सारे शरीर भर में, सर्वत्र। खर = घास-पात। सूत = सूतसूक्ष्म व छोटे-छोटे। जाहि = जिसका। मेरइ = मिला कर। (९) गौरहु = गौर करो, विचार करो,। नासिक = नाक। पुल-सरात = 'पुले सरात' अर्थात् इस्लाम धर्म के अनुसार कल्पित किया गया वैतरणी के ऊपर बंधा हुआ वह पुल जो पापियों के लिए तो एक बाल के बराबर पतला रहता है, किंतु धार्मिक मुसलमानों के पार करने के लिए चौड़ा हो जाता है। दुइपला = दो पक्ष अर्थात् दहिने-बायें के दो पार्श्व। चांद....चलहीं = चंद्र अर्थात् इड़ा नाड़ी और सूर्य अर्थात् पिंगला नाड़ी के अनुसार क्रमशः बायें और दाहिने नथनों से दो श्वास-प्रवाह चलते रहते हैं। इसीकारण उन्हें चंद्र एवं सूर्य के प्रतीक मान लिया जा सकता है। जागत = जाग्रत अवस्था। भोर = प्रातःकाल। बिसमय = विषाद। हिवंचल छोहू = अनुग्रह को हिम की वृष्टि समझो। घरी.... सांसा = प्रत्येक श्वास-प्रश्वास को पृथक्-पृथक् घड़ी एवं प्रहर के रूप में मान लो। ठगहैं पाँच = पांच ठग अर्थात् काम, क्रोध, तृष्णा, मद और माया जिन्हें जायसी ने अन्यत्र चोर भी कहा है। (दे० "काम, क्रोध, तिस्ना, मद, माया। पांचौ चोर न छांड़हि काया॥ नवौं सेंध तिन्हकै दिठियारा। घर मूंसहि निसि की उजियारा॥"—पृष्ठ ५१)। नवौ बार = नव दर्वाजे अर्थात् दो कान, दो नाक के नथने, दो आंखें, मुख, मूत्र-नलिका एवं गुदा-द्वार। इन्हीं को 'नवौ सेंध' भी कहा है। (१०) घट....जाना =

शरीर के पिंड को ब्रह्मांड के समान जानना चाहिए। बन = बना हुआ है। नबीक नाऊँ = जहाँ पर नबी अर्थात् हज़रत मुहम्मद का नाम सदा रहा करता है। सरवन. . . .चारी = श्रवण, नेत्र, नासिका एवं मुख नाम की चारों इंद्रियां। चारि फिरिस्ते = स्वर्ग के चारों दूत अर्थात् जिब्रईल, मकाईल, इसराफ़ील और इज़राईल। चारियार = अबू बकर, उमर, उसमान एवं अली नामक चार ख़लीफ़ा। किताबें = चार आसमानी किताबें अर्थात् तौरेत, जबूर, इंजील एवं क़ुरान। इमाम = धर्म के अगुआ हसन, हुसेन आदि। नाभिकँवल = नाभि स्थान के निकट कल्पित किया गया दस दलों का मणिपूरक चक्र वाला कमल। कोटवार = कोतवाल वा पहरेदार। दसई = शीर्षस्थदसम द्वार। चाँड = बढ़कर प्रचंड। आसु = चेतन। कतहूँ. . . .सो = वह चेतन इतना विस्तृत और व्यापक है कि उसकी सीमा ही कोई नहीं है। (११) तस = ऐसा है। पाहरू = पहरा देने वाला। चारा. . . .माया = प्रलोभन दे कर संसार को माया में फँसा रखा है। नाद = शब्द स्वरूपी ब्रह्म। वेद = धर्म पुस्तकें। भूत सँचारा = भौतिक इंद्रियां। जौन. . . .जहवाँ = जिस किसी भी भूखंड का स्मरण किया जाय। पीरा = अनुभव। सो = ईश्वर। सोवत. . . .डोलै = सोते समय मन अपने भीतर ही भ्रमण करता फिरता है। मनुआ = मन। आसु = चेतन। पासु = निकट। देहखहु. . . .चाखई = कितने आश्चर्य की बात है कि सारे संसार का वृक्ष रूप बीजरूपी ब्रह्म के भीतर अव्यक्त रूप से निहित रहा करता है, वह बीज ही अपने आपको अंकुरित करता है और वही उस वृक्ष का फल भी चखा करता है।

(२) आखिरी कलाम—(५१) फ़रमान = ईश्वरीय वक्तव्य। झारि उमत = सारी प्रजा की। लागी. . . .तारी = टकटकी लग गई, एकटक सभी लोग देखने लग गए। सहुँ = प्रत्यक्ष। चमकार = चमत्कार अर्थात् ज्योति। छपै = प्रभावित अर्थात् प्रकाशित हुए। कीन्हि थिराई = स्थायी

रूप से रह सके। छपा....आई = उनके शरीर को भी उस ज्योति ने आलोकित कर दिया। (५२) लहि = पर्यंत, तक। जिबरैल = जिब्राईल नामक फिरिस्ता व ईश्वरीय दूत। हिय भेदि = पूर्ण रूप से। जलम दुख = जन्म वा जीवन का दुख। गँजन = गंजन, तिरस्कार योग्य स्थिति। परिहँस = ईर्ष्या की दशा। (५३) पथ जोइहिं = प्रतीक्षा करेंगी। अछरिन्ह = स्वर्ग की अप्सराएं। कै असवार = सवारियों पर विठाकर। शदाद = कोई पौराणिक व्यक्ति। विरसैं = भोग विलास करते हैं। हूरें = अप्सराएँ। जोई = पत्नी। जनि = जन, व्यक्ति। ऐसे जतन = इसप्रकार। जतन = सदृश। (५४) इतात = आज्ञा पालन। चोल = विशेष प्रकार का पहनावा। दगल = एक प्रकार का लंवा अँगरखा। कुलह = कुलाह नाम की टोपी। काकब = काक पक्ष अर्थात् जुल्फ़। खोरि = शरीर प्रक्षालन कर के। तुम्हरे रुचे = तुम्हारी इच्छा के अनुसार। जिन....जारा = जो आजन्म ईश्वरीय विरह में लीन रहे। वैठि....पारा = स्थायी रूप से रहने योग्य। (५५) नैहैं = उपस्थित होंगी। नंदसरोदन = आनंद भरे स्वरों में। रावन = रमण करने वाला। (५६) पँवरि = फाटक। वेना = खस नाम का सुगंधित द्रव्य। साजन = स्वजन, प्रियतम। मरदन = आलिंगन। (५७) दइ = विधाता ने। घालि = डाल कर। उँचावा = उठाया हुआ। कुँहकुँह = कुंकुम, केशर। कुनकुन = कुछ-कुछ गर्म। (५८) निकाई = सौंदर्य। लाल = लाड़ प्यार। मुख जोहव = मुंह देखेंगी, आज्ञा की प्रतीक्षा करेंगी। आगर = एक से एक वढ़ कर। साहस करैं = प्रयत्न करती रहैं। पाट = सिंहासन, उच्चासनों पर। (५९) चाहि = वढ़ कर। रूपवांती = रूपवंती, सुंदरी। कौकुत = कौतुक, चमत्कार। जाइपरव = पहुँच जायँगे। वारहवानी = द्वादश कलायुक्त सूर्य की भाँति दमकने वाला, खरा। वास....जग = जिस भ्रमर को वेध कर छूने के लिए सुगंध जाती है, जिसे पूर्णतः प्रभावित करने के लिए वह सुगंध उठ रही है। (६०)

पैगपैग = प्रत्येक पग। जोवन-वारी = युवती स्त्रियों को। अछूत = बिना स्पर्श किये। मर्हू = वहुत। वारि = युवती। वीसी वीस = अधिक से अधिक बढ़ कर, क्रमशः अधिक भाव के साथ।

(३) जायसी के सोरठे—(१) ठाँव = स्थान, खाली जगह। (२) हुता = था। एकहि संग = जीव एवं परमेश्वर पहले एक ही साथ रहे। तरंग = अनेक प्रकार के भाव। (३) झेल = झेर अर्थात् बखेड़ा, प्रपंच अथवा कष्ट। धनि = प्रेमिका। संती = से, दे, कर। (४) बुन्दहि.... रामान = प्रत्येक बूंद में समुद्र समाया हुआ है अथवा ओत प्रोत है, प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा-स्वरूप है और प्रत्येक पिंड में ब्रह्मांड अवस्थित है। हेरा = अपने ही भीतर जिसने ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। हेरान = खो गया, अनंत में लीन हो गया। (दे०—'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ। समद समाना बूंद में, सो कत हेरा जाइ'—कबीर)। (५) सुन्न समुद = शून्य के समुद्र की ओर दृष्टिपात करते समय। चखमांहि = अपनी दृष्टि के ही भीतर। जल....उठहिं = जल की लहरों की भांति एक पर एक नवीन दृश्य उत्पन्न होने लगते हैं। खोज = पता। (६) एकहि.... होइ = एक ही ब्रह्म से चित् एवं अचित् अर्थात् जड़ की सृष्टि होती है। बीचुते....खोइ = इन दोनों से भिन्न किसी अन्य सत्ता का भाव अपने लिए मत रख। एकै....रहु = उन दोनों की मूल सत्ता उस एक ब्रह्म में लीन होजा। (७) लछिमी....चेरि = सारी ऋद्धिसिद्धियां उस सत्ता की आज्ञा के अनुसार चलने वाली हैं। मुख चहैं = मुख देखती रहती है। राता प्रेमजो = जो ईश्वरीय प्रेम में लीन है। दीठि....फेरि = उस ऐश्वर्यमयी प्रतिमा लक्ष्मी की ओर मुड़ कर भी नहीं देखता। (८) कटु = कठिन, दुःसाध्य। मरजिया = जान जोखिम में डाल कर मोती जैसे अनमोल पदार्थ ढूंढ़ निकालने वाले। रोज = रुलाई, रोना। (९) हिया ....फूल = हृदयस्थल कमल पुष्प के समान है। जिउ....वासना =

जीवात्मा उसमें पुष्प गंध की भाँति विद्यमान रहता है। तन....भूल = शरीर का विचार त्याग कर यदि केवल मन में ही लगे रहें। (१०) अपने कौतुक लागि = अपनी लीलामात्र के उद्देश्य से। चीन्हि....जागि = उस परमेश्वर को सजग हो कर भलीभाँति पहचान लो। सोइ....खोइए = असावधान बन कर अपने कल्याण का अवसर हाथ से न जाने दो।

३—शेख़ फ़रीद

सलोक (१) जिंदु = ज़िंदगी। वहूटी = वधूटी, वहू। वरू = वर, दूल्हा। पराणइ = विवाह कर के। आपण....धाइ = या तो अपने हाथ में हाथ मिला कर जाय अथवा उसके गले लग जाय। (२) विरहा = विरह को वुरा कहा जाता है। जितु = जिस। तनि = शरीर में। मसाणु = स्मशानतुल्य। (दे०—'विरहा वुरहा जिमि कहौ, विरहा है सुलितान। जिस घटि विरह न संचरै, सो घट सदा मसान'—कवीर)। (३) वारि पराइअै = पराये वा दूसरे के द्वार पर। वैसणां = कुछ मांगने के लिए बैठना। इवै रखसी = इस प्रकार ही रखना चाहे तो। (४) जो.... मुकीआं = जो तुझे घूंसा लगावे। घुंमि = लौट कर वदले में। आपनड़ै = अपने। पैर....चुंमि = प्रणाम कर के। (दे० 'जे तोकूं कांटा वुवै ताहि वोइ तू फूल' इ०)। (५) सवाइअै जगि = सारे संसार में। ऊँचै... देखिआ = यदि निरपेक्ष हो कर उच्च भाव के साथ विचार किया तो। ईहा अगि = यही दुःखाग्नि है। (६) करंग = करंक, अस्थि पंजर, ठठरी। ढढोरिआ = टटोलना, ढूंढ़ना। छुहउ = छूना, स्पर्श तक करना। (७) सवारहि = ठीक रखो। मै मिलहि = मुझे पालोगे। जे....होइ = यदि कोई अपने को परमेश्वर का वना ले तो सारा संसार उसके लिए अपना हो जाय। (८) पटोला = रेशमी कपड़े का पहनावा। धजकरू = चियड़े- = चियड़े कर दूं। कंवलड़ी = छोटी सी कम्वली। पाड़ि = फाड़ि, फाड़-

कर। जिन्ही....मिलै = जिस वेश के धारण करने से वह मिल सकता हो। (९) पालकु....महि = सृष्टिकर्ता (ख़ालिक़) सृष्टि (ख़ल्क) के अंतर्गत विद्यमान हैं। रब = परमेश्वर। मंदा....आपीअै = किसे बुरा कहा जाय अर्थात् किस वस्तु का वा व्यक्ति को हम निम्नकोटि का माने। (१०) जिन लोइण = जिन सुंदर नेत्रों पर। कजल....सह-दिआ = जो एक साधारण सी कज्जल की रेखा तक नहीं कर सकता था। से...वहिठु = उसमें पक्षियों की नुकीली चोचें प्रवेश करती थीं। (११) जेठु = जेठ, बड़ा, बढ़ कर। जीवदिआ = जीता रहते समय। पैरा तलै = पैरों के नीचे बनी रहती है। मुइया....होइ = मरणोपरांत (क़ब्र के रूप में) ऊपर आ जाती है। (१२) तरंदिआ = तैरता हुआ। बगा = बगले को। चाउ = अभिलाषा। डुबि....पाउ = बेचारा बगला जल = डूब कर मर गया और उसका सिर नीचे हो गया तथा उसके पैर ऊपर की ओर उठ गए।

४—यारी साहब

भजन—(१) तवक = तवक़, लोक। रुसनाई = रोशनी, ज्योति, प्रकाश। झिलमिलि....सितारा है = नक्षत्रों की झिलमिलाती वा कांपती हुई ज्योति के रूपमें प्रकाशित है। नेनमून = जिसका कोई दूसरा नमूना नहीं है अर्थात् अनुपम। बेचून = जिसके कोई टुकड़े नहीं अर्थात् अखंड। दरवेस = दरवेश-रमता साधू वा फ़क़ीर। सारा = वास्तविक, असली। मुसलम धार मुसल्मान। यार = प्रियतम, परमेश्वर। (२) बेधुन = बिना ध्वनि की। जिकिर = ज़िक्र, सुमिरन वा नामस्मरण की साधना। अनहद = अनाहत शब्द जो घटके भीतर सदा होता रहता है। अगम.... नाहीं = वह अगम्य है, वहाँ तक सब की पहुंच नहीं हो सकती। पिसानी = पेशानी, ललाट। आपा = आत्मतत्त्व को।

झूलना—(१) वंदगी = उपासना। आलम = संसार। हराम = अनुचित, अधर्म। जाय = याम, पहर। तू....रे = व्यर्थ के प्रपंच में फंसा रहा करता है। गोर...रे = अंत में क़ब्र को ही निवासस्थान बनाना है अर्थात् मर जाना है। (२) सेती = से। आखी....देखिये = जो दृश्यमान जगत है। सो....फानी है = वह सब तो नश्वर संसार की वस्तुएँ हैं। इस....देखै = जो अंतः साधना के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेता है। आरिफ़ = अध्यात्म का जानकार। नादानी = अज्ञान। (३) सूली....देखा = सांसारिक जीवन के नष्ट हो जाने पर वा जीवन्मुक्त हो जाने पर मैंने उस प्रकाशमान सूर्य अर्थात् परमेश्वर को देखा। मल-कूत....तीनों = तीनों क्रमिक आध्यात्मिक स्थितियों अथात् क्रमशः देवत्व की दशा, ईश्वरीय शक्ति की दशा एवं परमात्म-भाव से होकर वढ़ता गया। लाहूत....रे = देवत्व की दशा मनवीय दशा से आगे होती है। हाहूत...भीनो = अब मैं अंतिम पांचवी अनिर्वचनीय दशा में लीन हो रहा हूँ। धुंया....चढ़ो = अपने को शून्यवत् वना कर ही इन क्रमिक अवस्थाओं की ओर वढ़ा जाता है। मुतलक....चूनो = उस वास्तविक मोती वा परमात्म-तत्त्व की ज्योति की आभा ग्रहण करो। आँखिन.... वूनो = स्वयं प्रत्यक्ष कर लो और फिर वैठ कर मस्ती में उसे गुथा करो। (४) मिसाल = उदाहरण। आफ़ताव = सूर्य। तमसील = दृष्टांत से। दलील करैं = वाद विवाद करते हैं। विन....जी = विना दृष्टि के दर्शन किस प्रकार किया जा सकता है। यक़ीन = विश्वास। इलिम = इल्म, कोरी जानकारी के वल पर। (५) हुवाव = पानी का वुल्ला। साकिन = रहने वाले। वहर = समुद्र। दरियाव = समुद्र। मौज = लहर। ग़ैर ख़ुदा = परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी वस्तु। मुतलक़ सौदा = निरा वावलापन। ऐन = ठीक वीचोवीच। वुदवुदा = पानी का वुल्ला, नश्वर शरीरधारी।

साखी—(१) हजूर = प्रत्यक्ष वर्त्तमान रहकर। (२) दछिन दिसा = शरीर वा पिंड में नीचे की ओर। उत्तर = उसी में ऊपर की ओर। पंथ ससुराल = प्रियतम की ओर अग्रसर होने का मार्ग है। मानसरोवर = एक काल्पनिक स्थान जिसकी स्थिति घट के भीतर ब्रह्मांड में अर्थात् शिरो भाग में बतलायी जाती है। (३) चौमुख....वारि = अपने को सभी प्रकार से उसकी ओर उन्मुख कर के। (४) धरती.... बाहरे = इस दृश्य जगत् के परे। सेत....उजियार = वहाँ पर सभी कुछ उस शुभ्र निर्मल ज्योति के ही तद्रूप है। (५) तारनहार... कोय = उस परमात्मा के अतिरिक्त अन्य को भी मुक्त नहीं कर सकता। अम्बर = अमर, जीवन्मुक्त।

५—पेमी

पद —मधुकर = भ्रमर (यहाँ पर अपने सामने उपस्थित एवं योगादि साधनाओं का महत्व बतलाकर उनके द्वारा ईश्वर प्राप्ति की संभावना सिद्ध करने वाले व्यक्ति के लिए प्रतीक रूप में इसका प्रयोग हुआ है। (महाकवि सूरदास आदि के भ्रमर गीतों में इस प्रकार की शैली का बहुत प्रयोग हुआ है।) जातन....प्यास = ओस चाटने मात्र से ही कहीं प्यास नहीं बुझा करती। कीनो = करने पर भी। आंव....अपानो = आम का फल खाने की जगह उसके पेड़ों को गिनने में ही लगा रह जाना मूर्खता का काम है। सुरत = सुध। हम....बर्रानी = हम तो प्रेमोत्मत्त होकर डोलती फिरती और प्रलाप करती हैं। जो....बौरे = अरे पागल, जो घोड़े की भाँति तुम्हारे शासन में आ सकने वाला हो। अरनी = जंगली हिरन की भाँति।

दोहे—(१) देवल....भाइ = मंदिर एवं मस्जिद दोनों में ही एक ही प्रकार की ज्योति विद्यमान है। (२) मारग....को = प्रेमसागर

के मार्ग को। मगर मच्छ = समुद्र की बड़ी मछली। बदन = शरीर। (३) होत....ऐन = जब स्मृति में वह आ बसता है। आंसू की = आंसुओं की। (४) सिंध = जल-राशि। (५) खरी = खार, राख (कंडे की)। मोय = सान कर के। कुंदन = खरा सोना। (यहां पर रासायनिक क्रिया द्वारा पारा शोधने के उदाहरण से मन को शुद्ध एवं मलरहित बनाने का वर्णन है)। (६) पीत = प्रीति। सेख = शेषनाग, गुप्तधन की रक्षा करने वाला भयंकर सर्प। (७) चीर = वस्त्र। दध = उदधि, समुद्र। तरंग = लहर। (आशय-आत्मा एवं परमात्मा वस्तुतः एक हैं)। (८) रसोई सार = भोजनालय। (९) फिल = व्याप्त है। संवत = संवृत, सीमित। अर्ज = विस्तृत। (१०) अजुगति = आश्चर्य की बात।

६—बुल्लेशाह

पद—(१) टुक = तनिक, ज़रा। बूझ = समझो, चेत कर के देखो। छप = छबि, सुन्दर आकृतिवाला। कइ = कहीं। नुक़ते में....पड़ा = यदि बिंदु के इधर से उधर देने में भूल हो गई अथवा यदि कथन में कुछ फेरफार हो गया तो। तब....धरा = तब ऐन (ع) अक्षर का नाम गैन (غ) पड़ गया अर्थात् केवल एक बिंदी के देने मात्र से ऐन का अक्षर ग़ैन बन गया। मुरसिद = पथ प्रदर्शक गुरु ने। नुक़ता = (क) बिंदी, (ख) ऐब, दोष। (आशय—जिस प्रकार फ़ारसी के ع अक्षर पर केवल एकमात्र बिन्दी के दे देने से वह غ बन जाता है औरउसे मिटा देते ही फिर ع का ع ही रह जाता है उसी प्रकार साधक का मूलतः मलरहित चिन्ह जो केवल विकारों के आ जाने से ही कलुपित बना रहता है सद्गुरु द्वारा उनके दूर कर दिये जाते ही फिर निर्मल बन जाता है। चित्त की जगह रूह अथवा जीवन को भी समझा जा सकता है।) तुसी....कर्देहो = तुम पुस्तकाध्ययन द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करते हो और अपनी पढ़ी पुस्तकों

के उलटे अर्थ समझ लिया करते हो। वेमूजव ऐवें = अपने-अपने विकारों वा मनोवृत्तियों के आधार पर। वेमूजव = वमूजिव, अनुसार। ऐवां = दोष, विकार। दुइ = द्वैतभाव का मनोविकार। सोर = शोर (?)। होर = और, भिन्न-भिन्न। नाल = निकट। (२) खुदी = खुदही, स्वयं। करेंदी = करती हैं। जोड़ा = पहनावा। माटीदा = माटी का। माटीनूं = माटी को। जिस माटी पर = जिस मृत्तिका निर्मित वस्तु में। वहुत = अधिक। माटी = भौतिकता। हंकार = अहंभाव। गुलजार = फुलवारी। वहार = वासंती शोभा। पांदी = लेट रहेगा। वुझारत = मतभेदों पर किया गया अंतिम निर्णय। वूझी = समझ लिया। लाह = लाभ। सिरों....भार = अपने सिर का वोझ हो गया। (३) लटके = नीचे अस्त होने के लिए ढल गए। सराई = सराय के। अजे = आज भी। सुनदा = सुन रहा है। कूचनकारे = अंतिम प्रयाण करने के लिए चेतावनी के शब्द। करनदी = करने की। होसी = होगा। साथ....पुकारे = तेरा साथी तुझे 'शीघ्र चलो,' 'शीघ्र चलो' करता जा रहा है। आवो....दौड़ी = सभी अपने-अपने लाभ के लिए दौड़ धूप में लगे हैं। लाहा नाम = नामस्मरण का लाभ। सरधन = सधन, धनी। सहुदी = साहु के, मालिक परमेश्वर के। हीला = उद्योग। मिरग = मृग, (यहां पर इंद्रियां)। जतन विन = कोई प्रबंध वा प्रयत्न न करने के कारण। खत = हरा भरा खेत (यहां पर सुन्दर जीवन)। उजारे = नष्ट कर रहे हैं। (आशय—जिस प्रकार यदि कोई प्रबंध कर रखवाली न की जाय तो, हरे भरे खेत को मृग चरकर नष्ट कर देते हैं उसीप्रकार हमारी इंद्रियां, हमारी असावधानता के कारण, हमारा जीवन नष्ट कर देती हैं। दे०

संतनि एक अहेरा साधा, मिर्गनि खेत सबनि का खाधा।।
या जंगल में पाचौं मृगा, एई खेत सबनिका चरिगा।।
पारधी पनौं जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई।।

तथा; जतन बिन मृगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निस बासुरि, विडरत नहीं बिडारे॥
अपने-अपनैं रस के लोभी, करतब न्यारे-न्यारे॥
(कबीर ग्रंथावली २०६, २१९)

(४) कद = कदा, कब। मिलसी = मिलोगे। भट्ठि....नूं = आज तक विरह की आग शरीर को जला रही है। तैं जेहा = तुम्हारे समान। होर = किसी अन्य को। मैं....नू = मेरे शरीर में पीड़ा निरंतर बढ़ती ही जा रही है। मैनूं = मुझे।

सीहर्फ़ी—(१) चानणा = चांदनी, प्रकाश। कुल्ल जाहानादा = सारे विश्व के लिए। वेइ = वही। तुझे....अध्याँरा = तुझे प्रकाश और अंधकार का बोध होता है। खाव = ख्वाव, स्वप्न। (२) तुहीं.... साईं = इसमें संदेह नहीं कि तुम स्वयं अपने आप स्वामी हो। जिवें = जब तक। आपणे नूं = अपना। अजा = बकरी। पिछे....बल = अपने सिंहत्व की शक्ति का जब उसे पीछे बोध हो गया तो। तैसै....धारी = वैसे ही तूने भी अपने को कुछ और समझ लिया है। (३) शुबह = संदेह। ओथे = वहाँ। पड़ा....सोया = सेज पर सोया हुआ सा है। कूड = सदोष।

७—दीन दरवेश

कुंडलिया—(१) गड़े = गड़गड़ाकर बज रहे हैं। कूच = महाप्रयाण काल। छाना = गुप्त, विराम। पांव पलक = एक क्षण में। होयगा.... डेरा = श्मसान चला जाना पड़ेगा। (२) खिवेगा नाहिं = असावधान न होगा, वह अपने नियमों का पालन अवश्य करेगा। तजुरबा = अनुभव, परिणाम। खत्ता = खता, भूल। खत्ता खावै = दुष्परिणाम भोगता है। गंदा = कलुषित मनोविकारवाले। (३) अम्मर = अमर, अविनश्वर।

(४) मूंग = मूंग नामक अन्न का दाना। फाड़ = फार, खंड, दाल। कुण = इनमें से कौन। जादा = ज़्यादा, अधिक, श्रेष्ठ। कम्म = कम, हीन। कजिया = कजिया (अरबी शब्द), लड़ाई झगड़ा, वैमनस्य। रजिया = राज़ी, अनुरक्त। दोय. . . .सिंधू = दोनों नदियों को अंत में एक ही समुद्र में मिल जाना है। एक. . . .हिन्दू = दोनों पृथक-पृथक् हिंदू और मुसलमान के दो भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं।

८—नज़ीर

(१) सिम्त = दिशा। जिस सिम्त = जिस ओर। दिलवर = प्रियतम, परमेश्वर। फुलवारी = सुन्दर सृष्टि। गुलकारी = कारीगरी, रचना-सौंदर्य। दातारी = देने वाला, वितरण करने वाला। आन = क्षण। दिलगीरी = उदासी, रंज। (२) हुस्न = सौंदर्य, लावण्य। दिलवर = प्यारा। आला = सब से बढ़िया, सर्वोपरि, श्रेष्ठ। जी बख़्शा = जीवन दिया है। (३) इल्म = विद्या, रहस्य का ज्ञान। जो. . .वांचे हैं = जो विना लिखा हुआ ग्रंथ अर्थात् विश्व का रहस्य जान गए हैं। जांचे हैं = भाँप जाते हैं। तमांचे = ताल। मुंहचंग जवां = जीभ मुरचंग बाजे के समान है (मुरचंग एक प्रकार का लोहे से बनाया गया बाजा होता है जिसे बहुवा ताल देने के लिए मुंह से बजाया जाता है)। कमांचे हैं = लचकदार टहनियों के समान हैं। बेगत = बिना किसी गति अर्थात् शरीर-संचालन और मुद्रा के। (४) गत = ताल, विराम। जब. . . .बजी = जब मृत्यु का अंतिम क्षण आ पहुँचा। बेआन सजी = अकड़ दूर हो गई। अबयां = इस प्रसंग में। अख़िर निकला = अंत हो गया। (५) वाँजो हर = वहाँ पर जो हैं वे प्रत्येक। सी डाली = बंद कर दी। आँख दुरंगी की = द्वैतभाव की वृत्ति। रंगी = रंगीले प्रियतम ने। सुई मार = सुई से। ने = नतो। उई = वहाँ पर। (६) यह. . . .समझे = यदि यह बात तुम्हारी समझ में नहीं आयी

हों तो। (७) दोनों....हुए = दुःख वा सुख की भावना ही जाती रही। (दे०—'कौन मरै कहु पंडित जनां। सो समझाइ कहौ हम सनां॥ माटी माटी रही समाइ, पवनैं पवन किया संगि लाइ॥ इ०-क० ग्रं०पृ० १०३)। (८) पट्टी = एक प्रकार की मिठाई जिसमें चाशनी में अन्य चीजें जैसे चना, तिल, मिलाकर जमाते और फिर उसके टुकड़े काट लिए जाते हैं। ववूला = वगूला, ववंडर। (९) अंवोह = भीड़ भाड़। (१०) कनाअत = संतोष। तवक्कुल = भरोसा। हिर्स = कामना, लालच। (आशय—जव अपने में संतोष की वृत्ति आ जाती है और ईश्वर पर पूरा भरोसा रहता है तो कामनाएँ उसके द्वारा नष्ट हो जाती हैं)। आसा निस्ता = आशा-निष्ठा। (११) हिर्संतमा = लोभ व लालच। ख्वारी = वर्वादी। (१२) ख्वारी = अप्रतिष्ठा। मिन्नत = प्रार्थना। (१३) गौन = गोन अनाज आदि भर कर लादने की खुरजी जो वैल की पीठ पर दोनों ओर रक्खी जाती है, यहां पर शरीर। ढल जाएगी = जीर्ण शीर्ण हो जायगी, नष्ट हो जायगी। वधिया = आख्ता चौपाया यहाँ संभवतः साधारण वकरी। खेप = लदान। वंजारन = वनजारिन, तुझ वनजारे की पत्नी। (१४) जीपर = जान जोखिम में डालकर। साज़ = सामान। अमारी = अंवारी अर्थात् छज्जेदार हौदा।

९—हाजी वली

दोहे—(१) यह = कुछ लोग। वह = अन्य लोग। नेरें = निकट ही में है। हजूर = समक्ष। (आशय—परमात्मा का ज्ञान उसके संवंध में केवल निकट वा दूर का रहनेवाला वतलाने मात्र से ही नहीं होता उसकी स्वयं अनुभूति किये विना वास्तविक आत्मज्ञान संभव नहीं)। (२) जरत.....जरगया = जव विरहताप के कारण अपने आप की सुधि तक जाती रही। उलझा....का = प्रेमवंधन में पूरा फंस गया। (३) गोरख = गुरु गोरखनाथ, यहां पर अपना प्रीतम, परमात्मा। दुहागिन =

दुर्भागिनी, विधवा। (आशय—बिना विरहताप में जले प्रियतम का मिलन संभव नहीं है) दे०—हंसि हंसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ। जे हंसे ही हरि मिले, तौ नहीं दुहागिनि कोइ। (क० गं० पृ० ९ सा० २९) (४) तन....लगाय = जिस प्रकार रावण ने सीता को लेजाकर छिपा रखा था और हनुमान द्वारा उस गढ़ के भस्म कर देने पर ही सीता का मिलना संभव हुआ उसीप्रकार अज्ञान के कारण हमारा प्रियतम परमात्मा हमारे घट में छिपा हुआ है प्रचंड विरहानल द्वारा शरीर के पूर्णतः तपाये विना उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। लूका लगाय = अग्निज्वाला का ताप व्याप्त कर देता है। (५) दफ़्तर....धरा = अपने मन से साधारण से साधारण विकारों को भी दूर कर उसे पूर्णरूप से स्वच्छ एवं निर्मल कर। अपना....विचार = तब अपने आप आत्म चिंतन में प्रवृत्त हो। तिनके ....पहार = संभव है परमात्मा के साक्षात् करने में कोई साधारण मनोविकार ही बाधा पहुँचा रहा हो। (६) एक....दोय = द्वैतकी भावना हमारे अपने दृष्टिकोण बना लेने के ही कारण है। (७) गेहूँ ....मोल = असमान वस्तुओं का पृथक-पृथक मोल भाव हुआ करता है। निखरी....बराबरी = तू पूर्ण समानता अर्थात् अद्वैत का भाव ग्रहण कर। सो....बोल = उसी भाव की ओर प्रवृत्त होना स्वीकार कर। (८) कारनें....नेह = परमात्म प्रेम बाह्य चेष्टाओं द्वारा प्रकट की जाने की बात नहीं, वह केवल इंगितों से ही लक्षित हो जाता है। (९) परों = परसों, कल के बाद का दिन। काल्ह....छाड़ = टालमटोल का स्वभाव छोड़ दो। सो....लाड़ = वहां पर नखरेबाजी नहीं चल पायगी। (१०) पेम = प्रेम। सार = इस्पात। (११) लोहे.... ताव = जिस प्रकार लोहे के गर्म रहते ही उसे पीटकर किसी काम के योग्य बनाया जा सकता है उसीप्रकार मानव-जीवन का अवसर भी महत्वपूर्ण है। जो कुछ करना हो शीघ्र कर लेना चाहिए। (१२)

देखी....मौन = प्रियतम का साक्षात्कार हो जाने पर फिर कुछ कहना-सुनना बन्द हो जाता है। सो....लोन = विरह की पीड़ा अब घाव पर नमक पड़ते समय का कष्ट बन गई है। (१३) आँधरे = अज्ञानी। सो दोऊ = वे दोनों ही। बारह बाट = तितर-बितर अर्थात् भिन्न-भिन्न मार्गवाले। (१४) साबुन....होय = अपने जीवन को शुद्ध एवं निर्मल बनाने के लिए उसे ईश्वरीय विभूति (शान) के साबुन और साजी में डालो और प्रेम जल में बारबार डुबोकर प्रक्षालित करते रहो जिससे वह कभी फिर मैला न होने पावे। (१५) आसरित = आश्रित। मुख ....अलेख = अगोचर परमात्मा का दर्शन हमारे अपने आप के दर्पण में ही, प्रतिबिंब रूप से, हो सकता है। आप = आत्मा। (१६) दुख = विरह। कोकिल....कलोल = कोकिल की कूक। सरग....खोल = (जान पड़ता है जैसे) स्वयं स्वर्ग ही बोल रहा है और मेरी विरह पीर को देख कर उस पर हंस रहा है।

१०—अब्दुल समद

भजन—(१) मधुवारा = उस मधुमयी मूर्ति वालेका। पाक = पवित्र। रसूल = पैगंबर अर्थात् हजरत मुहम्मद साहब। मुक्ख = मुख्य, असली। सबको = अलख के अतिरिक्त अन्य सारी बातों की भावना को। पट भीतर के = अपने अंदर के वर्तमान अहंभाव के पर्दे को। (२) रामरत भगवत्प्रेम। फिरै हैंगा = फिरा करता है। कथा = पुराणादि की कथा। कथा = वृत्तांत, रहस्य। सेवड़े = एक प्रकार के जैन साधु। सेली = ऊन, वा सूत की वह माला जिसे योगी लोग बहुधा गले वा सिर में लपेटे फिरते हैं। अलफ़ी = ढीला-ढीला और लंबा सा वह कुर्ता जिसे फ़क़ीर लोग बहुधा गले में डाले भ्रमण किया करते हैं। शाहजी = फ़क़ीर आला। कुफ़र = कुफ़्, धर्म-विरुद्ध भाव। हक़ = परमार्थ। अल्यक़ीं = पूर्ण विश्वास

के साथ । आलिम = ज्ञानी । जाहिदां = धार्मिकलोग । सिजदा = शिर झुकाना, माथा टेकना । दमबदम = बराबर, निरंतर । अदल = इन्साफ़, न्याय । आदिल = न्यायकर्ता । बन्दा = मनुष्य । (३) रब = परमेश्वर । ऐन = पूरी । जाप = जप, नामस्मरण । रंजक = वह थोड़ी सी बारूद जो बत्ती लगाने के पूर्व रख दी जाती है । गरभ = गर्व, अहंभाव । फलीता = पलीता, रंजक में आग लगने वाली बत्ती । बलजा = बलि-बलि जावे । ग्यान....आये = श्रेष्ठ ईश्वरीय ज्ञान को दबा मारना चाहते हैं । (४) परछाईं = प्रतिबिंब । गुरु लखिया = सद्गुरु के संकेत मात्र से । (५) बीती....सगरी = नैहर में ही मेरी पूरी आयु व्यतीत होती जा रही है । शगुन = शकुन । जीवें....मछरी = बिना जल की मछली की भांति मेरा जीवन तड़प-तड़प कर बीता जा रहा है ।

११. वजहन

दोहे—(१) समन्दर....में = परमात्मतत्व हमारे भीतर ही विद्यमान है, किंतु फिर भी दीख नहीं पड़ता । (दे० हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हिराय । समंद समाना बूंद में, सो कत हेरा जाइ ॥ (क० ग्रं० पृ० १७ आ० ४) । (२) बसन = वस्त्र, भेष । निजके = निश्चय । दोनों दर = इहलोक = परलोक । (३) चेत = समझ । (४) साज वाद्ययन्त्र, बाजे । ऐसे = बड़े अच्छे ढंग से । (५) लाज....बूड़े = लाज का काजल केवल हमारी आंखों में ही नहीं है, उसमें हमारा शरीर डूबा हुआ है जिस कारण पग-पग पर बाधाओं का सामना करना पड़ता है । (६) पीर....जाय = सूफ़ीमत के अनुसार साधन की प्रगति क्रमिक रूप से ही हुआ करती है और उसे पीर वा सद्गुरु की शरण में जाकर फिर नबी अर्थात् हज़रत मुहम्मद साहब के निकट भी उपस्थित होना पड़ता है । तब कहीं परमेश्वर का दर्शन अपने भीतर हो पाता है ।

(७) रह्यो....विचार = कोई भेद नहीं रह जाता। (८) बदला = प्रतिफल, परिणाम। (९) कुटुम = सांसारिक संबंध। (१०) अच्छर = वचन । साधन के = साधुओं के। पत = मर्यादा।

१२--अज्ञात कवि

कहावत पांचवीं--फ़ानूस = शीशे का बना गिलास जिसके भीतर बत्ती जलायी जाती है। चातर = चातुर, नेत्रगोचर। सैर = मनोरंजक दृश्य। दीपक बल = दीपक के द्वारा। दीपक = चेतन। लैली मजनूं = प्रेमिका और प्रेमी। मधुवन = फुलवारी। अन्-अल्-हक् = मैं ही सत्य रूप हूँ। (सूफ़ी हलाज की प्रसिद्ध उक्ति यही थी)। मंसूर = सूफ़ी हल्लाज जिसे इस प्रकार के उदगार प्रकट करने के कारण सूली दे दी गई। महैत = ओतप्रोत, व्याप्त। कुफ़ = धर्म-विरुद्ध। करम = अनुग्रह, कृपा। तायत = चेष्टा। अपरमपारा = अपरिमेय, अज्ञेय।

सहायक साहित्य

मूलपाठ

हस्तलिखित

१. मृगावति (भारत कलाभवन, काशी)
२. मधुमालति (३ प्रतियां, श्रीगोपालचंद्र जी, लखनऊ)
३. कनकावति (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
४. कामलता (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
५. मधुकरमालति (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग)
६. रतनावति (कुंवर संग्रामसिंह, नवलगढ़)
७. छीता (हिंदुस्तानी, एकेडेमी, प्रयाग)
८. यूसुफ़ जुलेखा (श्री गोपालचंद्र जी, लखनऊ)
९. नूरजहाँ (श्री गोपालचन्द्र जी, लखनऊ)

प्रकाशित

१. जायसी ग्रंथावली (का० ना० प्र० सभा, द्वितीय संस्करण)
२. चित्रावली (का० ना० प्र०, सभा सन् १९१२ ई०) ।
३. हंस जवाहर (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सन् १९३७) ।
४. इन्द्रावती (का० ना० प्र० सभा, सन् १९०६ ई०) ।
५. अनुराग बाँसुरी (हिं० सा० सम्मेलन, प्रयाग सं० २००२)
६. भाषा प्रेमरस (फ़ारसी लिपि) लखनऊ सन् १९४० ई०।
७. प्रेम दर्पण (फ़ारसी लिपि) लखनऊ ।

८. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (भा० २, सं० १९७८, काशी)
९. गुरु ग्रंथ साहब (गुरुमुखी लिपि) अमृतसर।
१०. यारी साहब की रत्नावली (वे० प्रे० प्रयाग, सन् १९१० ई०)।
११. 'हिंदुस्तानी' (भा० ७, सन् १९३७), प्रयाग।
१२. बुल्लाशाह की सीहरफ़ी (खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई, सं० १९६४)।
१३. भजन-संग्रह (भा० ४) गीताप्रेस, गोरखपुर, स० १९९६।
१४. महाकवि नज़ीर (हरिदास ऐंड कंपनी) कलकत्ता सन् १९२२।
१५. मजमूअ बर राहे हक़ (उर्दू) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

विविध

१. श्री काशी विद्यापीठ रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ (सं० २००३)।
२ पं० चंद्रबली पांडे: तसव्वुफ़ अथवा सूफ़ीमत (सरस्वती मंदिर, बनारस, १९४५)
३. बांके विहारीलाल: ईरान के सूफ़ी कवि (लीडर प्रेस सं० १९९६)।
४. पं० रामचंद्र शुक्ल: हिंदी साहित्य का इतिहास (का०, ना० प्र० सभा सं० १९९७)।
५. बा० ब्रजरत्नदास: खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास (बनारस, सं० १९९८)।
६. बा० ब्रजरत्नदास: उर्दू साहित्य का इतिहास (काशी, सं० १९९१)।

७. डा० रामकुमार वर्मा: हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्रयाग, १९४८)।
८. मिश्रबन्धु: मिश्रबंधु-विनोद (भा० ३) लखनऊ, सं० १९८५।
९. श्री परशुराम चतुर्वेदी: उत्तरी भारत की संतपरंपरा (लीडर प्रेस. सं० २००७)
१० डा० रमा चौधुरी वेदांत ओ सूफ़ीदर्शन (बंगला) —कलकत्ता, सन् १९४४
११. 'हिंदुस्तानी' (हिंदुस्तानी एकेडेमी प्रयाग, सन् १९३८ ई०)।
12. Dr. J. A. Subhan : Sufism—its saints and shrines. (Lucknow, 1938)
13. Dr. D. S. Margolionth : Mohammedanism (London)
14. Hadland Davis: Jami: (The Persian Mystics, (London 1918)
15. Dr. A. J. Arberry : An Introduction to the History of Sufism (London, 1942)

etc. etc.